यह स्मारिका भारत के स्वतंत्रता सेनानियों एवं साहित्यकारों को सादर समर्पित है...

यह देश के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े कवियों, लेखकों, मनीषियों की विचारधाराओं का एक छोटा-सा संकलन है। जहां एक ओर स्वतंत्रता सेनानियों ने संग्राम का रास्ता अपनाया, वहीं कलमकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को नया आयाम दिया। देश के इन स्वतंत्रता सेनानियों एवं साहित्यकारों का नाम आते ही हमारा मस्तक आदर से झुक जाता है। स्मारिका के रूप में प्रकाशित "राष्ट्रीय चेतना के दीपस्तंभ" में कलम के सिपाहियों के राष्ट्रप्रेम, अहिंसा परमोधर्म आदि भावनाओं से ओत-प्रोत रचनाओं को केन्द्रित कर आलेखों का संग्रह किया गया है।

जय हिन्द!

वंदे मातरम्!

आज़ादी का अमृत महोत्सव

राष्ट्रीय चेतना के दीपस्तंभ

मुख्य संरक्षक

एस.एल. जैन
प्रबंध निदेशक एवं
मुख्य कार्यपालक अधिकारी

संरक्षक

इमरान अमीन सिद्दीकी
कार्यपालक निदेशक

अश्वनी कुमार
कार्यपालक निदेशक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

राष्ट्रीय चेतना के दीपस्तंभ

"आजादी का अमृत महोत्सव"

राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाने वाले साहित्यकारों पर केन्द्रित स्मारिका

(इंडियन बैंक में कार्यरत अधिकारियों द्वारा लिखित आलेखों का संकलन)

प्रधान संपादक

अजयकुमार

सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)

संपादन

केदार पंडित, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

राजेश गोंड, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

संपादन सहयोग

एम सुमति, मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)

आलोचना शर्मा, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

इरफान आलम, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

चंदन प्रकाश मेंढ़े, वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

श्वेता गंगिरेड्डी, प्रबंधक (राजभाषा)

भूपेश बारोट, प्रबंधक (राजभाषा)

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रबंधक (राजभाषा)

कॉर्पोरेट कार्यालय, राजभाषा विभाग, चेन्नै- 600 014

इस पुस्तक में अभिव्यक्त विचार, शब्द चयन एवं भाषा संबंधी प्रयोग लेखकों के अपने हैं। इंडियन बैंक और संपादन मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

कॉर्पोरेट कार्यालय: राजभाषा विभाग
254-260, अव्वै षण्मुगम सालै, रायपेट्टा, चेन्नै-600 014
वेबसाइट : www.indianbank.co.in
ई-मेल : hoolc@indianbank.co.in

© इंडियन बैंक

प्रथम संस्करण
वर्ष 2022

मुद्रण:
आर.एन. ग्राफिक
(दिल्ली)
मो. 8010872289

सूचना
इस पुस्तक के सभी अधिकार इंडियन बैंक के पास सुरक्षित हैं। बैंक के कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै से लिखित रूप में पूर्वानुमति लिए बिना इस प्रकाशन/स्मारिका के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अर्थात् कॉपी/फोटोकॉपी करना, रिकॉर्डिंग करना, इलेक्ट्रॉनिक या मैकेनिकल मोड में पुन: उदधृत करना, वितरित करना आदि की अनुमति नहीं है। यह पुस्तक केवल आंतरिक वितरण के लिए है। इसके व्यावसायिक उपयोग की अनुमति नहीं है।

महाप्रबंधक की कलम से....

हमारे देश के गौरवान्वित इतिहास में राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित स्वरों की कमी नहीं है, परन्तु भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (वर्ष 1857 ई.) से लेकर पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति 15 अगस्त 1947 तक, अपनी लेखनी से देशवासियों को जागृत करने, उन्हें स्वाधीनता के स्वर्णिम अनुभव का बोध कराने एवं देश की स्वाधीनता में तन, मन और धन से स्वयं को समर्पित करने का जो कार्य हमारे देश के कवियों या साहित्यकारों ने किया, उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। उन्होंने अपनी लेखनी से न केवल देशवासियों को जागृत किया, अपितु अंग्रेजों द्वारा उनके मस्तिष्क में भरी गई हीन भावना को भी समाप्त किया।

हमारे देश के अनगिनत रचनाकारों ने अपनी लेखनी से देशवासियों में स्वतंत्र चेतना की लौ जगाने का कार्य किया। जहां एक ओर हिंदी प्रदेशों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', माखनलाल चतुर्वेदी, कोदूराम दलित, दयाचंद मानया, सर छोटूराम चौधरी जैसे कवियों ने हिंदी भाषी जनता को जागृत करने के लिए गीत एवं कविताएं लिखीं तो वहीं दूसरी ओर तमिलनाडु में सुब्रमण्य भारतियार, आंध्रा प्रदेश में गुरजाड अप्पाराव, गरिमेल्ल सत्यनारायण, केरल में वल्लत्तोल, जी शंकर कुरुप्प, कर्नाटक में कुवेप्पु, साली रामचन्द्रराव, पंजाब में नानक सिंह, गुरमुख सिंह मुसाफिर, ओडिसा में कविवर राधानाथ रॉय, गोपबंधु दास, बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ऋषि बंकिमचन्द्र, काजी नजरूल इस्लाम, असम में अंबिकागिरि राय चौधरी, नलिनि बाला राय, लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, राजस्थान में बांकीदास, सूर्यमल मिश्रण, गुजरात में नर्मद, काका कालेलकर, कश्मीर में बृजनारायण चकबस्त जैसे कवियों ने भी जन मानस को अपनी रचनाओं से जगाने का कार्य किया।

इतिहास के पन्नों में अनेकों ऐसी क्रांतियां दर्ज हैं, जिनकी नींव साहित्यकारों ने रखी है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी साहित्यकारों के योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता है। हमारे देश की स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले 75 साहित्यकारों, विशेष रूप से कवियों को एकत्रित करते हुए इस स्मारिका का प्रकाशन किया गया है। उम्मीद है, यह संकलन आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा।

टी. धनराज

टी. धनराज
महाप्रबंधक (सी.डी.ओ. एवं राभा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

प्राक्कथन

साथियो

आजादी का अमृत महोत्सव, प्रगतिशील भारत के 75 वर्षों की गौरवपूर्ण उपलब्धियों को उत्सव के रूप में मनाने का वर्ष है। इस अवसर पर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एवं उसके विविध पहलुओं को उजागर करते हुए, हमारी वर्तमान गौरवपूर्ण स्थिति के मूल में अपना अमूल्य योगदान देने वाले चिंतकों, मनीषियों, समाज सुधारकों एवं साहित्यकारों के व्यक्तित्व, विचारों एवं कार्यों को जानने एवं समझने के उद्देश्य से इस पुस्तक को तैयार किया गया है।

इतिहास साक्षी है कि सुब्रमण्य भारतियार, गुरजाड अप्पाराव, जी शंकर कुरुप्प, कुवेम्पु, ऋषि बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय, पहाड़ी बाबा कांशीराम, मुंशी प्रेमचंद, ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर, कुमारन आशान, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिली शरण गुप्त, शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, नलिनि बाला देवी, लक्ष्मीकांत महापात्र आदि साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक एवं राष्ट्र प्रेम के विविध पक्षों को उजागर किया है। इन सभी साहित्यकारों ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करके मानवीय व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को सत्यता एवं निर्भीकतापूर्वक उद्घाटित किया है। उनके साहित्य में मानवीय गुणों, उन्नत चरित्र एवं राष्ट्रीय चेतना की झलक मिलती है।

अमृतकाल के इस सुअवसर पर राष्ट्रीय चेतना के पुरोधा साहित्यकारों का स्मरण करते हुए, एक बार पुनः उनके विचारों से अभिप्रेरित होने की आवश्यकता है। हम सभी एक बार फिर से उस अतीत को याद करना चाहते हैं, जहां से हमने प्रगति के इस सफर की शुरूआत की थी। आजादी के अमृतकाल तक पहुँचने तक का सफर, इतना आसान भी नहीं था। हमने सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दासता की बेड़ियों को तोड़ते हुए प्रगति और गौरव का स्वर्णिम वर्तमान प्राप्त किया है। इस स्थिति एवं समृद्धि को हासिल करने में साहित्यकारों, विचारकों, समाजसेवियों के अथक प्रयास छिपे हुए हैं, उन्होंने ही स्वर्णिम भारत का स्वप्न देखा था जो आज के प्रगतिशील एवं सुदृढ़ भारत के रूप में साकार दिखाई देता है।

हमारी विरासत ऐतिहासिक व सांस्कृतिक रूप से समृद्ध रही है। हमारा देश धन, संपदा, कृषि, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, आध्यात्म एवं दर्शन आदि दृष्टियों से भी परिपूर्ण रहा है। यही कारण है कि इसे विश्वगुरू का दर्जा भी प्राप्त था। हमारे देश की विविधरूपा संस्कृति ही हमारी प्राचीन धरोहर है तथा संपूर्ण भारतवर्ष की विविध क्षेत्रीय संस्कृतियां अपना समृद्ध इतिहास रखती हैं। संविधान के अनुच्छेद 351 में उल्लेखित सामासिक संस्कृति को ध्यान में रखते हुए, देश के विभिन्न राज्यों एवं भाषाओं से मोती रूपी साहित्यकारों को चुनकर यह माला पिरोयी गई है। इस पुस्तक में देश के लगभग सभी क्षेत्रों से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वाले प्रमुख साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों, सामाजिक उन्नायकों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संकलित किया गया है।

आजादी की 75वीं वर्षगांठ पर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि देते हुए हम इस बात की गहराई को समझ सकें कि स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् के आरंभिक वर्षों में इन साहित्यकारों, विचारकों, पत्रकारों एवं समाजसेवी प्रबुद्धजनों ने अपने विचारों से लोगों में राष्ट्रीय चेतना का जो अंकुर बोया एवं पुष्पित-पल्लवित किया, वर्तमान की अमृतवेला का श्रेय इन्हीं युगपुरूषों के विचारों का परिणाम है। हम इन सभी के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं।

इंडियन बैंक इन समस्त युगपुरूषों को हृदय से नमन करता है।

जय हिन्द!
वन्दे मातरम्!

अजयकुमार

सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
एवं प्रधान संपादक, इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

आमुख

अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नहीं है।

कवि की यह पंक्तियां साहित्य के मर्म को उजागर करती हैं क्योंकि साहित्य मनुष्य में चेतना का विकास करके उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है। साहित्य के बिना देश अंधकारमय एवं मृतक के समान है। भारतीय साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। भारतीय साहित्य का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि यह आक्रोश, ललकार, वंदन, गीत, प्रार्थना, भक्ति, श्रृंगार, राष्ट्रीयता, क्रांति इत्यादि विशेषताओं से भरा है। भारतीय साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से इन पक्षों को बखूबी उजागर किया है।

हर देश के स्वर्णिम काल के मूल में क्रांति दिखती है जिसे साहित्य द्वारा प्रशस्त किया जाता है। वस्तुत: क्रांति का जन्म अचानक नहीं होता, लंबी प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही लोगों की आवाज क्रांति का रूप लेती है, जिसके मूल में एक विचारधारा कार्य करती है, जो किसी विचारक, मनीषी व साहित्यकार के मस्तिष्क की उपज होती है। इतिहास के पन्नों में दर्ज क्रांतियां, इनकी ही गौरव गाथा गाती हैं। भारतीय स्वतंत्रता के मूल में भी इन्हीं के विचार शामिल हैं, जिसे कलमकारों ने साहित्य में मूर्त रूप दिया और सेनानियों ने इसके दम पर देश को गुलामी से आजाद कराया।

साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के बल पर क्रांति की ज्वाला और स्वतंत्रता की अलख जगाने वाले केवल साहित्य की रचना ही नहीं की अपितु कलम की जगह हाथों में हथियार भी थामा और जेल की यात्राएं भी की। उन्होंने देशवासियों को नैतिकता, मातृभूमि, देशभक्ति, राष्ट्रीयता आदि के पाठ पढ़ाने के साथ-साथ इसे अपने जीवन में भी धारण किया। आज हम हर कदम पर उन्हें याद करते हैं।

हमारा देश आजादी की 75वीं वर्षगांठ पर "आजादी का अमृत महोत्सव" मना रहा है। इस कड़ी में बैंक द्वारा प्रकाशित यह स्मारिका देश के साहित्यकारों को केंद्रित कर प्रस्तुत आलेखों का संकलन है। इस संकलन को देश के हर राज्य एवं

भाषा के साहित्यकारों के साहित्य में विद्यमान राष्ट्रीय चेतना के आधार पर संकलन करते हुए तैयार किया गया है। इसके हर आलेख में परतंत्रता के प्रति आक्रोश, शोषण का विरोध, निज भाषा की उन्नति का मंत्र, स्वाभिमान की गौरवगाथा, राष्ट्रीयता की ज्योति इत्यादि विद्यमान है।

यह विदित है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक के सभी राज्यों के साहित्यकारों को एकत्रित करना एवं उनके साहित्य में उपलब्ध विशद राष्ट्रीय चेतना को पन्नों मात्र में समेटना नि:संदेह दुर्लभ कार्य है। हमारे बैंक परिवार के अधिकारियों ने विभिन्न साहित्यकारों पर अपने आलेखों द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन में अपना अमूल्य सहयोग दिया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। हमने इस संबंध में आप सभी की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए पूरा प्रयास किया है। उम्मीद है, वीर सेनानियों एवं साहित्यकारों को समर्पित यह पुस्तक आप सभी के लिए रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक होगी। सधन्यवाद!

जय हिन्द!
वन्दे मातरम्!

केदार पंडित
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

भूमिका

"साहित्य समाज का दर्पण है" यह कथन हम बचपन से सुनते और पढ़ते आ रहे हैं परन्तु साहित्य केवल दर्पण मात्र नहीं है अपितु यह समय और परिस्थिति के अनुसार अपने रूप को परिवर्तित करने वाली चेतना भी है जिसने कभी भक्ति के रूप में हृदय की गहराईयों से ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव को व्यक्त किया तो कभी श्रृंगार की अतिशयोक्ति का सौन्दर्य बोध कराते हुए उसका गुणगान किया, कभी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के उद्देश्य से उपदेशक एवं सजग होने की प्रेरणा दी तो कभी चिंगारी बनकर राष्ट्रीयता की आग को आम जन में प्रज्ज्वलित करने का कार्य किया। हमारा देश संस्कृति एवं भाषायी रूप से विविधता में एकता का देश है। हमारे देश की संस्कृति एवं रीति-रिवाजों को देखें तो उनमें विविधता के दर्शन स्वतः ही हो जाते हैं। ऐसे में संपूर्ण भारत को एकसूत्र में पिरोना बहुत ही दुर्लभ कार्य था जिसे हमारे देश के महान साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की स्वर्णिम ज्योत के माध्यम से पूर्ण किया।

आजादी की स्वर्णिम हवा में आँखें खोलने वाली नई पीढ़ी को स्वतंत्रता का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं है जिसे आजादी के मतवालों ने एवं स्वतंत्रता सेनानियों ने अपनी जान देकर चुकाया था। कहते हैं कि रोशनी की कीमत वही समझ सकता है जिसने अंधेरों का अनुभव किया हो। वर्तमान समय में बहुत से लोग स्वतंत्रता एवं गणतंत्र दिवस के अवसर पर ही देश के वीर शहीदों को याद करते हैं, उनकी याद में व्हाट्सप एवं फेसबुक पर अपने देश प्रेम की भावना को प्रकट करते हैं तथा शेष दिनों में उन्हें भूल सा जाते हैं। हम लाख कोशिशों के बाद भी उनके बलिदान की कीमत को नहीं चुका सकते परन्तु अपनी स्मृति में जीवित रख कर उन्हें सही मायने में श्रद्धा सुमन अर्पित कर सकते हैं। हिमालय के सर्वोच्च शिखर से लेकर रामेश्वरम की पावन लहरों तक तथा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक विभिन्न क्षेत्रों में शहादत, बलिदान एवं वीरता की अनेक गौरव गाथाएं सहज ही मिल जाएंगी। भारतीय स्वतंत्रता के वीर सेनानियों, क्रांतिकारियों, आन्दोलनकारियों की प्रेरणा एवं चेतना के विकास में साहित्य ने जो अभूतपूर्व योगदान दिया है, उसे

नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आजादी के लिए क्रांति एवं विद्रोह रूपी चिंगारी को दावानल बनाने में भारतीय साहित्य एवं साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है।

वीर रस की गौरव गाथाएं प्रस्तुत करते हुए न केवल हिंदी साहित्य में अपितु भारत की विभिन्न भाषाओं जैसे तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, कश्मीरी, उर्दू, मराठी, गुजराती, पंजाबी, ओड़िया, बंगला, असमिया इत्यादि में भी काव्य एवं गद्य की रचनाएं की गई। भारतीय साहित्यकारों ने जहाँ एक ओर काव्यों एवं गीतों के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का कार्य किया, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों, शोषण, अन्यायों के प्रति अपने रोष एवं खीझ को भी अभिव्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार की नीतियों के पीछे छिपे सत्य को सामने लाकर जनता को जागरूक करना, उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य था। उनके द्वारा हृदय को झकझोरने एवं रोम-रोम को पुलकित कर देने वाले गीतों एवं काव्यों की रचना की गई जो आज भी हमारे मनोभाव को उद्वेलित करता है। हमारे देश का शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जिसका हृदय शहीद रामप्रसाद बिस्मिल्ल, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', भारतियार, कुवेम्पू, गुरजाड अप्पाराव, ऋषि बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, कवि कुसुमाग्रज, कोदूराम दलित, बदरीनारायण प्रेमघन, ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर, ब्रजनारायण चकबस्त, कुमारन आशान, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर' इत्यादि की पंक्तियों से उद्वेलित न हो।

हमारे देश के साहित्यकारों ने देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने के लिए केवल ओजस्वी एवं वीर गाथाओं का ही सृजन नहीं किया बल्कि अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई हीनता की भावना को भी नष्ट किया। उन्होंने जन मानस को हीन भावनाओं के भँवर से बाहर निकालने के साथ-साथ अपने पूर्वजों, संस्कृति और साहित्य के प्रति गौरव का भाव स्थापित किया। उन्होंने देश की विरासत तथा ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से भी राष्ट्रीयता को प्रमुखता से स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने हिमालय, गंगा, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश, फूल तथा अन्य उपमानों एवं काल्पनिक पात्रों के माध्यम से शहादत, राष्ट्रप्रेम, मातृभूमि के प्रति कर्तव्यों का बोध कराया है। यह सत्य है कि यदि किसी देश का अतिक्रमण हो जाए तो उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है परन्तु किसी संस्कृति का हनन हो जाए तो उसे पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि स्वतंत्रता पूर्व भारतीय साहित्यकारों में अपनी संस्कृति, विरासत, राष्ट्रीय धरोहर इत्यादि के प्रति अभूतपूर्व प्रेम एवं लगाव देखने को मिलता है। इस दौर के अधिकांश साहित्यकारों ने साहित्य सृजन के साथ-साथ पत्रकारिता के माध्यम से भी राष्ट्रीय भावना को जन मानस तक पहुँचाने का कार्य किया। उन्होंने स्थानीय भाषाओं में भी रचना कर ब्रिटिश सरकार द्वारा हो रहे शोषण के प्रति आक्रोश, दमन के प्रति खीझ, आजादी

की तीव्र चेतना, राष्ट्रीयता का अनुराग, स्वतंत्रता की भूख और स्वाधीनता की चाह को जनता में जागृत किया।

इस पुस्तक में सन 1857 ई. से 1947 ई. तक के साहित्यकारों को उनके साहित्य में उपलब्ध राष्ट्रीय चेतना के आधार पर संकलित किया गया है। उल्लेखित सौ वर्षों की दीर्घावधि में 75 साहित्यकारों का संकलन हमारे लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य था परन्तु विषयवस्तु को प्रमुखता देते हुए इस कार्य को पूर्ण किया गया है। इस पुस्तक में हमारे देश के विभिन्न राज्यों, भाषाओं से साहित्यकारों को संकलित किया गया है। पुस्तक में कुछेक आलेख ऐसे साहित्यकारों पर भी मिल सकते हैं जो हमारी समय-सीमा के बाहर हैं परन्तु उन्हें चयनित करने का मुख्य उद्देश्य उनके साहित्य में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना है। उनकी यह राष्ट्रीय चेतना ही आगे चलकर हमारे साहित्यकारों की वाणी में परिलक्षित होती है। ऐसे में हमारी ओर से उन्हें संकलित करना उचित जान पड़ा। इस पुस्तक के माध्यम से हमारा उद्देश्य एक ऐसे दस्तावेज को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है जो समग्र रूप से भारतीय साहित्य को परिलक्षित कर सके। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों, भाषाओं में अनेक साहित्यकारों के उपलब्ध होने के बावजूद भी कुछ चयनित साहित्यकारों को ही इस पुस्तक में संकलित किया गया है। विषय-वस्तु की मर्यादा का ध्यान रखते हुए कुछ साहित्यकारों को संकलित नहीं किया जा सका है जिसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है संकलित आलेख आपकी अपेक्षाओं पर खरा उतरेंगे।

देश के वीर सपूतों, स्वतंत्रता सेनानियों एवं अपनी लेखनी से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जगाने वाले कलम के सिपाहियों को समर्पित यह स्मारिका आपको सौंपते हुए हर्ष एवं राष्ट्रीयता की भावना हृदय में उमड़ रही है। मैं अपनी संस्था के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिसने इस गौरवमयी कार्य को संपन्न करने का दायित्व मुझे सौंपा। मैं पाठकों से भी अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तक का अध्ययन करने के उपरांत अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें।

जय हिन्द !
वन्दे मातरम्!

राजेश गोंड
वरिष्ठ प्रबंधक
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

विषय-सूची

क्र.सं.	साहित्यकार का नाम	राज्य का नाम	प्रस्तुतकर्ता	पृ.सं.
*	महाप्रबंधक की कलम से			III
**	प्राक्कथन			IV
***	आमुख			VI
****	भूमिका			VIII
1	सुब्रमण्य भारतियार	तमिलनाडु	एम सुमति, मुख्य प्रबंधक, कॉ.का. चेन्नै	1
2	गुरजाड अप्पाराव	आंध्र प्रदेश	श्वेता गंगिरेड्डी, प्रबंधक, कॉ.का. चेन्नै	5
3	जी शंकर कुरुप्प	केरल	डॉ. टी.रम्या रामचन्द्रन, प्रबंधक, अं.का., एर्णाकुलम	8
4	कुवेम्पु	कर्नाटक	प्रवीण कुमार, प्रबंधक, अं.का., बेंगलुरु	11
5	विष्णु वामन शिरवाडकर 'कवि कुसुमाग्रज'	महाराष्ट्र	संगीता दलवी, मुख्य प्रबंधक, क्षे.म.प्र.का., मुंबई	13
6	कोदूराम दलित	छत्तीसगढ़	किशन कुमार दास, सहायक प्रबंधक, अं.का., सतना	17
7	लक्ष्मीकांत महापात्र	ओडिशा	राजकुमार दास, प्रबंधक, अं.का., भुवनेश्वर	20
8	ऋषि बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय	पश्चिम बंगाल	सूरज प्रसाद साव, प्रबंधक, अं.का. कोलकाता (उत्तर)	23
9	नलिनी बाला देवी	असम	चेतना शर्मा, प्रबंधक, अं.का., आसनसोल	26
10	रामधारी सिंह 'दिनकर'	बिहार	सुजाता राज्ञी, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का. लखनऊ	28
11	बदरीनारायण प्रेमघन	उत्तर प्रदेश	राजेश कुमार सिंह, मुख्य प्रबंधक, एस.टी.सी., लखनऊ	31
12	सुमित्रानंदन पंत	उत्तराखंड	बलबीर सिंह, प्रबंधक, अं.का., देहरादून	34
13	पहाड़ी बाबा कांशीराम	हिमाचल प्रदेश	निशा चोरेटिया, प्रबंधक, अं.का., मेरठ	37
14	ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर	पंजाब	दीप्ति, सहायक प्रबंधक, अं.का., चंडीगढ़	40
15	दयाचंद मायना	हरियाणा	निशा चोरेटिया, प्रबंधक, अं.का., मेरठ	43
16	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	दिल्ली	नीलम, सहायक प्रबंधक, अं.का., दिल्ली (दक्षिण)	49
17	कन्हैयालाल सेठिया	राजस्थान	अर्चना पुरोहित, प्रबंधक, अं.का., जयपुर	51
18	काका कालेलकर	गुजरात	आलोचना शर्मा, वरिष्ठ प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	54
19	माखनलाल चतुर्वेदी	मध्य प्रदेश	निपुण जैन, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., भोपाल	56
20	कुमारन आशान	केरल	पी एस सिंधू, मुख्य प्रबंधक, इमेज, चेन्नै	58
21	रामप्रसाद बिस्मिल	उत्तर प्रदेश	राजकुमार यादव, मुख्य प्रबंधक, एस.टी.सी., लखनऊ	60
22	रामवृक्ष बेनीपुरी	बिहार	ओमप्रकाश वर्मा, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., राँची	63
23	रायप्रोलु सुब्बाराव	आंध्र प्रदेश	श्वेता गंगिरेड्डी, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	67

24	बाल गंगाधर तिलक	महाराष्ट्र	भारती प्रधान, वरिष्ठ प्रबंधक सूचना प्रौद्योगिकी, क्षे.म.प्र.का., मुंबई	70
25	रामनरेश त्रिपाठी	बिहार	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	72
26	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	उत्तर प्रदेश	डॉ. अंजनी कुमार पांडेय, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., सीतापुर	75
27	ऊमरदान लालस	राजस्थान	कमलेश कंवर, प्रबंधक, अं.का., दिल्ली (दक्षिण)	78
28	मुंशी प्रेमचंद	उत्तर प्रदेश	राजा साव, सहायक प्रबंधक, अं.का., अमृतसर	80
29	चन्द्रकुमार अग्रवाल	असम	राहुल साव, सहायक प्रबंधक, अं.का., सिलीगुड़ी	84
30	पं. लोचन प्रसाद पांडेय	छत्तीसगढ़	किशन कुमार दास, सहा. प्रबंधक, अं.का., सतना	88
31	सोहनलाल द्विवेदी	मध्यप्रदेश	कुलवेन्द्र सिंह, प्रबंधक, अं.का., आगरा	92
32	साली रामचंद्रराव	कर्नाटक	प्रवीण कुमार, प्रबंधक, अं.का., बेंगलुरु	95
33	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	उत्तर प्रदेश	रंजना चौहान, प्रबंधक, अं.का., हैदराबाद	97
34	गोपबंधु दास	ओडिशा	राजकुमार दास, प्रबंधक, अं.का., भुवनेश्वर	99
35	कविराज बांकीदास आसिया	राजस्थान	अर्चना पुरोहित, प्रबंधक, अं.का., जयपुर	104
36	रवीन्द्रनाथ टैगोर	पश्चिम बंगाल	सूरज प्रसाद साव, प्रबंधक, अं.का., कोलकाता (उत्तर)	106
37	अंबिकागिरी रायचौधरी	असम	चेतना शर्मा, प्रबंधक, अं.का., आसनसोल	111
38	वी डी सावरकर	महाराष्ट्र	पूनम साव, सहा. प्रबंधक, अं.का., मुंबई (दक्षिण)	113
39	सुभद्रा कुमारी चौहान	मध्य प्रदेश	निपुण जैन, वरि. प्रबंधक, अं.का., भोपाल	116
40	मैथिलि शरण गुप्त	उत्तर प्रदेश	डॉ. अंजनी कुमार पांडेय, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., सीतापुर	118
41	सर चौधरी छोटूराम	हरियाणा	बिंदेश्वरी प्रसाद, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., करनाल	121
42	बहादुर शाह जफर	दिल्ली	निशा चोरेटिया, प्रबंधक, अं.का., मेरठ	124
43	द्विजेन्द्र लाल राय	पश्चिम बंगाल	दीपक साव, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., देवघर	126
44	वल्लत्तोल नारायण मेनन	केरल	डॉ. टी.रम्या रामचन्द्रन, प्रबंधक, अं.का., एर्णाकुलम	128
45	राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज	महाराष्ट्र	विद्याधर रामभाऊ वासनिक, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., नागपुर	131
46	नानक सिंह	पंजाब	दीप्ति, सहायक प्रबंधक,अं.का., चंडीगढ़	133
47	सूर्यमल मिश्रण	राजस्थान	अर्चना पुरोहित, प्रबंधक, अं.का., जयपुर	136
48	सियाराम शरण गुप्त	उत्तर प्रदेश	कुलवेन्द्र सिंह, प्रबंधक, अं.का., आगरा	138
49	पंडित मुकुटधर पाण्डेय	छत्तीसगढ़	किशन कुमार दास, सहायक प्रबंधक, अं.का., सतना	140

50	मनोहर लाल उनियाल 'श्रीमन'	उत्तराखंड	बलबीर सिंह, प्रबंधक, अं.का., देहरादून	143
51	कविवर राधानाथ रॉय	ओडिशा	राजकुमार दास, प्रबंधक, अं.का., भुवनेश्वर	146
52	काजी नजरूल इस्लाम	पश्चिम बंगाल	चेतना शर्मा, प्रबंधक, अं.का., आसनसोल	150
53	नर्मदाशंकर 'नर्मद'	गुजरात	चन्दन प्रकाश मेंढ़े, वरिष्ठ प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	154
54	बालकृष्ण शर्मा नवीन	मध्य प्रदेश	बलबीर सिंह, प्रबंधक, अं.का., देहरादून	156
55	मोहम्मद हुसैन आजाद	दिल्ली	निशा चोरेटिया, प्रबंधक, अं.का., मेरठ	159
56	विजय सिंह पथिक	राजस्थान	अर्चना पुरोहित, प्रबंधक, अं.का., जयपुर	161
57	डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्रा	छत्तीसगढ़	किशन कुमार दास, सहायक प्रबंधक, अं.का., सतना	163
58	महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामन पोतदार	महाराष्ट्र	विमला मीणा, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., मुंबई (पश्चिम)	167
59	गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	उत्तर प्रदेश	भूपेश बारोट, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	169
60	अतुल प्रसाद सेन	पश्चिम बंगाल	श्याम कुमार दास, सहायक प्रबंधक, अं.का., मिदनापुर	172
61	केसरी सिंह बारहठ	राजस्थान	अर्चना पुरोहित, प्रबंधक, अं.का., जयपुर	175
62	अरविंद घोष	पुदुच्चेरी	दीपक साव, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., देवघर	178
63	माधवराव सप्रे	छत्तीसगढ़	किशन कुमार दास, सहायक प्रबंधक, अं.का., सतना	180
64	सत्यनारायण कविरत्न	उत्तर प्रदेश	मदन रॉय, प्रबंधक, एस.टी.सी., कोलकाता	182
65	श्याम नारायण पांडे	उत्तर प्रदेश	अमित मित्रा, वरिष्ठ प्रबंधक, अं.का., गुवाहाटी	185
66	जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द	उत्तर प्रदेश	गौरव मिश्रा, प्रबंधक, अं.का., डिब्रूगढ़	188
67	डॉ. रामकुमार वर्मा	मध्य प्रदेश	अजय सिंह, मुख्य प्रबंधक, अं.का., चिन्सुरा	190
68	जयशंकर प्रसाद	उत्तर प्रदेश	अभिषेक कुमार पटेल, मुख्य प्रबंधक, अं.का., झाँसी	193
69	लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ	असम	चंदन कुमार शर्मा, प्रबंधक, अं.का., चिन्सुरा	197
70	बालमुकुंद गुप्त	उत्तर प्रदेश	भूपेश बारोट, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	200
71	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	पश्चिम बंगाल	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	203
72	श्रीधर पाठक	उत्तर प्रदेश	राजा साव, सहायक प्रबंधक, अं.का., अमृतसर	207
73	प्रताप नारायण मिश्र	उत्तर प्रदेश	अभिजीत साव, सहायक प्रबंधक, अं.का., इलाहाबाद	209
74	गरिमेल्ल सत्यनारायण	तेलंगाना	श्वेता गंगिरेड्डी, प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	212
75	बृज नारायण चकबस्त	कश्मीर	इरफान आलम, वरिष्ठ प्रबंधक, कॉ.का., चेन्नै	215

आज़ादी का अमृत महोत्सव

लोक कवि
चिन्नस्वामी सुब्रमण्य भारतियार

अच्चमिल्लै अच्चमिल्लै अच्चमेंबदु इल्लये
इजगत्तुल उल्लोरेल्लाम एदिरतु निन्ड्र पोदिलुम
अच्चमिल्लै अच्चमिल्लै अच्चमेंबदु इल्लये
तुच्छामाग एन्नि नम्मै तूट्र सैद पोदिलुम
अच्चमिल्लै अच्चमिल्लै अच्चमेंबदु इल्लये

अर्थात

कोई डर नहीं, कोई डर नहीं, कोई डर नहीं
भले ही दुनिया के सभी लोग मेरे खिलाफ खड़े हो जाएँ,
कोई डर नहीं, कोई डर नहीं, कोई डर नहीं
भले ही वे हमें तुच्छ समझकर अपमानित करें
कोई डर नहीं, कोई डर नहीं, कोई डर नहीं

हमारे देश की स्वतंत्रता में, जहां एक ओर स्वतंत्रता सेनानियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, वहीं दूसरी ओर कलम के सिपाहियों अर्थात् कवियों और साहित्यकारों ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जागरण का कार्य किया। साहित्य एवं संगीत के माध्यम से जब कभी भी राष्ट्रीय चेतना के विकास की बात होती है तो दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध लोक कवि चिन्नस्वामी सुब्रमण्य भारतियार का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उन्हें आधुनिक तमिल कविता के जनक के रूप में भी जाना जाता है। इनका जन्म 11 दिसंबर 1882 को तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के एटायपुरम नामक गाँव में हुआ था जिन्हें बचपन में सब लोग प्यार से सुब्बैया कहा करते थे। सुब्रमण्य भारतियार लेखक, कवि, पत्रकार, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रणी कार्यकर्ता, समाज सुधारक होने के साथ-साथ बहुभाषाविद भी थे। उन्हें लोकप्रिय "महाकवि भारतियार" के रूप में भी जाना जाता है। सुब्रमण्य भारतियार ने अपने जीवन की महत्वपूर्ण एवं लंबी अवधि वाराणसी में गुजारी है। वाराणसी प्रवास के दौरान, उन्हें हिंदू आध्यात्मिकता और राष्ट्रवाद से अवगत होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिससे उनका दृष्टिकोण और भी व्यापक हुआ। वाराणसी में रहते हुए उन्होंने संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी सीखी।

भारतियार को आधुनिक तमिल साहित्य के अग्रदूतों में से एक माना जाता है। उन्होंने तमिल साहित्य में विगत परिपाटी के विपरीत, सरल शब्दों और लय का इस्तेमाल

किया। भारतियार की कविताएं प्रगतिशील, सुधारवादी आदर्शवादी चेतना को व्यक्त करती हैं। गौरतलब है कि सुब्रमण्य भारतियार के साथ तमिल साहित्य में एक नए युग की शुरुआत हुई थी। उनकी अधिकांश रचनाएं देशभक्ति, भक्ति और रहस्यवादी विषयों पर लघु गीतात्मक उद्‌गारों के रूप में वर्गीकृत हैं। उनके साहित्य में भारत के राजनीतिक विकास, वर्तमान समय की प्रमुख वैश्विक घटनाओं के प्रति संवेदनशीलता मुखर रूप में दिखाई पड़ती है, जिसे हम इस प्रकार देख सकते हैं-

येन्ड्रु तनियुम इंद सुदंदिर तागम
येन्ड्रु मडियुम येंगल अडिमैयिन मोगम
येन्ड्रु येमदु अन्नै कै विलंगुगल पोगुम
येन्ड्रु येमदु इन्नलगल तीर्न्दु पोय्यागुम

अर्थात्

कब बुझेगी हमारी स्वतंत्रता की प्यास,
कब भंग होगा हमारे दासत्व का मोह,
कब खुलेगी भारत माँ की हथकड़ी,
कब छटेंगे ये दुख के बादल?

भारतियार एक स्वत:स्फूर्त कवि थे। उन्हें कागज-पेन या इस तरह के दूसरे संसाधनों की जरूरत ही नहीं थी और ना उन्हें शब्दों की या मिजाज (मूड) की तलाश थी। उनका मन जब भी करता वे कविता गाने लगते। सृष्टि में विद्यमान अनगिनत बातों, लोगों, घटनाओं पर काले मेघ सी बरसती वृष्टि की तरह शुरू हो जाते। अगर हम उन्हें नवरसों का नायक कहें तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उन्होंने प्रकृति, ज्ञान, वीरता, भावनाओं को उड़ेल कर मन को छू लेने वाली रचनाएं रची हैं। जहाँ एक ओर नारियों की वेदना, करुणा, उनके प्रति हो रहे अत्याचारों को समाप्त करने पर उनकी अनगिनत रचनाएं स्वस्फूर्त हुई हैं तो वहीं दूसरी ओर उनके श्रीमुख से बच्चों, किशोर-किशोरियों, छात्र-छात्राओं तथा समाज के सभी वर्ग के लोगों के लिए भी उनकी रचनाएं स्वत: ही प्रकट हुई हैं। अगर हम उनकी प्रमुख रचनाओं की बात करें तो उन्होंने भगवत गीता का तमिल अनुवाद, कण्णन पाट्ु (कृष्णगीत), कुयील पाट्ु (कोयल गीत) व कालजयी रचना पाँचाली शपथम पहला भाग (पुदुचेरी में 1912) और दूसरा भाग (उनके निधन के पश्चात सन 1924) में प्रकाशित हुआ। उन्होंने 'स्वदेसमित्रन' में सहायक संपादक, महिलाओं की मासिक पत्रिका 'चक्रवर्तीनी', 'साप्ताहिक भारत', 'सौरोदयम', 'कर्मयोगी' में संपादक के रूप में अपना योगदान दिया। जब हम भारतियार को स्मरण करते हैं, तो गुलामी की जंजीर को तोड़ने और निंद्रा से जगाने का प्रयास करती, ढेरों जोश भरी कविताएं, गीत हमारी आँखों के समाने स्वत: ही प्रकट हो जाते हैं। उनके काव्य का एक अंश नीचे प्रस्तुत है।

विट्टु विडुदलै यागिनिर पायींदा
चिट्टु कुरुवियै पोले
एट्टु दिसैयुम तिरुगुवै
येट्रिय काट्रिल विराइवोडु नींडुवाय

अर्थात्

(स्वतंत्रता)-तुम एक छोटी गौरैया की तरह मुक्त होकर विचरण करो।
सभी आठों दिशाओं में उड़ चलो।
तुम स्वच्छ हवा में स्वच्छन्द हो उड़ चलो।

भारतियार एक प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्ति थे। साहित्य एवं संगीत के विशारद होने के बावजूद भी वे नवीनता को स्वीकार करने तथा सत्य की कसौटी पर कसने का निरंतर प्रयास करते थे। यही कारण है कि भगिनी निवेदिता से मिलने के बाद नारी के प्रति समानता के विचार को उन्होंने सहज ही स्वीकार किया तथा नारी के प्रति समानधर्मी विचार अर्थात पुरुष-महिला में अंतर न करने वाली बात खुलकर स्वीकार की। भारतियार कहते थे कि स्त्रियों को ज्ञान न दिला कर तो हम अपनी ही आँखें फोड़ रहे हैं। उनके लिए आधुनिक नारी का अर्थ है, गर्व से सिर उठा कर चल सकने वाली और निडरता से किसी का भी सामना करने वाली 'भारतियारय नारी' और इसी की कल्पना वे अपने काव्य में भी करते हैं, जो निम्नवत है-

पट्टङ्गल आल्वदुम सट्टङ्गल सैवदुम
पारिनिल पेंगल नडत्तवंदोम;
एट्टुम अरिविनिल आनुक्कु पेन
इलैपिल्लै काणेण्ड्ड कुम्मि यडि

अर्थात्

उच्च शिक्षा लेने और विधि निर्माण करने
दुनिया में हम महिलाएं आई हैं
ज्ञान की उच्चता में पुरुषों से
हम महिलाएं कम नहीं हैं!

पाँचाली शपथम् (खंड काव्य) में उन्होंने जिस तरह द्रौपदी की व्यथा को उकेरा है वो काव्य-साहित्य में तो मील का पत्थर है। इस खंड काव्य में व्यक्त भावनाओं से उनके मन में महिला के प्रति करुणा, कोमल भावनाओं का भी पता चलता है। द्रौपदी में वे भारत माता की प्रतिच्छाया देखते हैं और दुशासन तथा कौरवों को अँग्रेज मानते हैं। उन्होंने भारत की महिलाओं के लिए मुक्ति की मांग की और एक नई मजबूत और स्मार्ट भारतियारय महिला की कल्पना की, जिसे उन्होंने 'नए जमाने की महिला' या

'पुदुमई पेन' कहा। उन्होंने घोषणा की कि दुनिया केवल बुद्धि और क्षमता में समृद्ध होगी।

भारतियार केवल नारियों की सामाजिक स्थिति पर ही चर्चा नहीं करते अपितु वे समाज में व्याप्त छुआछूत, जाति प्रथा जैसी गंभीर समस्याओं पर विचार करते हैं तथा इसे जड़ से समाप्त करने का भरसक प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि इंसानों के बीच प्यार होना चाहिए, फिर चाहे वो किसी भी जाति या समाज से क्यों न हो। उन्हें इंसान के रूप में देखना चाहिए। एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को मनुष्य ही नहीं बल्कि उसे अपने भाई-बहन के रूप में देखना चाहिए। जाति व्यवस्था पर प्रहार करते हुए वे लिखते हैं-

सादिगल इल्लैअडि पाप्पा
कुल ताञ्चि उयर्चि सोल्लल पावम
नीदी उयर्न्द मदि, कल्वि अंबु
निरैय उडैयवर्गल मेलोर

अर्थात्

बच्ची!-यहाँ जाति नहीं है,
कुल को ऊंच-नीच बताना पाप है;
जो न्यायसंगत, शिक्षित और स्नेहपूर्वक है,
वही उच्च जाति का मनुष्य है।

भारतियार को पुदुमई कविंगन (आधुनिक कवि), पुरत्ची कविंगन (क्रांति के कवि), मक्कल कविंगन (लोक कवि), मारुमलार्ची कविंगन (पुनर्जागरण का कवि) और नवयुगकविंगन (नवयुग के कवि) के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार भारतियार के गीतों में हमें राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, अनेकता में एकता तथा सामाजिक समानता के दर्शन होते हैं। उनके नाम से सुब्रह्मण्य भारतियार पुरस्कार, साहित्यिक सम्मान दिया जाता है जो हिन्दी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान के लिये केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा दिया जाता है। महज 39 वर्ष की आयु में भारतियार ने अपनी पार्थिव देह का त्याग कर दिया था। एक छोटी सी कालावधि में उन्होंने नए शब्द गढ़े, नया रस पैदा किया और मठों और राजा-जमींदारों से एक तरह से छुड़ाकर क्लिष्ट तमिल को सहज-सरल-सरस जनप्रिय और लोकप्रिय बनाया। तमिल को पुर्नजीवित करने में भारतियार का सहयोग तमिल भाषी और तमिल साहित्य प्रेमी कभी भुला नहीं सकते। वे तमिल समाज के लिए व्यक्ति नहीं, युग हैं।

****

एम. सुमति
मुख्य प्रबंधक(राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

‘महाकवि’ गुरजाड अप्पाराव

राष्ट्रव्यापी कोविड-19 टीकाकरण कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तेलुगु कवि गुरजाड अप्पाराव की कविता की पंक्तियों को उद्धृत किया-

“देशमण्टे मट्टिकादोयि
देशमण्टे मनुषुलोय”

‘देशभक्ति’ (देशभक्ति) कविता के छंद देशवासियों से अपने लाभ में से थोड़ा सा त्याग कर दूसरों की मदद करने का आह्वान करते हैं। इस कविता के रचयिता थे श्री गुरजाड अप्पाराव।

यह कहा जाना चाहिए कि लगभग कोई तेलुगु व्यक्ति नहीं है जो एक तेलुगु लेखक और महान साहित्यकार गुरजाड अप्पाराव के बारे में नहीं जानता हो। यह सर्वविदित है कि उनके द्वारा लिखित नाटक कन्याशुल्कम और उसमें गिरीशम, मधुरवानी और रामप्पा पंतुलु की भूमिकाएँ प्रसिद्ध हुई। श्री गुरजाड अप्पाराव (1862-1915) तेलुगु भाषा के एक महान कवि थे जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने की कोशिश की। गुरजाड अप्पाराव उन महान साहित्यकारों में से एक थे जिन्होंने तेलुगु साहित्य को समृद्ध किया। 19वीं सदी में उनके लेखन और 20वीं सदी के पहले दशक को आज भी लोगों द्वारा सराहा जाता है। कम संख्या में होते हुए भी उनकी रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

गुरजाड अप्पाराव का जन्म 21 सितंबर 1862 को वेंकट रामदासु कौशल्याम्मा के घर उनके मामा के घर एस रायवरम, विशाखापत्तनम जिला, आंध्र प्रदेश में हुआ था। उन्होंने बीए की पढ़ाई की और एमआर हाई स्कूल में शिक्षक के रूप में काम किया। आंदोलन के तत्कालीन नेता गिदुगु राममूर्ति से उनकी करीबी दोस्ती थी और दोनों अच्छे दोस्त थे। 1887 में, तत्कालीन विजयनगर संगठन के पुसापति गजपति राजाओं के साथ अच्छे संबंध रखने वाले गुरजाड ने पहली बार कांग्रेस पार्टी की विधानसभा को संबोधित किया। 1889 में, गुरजाड के आनंद गजपथ के वाद-विवाद क्लब के उपाध्यक्ष के रूप में चुने जाने के बाद, उन्होंने अपने छोटे भाई श्यामला राव के साथ अंग्रेजी में कई रचनाएं भी लिखीं। उनकी अंग्रेजी कविताएं सारंगधारा और भारतीय अवकाश काल उस समय बहुत लोकप्रिय थी।

फिर 1891 में, गुरजाड अप्पाराव को विजयनगर संस्थान में एक विधायी शोधकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया और 1897 में महाराजा आनंद गजपति की मृत्यु के बाद,

उन्हें तत्कालीन रीवा महारानी अप्पाला कोडदम्बा के निजी सचिव के रूप में भी नियुक्त किया गया था। बाद में गिदुगु राममूर्ति के साथ तेलुगु स्थानीय भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने कन्याशुल्कम नाटक लिखा।

गुरजाड की रचनाओं में "कन्याशुल्कम" (नाटक) प्रमुख है। दहेज प्रथा की आलोचना करते हुए गुरजाड का यह नाटक भारतीय भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है। उन्होंने 1892 में प्रकाशित पहली रचना में कई बदलाव किए और 1909 में दूसरी रचना प्रकाशित की। विजयनगर क्षेत्र की स्थानीय बोली में लिखा गया यह नाटक 100 वर्ष बाद भी पाठकों का मनोरंजन करता है। नाटक का कन्नड़, फ्रेंच, रूसी, अंग्रेजी (2 बार), तमिल और हिंदी (2 बार) में अनुवाद किया गया है।

आंध्रा के निवासियों को प्रबुद्ध करने में इस कविता का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि एक प्रकार से यह आंध्र का राष्ट्रीय गीत ही रहा है। उनकी दृष्टि में एक मानव का दूसरे मानव के साथ प्रेम करना अति साधारण तथा सहज जीवन-सिद्धान्त है। प्रसिद्ध गीत "पुत्तडि बोम्मा पूर्णम्मा" उनकी एक और रचना है। इसका विषय भी 'कन्याशुल्क' दुराचार है।

उस समय के समाज में 'कन्याशुल्क' दुराचार की शिकार लड़कियों लिए अत्यंत करुणा के साथ गुरजाड ने ऐसी छोटी लड़कियों के प्रतिनिधि के रूप में पूर्णम्मा चरित्र का निर्माण किया। जिसका उद्देश्य समाज में उनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार की ओर ध्यान आकर्षित करना था। यह 'पूर्णम्मा कथा' के नाम से एक कविता और एक बहुत ही करुण रस भरे गीत के रूप में लिखा गया है। इस कहानी में गुरजाड ने बताया कि कैसे 'पुत्तडि बोम्मा पूर्णम्मा' एक युवती अंधविश्वास का शिकार हो गई। यह 'कन्याशुल्क' दुराचार के माध्यम से पैसे के लालच में कम उम्र में बच्चों की शादी बूढ़े दूल्हों से करने वाले पिता के विषय पर लिखी गई है।

यह इस करुणामय गीत कविता का अंतिम छंद है:

(कन्नुल कांतुलु कलुवल चेरेनु), (मेलिमि जेरेनु मेनि पसल), (हंसल जेरेनु नडकल बेडगुलु) (दुर्गनु जेरेनु पूर्णम्मा), (पुत्तडि बोम्मा पूर्णम्मा)

तेलगु-साहित्य में सर्वप्रथम देशभक्ति का भाव जगाने वाले कवि गुरजाड अप्पाराव की प्रमुख रचना 'देशभक्ति' है जो देशभक्ति पूर्ण भावों से ओत प्रोत है। इस कविता की प्रथम पंक्ति है-दिशमुनु प्रेमिंचुमन्ना, मंचि-अन्नदि पेंचुमन्ना "अर्थात्-हे भाई! देश के साथ प्यार करो, अच्छाई को बढ़ाओ।"

(देशमुनु प्रेमिञ्चुमन्ना), (मंचि अन्नदि पेंचुमन्ना), (वट्टि माटलु कट्टि पेट्टोय), (गट्टि मेल तलपेट्टवोय)

(सोंत लाभं कोंता मानुकु), (पोरुगु वाडिकि तोडु पड़वोय), (देशमण्टे मट्टिकादोय), (देशमण्टे मनुषुलोय)

इस सन्दर्भ में उद्‌बोधन के स्वर में कहते हैं- मन को हताश कर बैठे रहोगे तो देश का उत्थान कैसे होगा? तुम उद्यमशील बनो, समस्त कलाओं का अध्ययन करो, देशी माल से हमारी पवित्र भूमि को भर दो। आगे कदम बढ़ाओ, पिछड़े रह जाओगे तो दुनिया की दौड़ में सदा पीछे रह जाओगे। शिक्षा में स्पर्धा और वाणिज्य में स्पर्धा रखो किन्तु व्यर्थ कलह न बढ़ाओ। अपने स्वार्थ को थोड़ा कम करके पड़ोसी की सहायता करो। देश की परिकल्पना केवल मिट्टी से नहीं, वहाँ के वासी मनुष्य मात्र से की जाती है। चाहे धर्म कोई भी हो, देशवासियों का हृदय एक हो। देश रूपी सुंदर वृक्ष को वे प्रेम रूपी पुष्पों से पुष्पित कर और मानव के पसीने से धरती सिक्त होकर संपदा रूपी फसल पैदा करें। पत्रों की ओट से छिपकर कविता रूपी कोयल बोल उठे और उस वाणी से सुन्दर देश-प्रेम रूपी भावनाएं जागृत हों।

कविता को सर्वसाधारण की सम्पत्ति बनाने के विचार से अप्पाराव ने व्यावहारिक भाषा में अपनी रचनाएँ कीं। "मुत्याल-सरालु", "नीलगिरि-पाटलु" इनके सुन्दर गीत काव्य हैं। इन्हीं काव्य-कृतियों द्वारा राष्ट्रीय कविता का बीजारोपण हुआ। इनकी कथा-वस्तु, छंद, रचना-रीति इत्यादि में नवीनता पायी जाती है। "मुत्याल-सरमुल" नामक गीत में एक साधारण परिवार की स्त्री के प्रति समाज के जो विचार हो सकते हैं, उनका चित्रण हुआ है तो "कासुलु" में आदर्श प्रेम तथा "डामन-पिथियस" में आदर्श मैत्री का। इन गीतों का आन्ध्र में विपुल प्रचार हुआ।

'सारंगधारा' अंग्रेजी कविता-'इंडियन लीजर ऑवर' (विजयनगरम) और 'रीस एंड रय्यत' (बंगाल) पत्रिका में प्रकाशित की गई थी।

साहित्य की समृद्ध विरासत को पीछे छोड़ते हुए, गुरजाड का केवल 53 वर्ष की आयु में निधन हो गया। उन्हें तेलुगु साहित्य प्रेमियों द्वारा 'महाकवि' (महान कवि) के रूप में जाना जाता है।

****

श्वेता गंगिरेड्डी
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

जी शंकर कुरुप्प

(1901-1978)

गोविन्द शंकर कुरुप्प या जी शंकर कुरुप्प मलयालम भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। उनका जन्म केरल के एर्णाकुलम जिले के एक गाँव नायतोट्ट में जून 3, 1901 में हुआ था। जी शंकर कुरुप्प के पिता शंकर वारियर और माता लक्ष्मीकुट्टी अम्मा थे। बचपन में ही पिता का देहांत हो जाने के कारण उनका लालन-पालन मामा ने किया। उनके मामा ज्योतिषी और पंडित थे जिसके कारण संस्कृत पढ़ने में उनकी सहज रुचि रही और उन्हें संस्कृत काव्य परंपरा के सुदृढ़ संस्कार मिले। 3 साल की उम्र से उनकी शिक्षा आरंभ हुई। 8 वर्ष तक की आयु में वे 'अमरकोश' 'सिद्धरुपम' 'श्रीरामोदन्तम' आदि ग्रन्थ कंठस्थ कर चुके थे और रघुवंश महाकाव्य के कई श्लोक पढ़ चुके थे। 11 वर्ष की आयु में महाकवि कुंजिकुट्टन के गाँव आगमन पर वे कविता की ओर उन्मुख हुए। आगे की पढ़ाई के लिए वे पेरुम्पावूर के मिडिल स्कूल में पढ़ने गए। सातवीं कक्षा के बाद वे मूवाट्टुपुषा मलयालम हाई स्कूल में पढ़ने गए। यहाँ के दो अध्यापकों श्री आर.सी. शर्मा और श्री एस.एन. नायर का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कोचीन राज्य की पंडित परीक्षा पास की और साथ ही बांग्ला व मलयालम के साहित्य का अध्ययन किया। उनकी पहली कविता 'आत्मपोषिणी' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई और जल्द ही उनका पहला कविता संग्रह 'साहित्य कौतुमकम' प्रकाशित हुआ। इस समय वे तिरुविल्वामला हाई स्कूल में अध्यापक हो गए। 1921 से 1925 तक श्री शंकर कुरुप्प तिरुविल्वामला रहे। तिरुविल्वामला में अध्यापन कार्य करते हुए, अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन किया। 1925 में वे चालकुडी हाईस्कूल आ गए। इसी वर्ष साहित्य कौतुकम का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। उनकी प्रतिभा और प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी थी। 1931 में 'नाले' (आगामी कल) शीर्षक कविता से वे जन-जन में पहचाने गए। 1937 से 1956 तक वे महाराजा कॉलेज एर्णाकुलम में प्राध्यापक के पद पर कार्य करते रहे। प्राध्यापक सेवा से अवकाश लेने के बाद वे आकाशवाणी के सलाहकार बने।

प्रमुख कृतियां-साहित्य कौतुकम-चार खंड, सूर्यकांति, नवातिथि, पूजा पुष्पम, निमिषम, चेंकतिरुकल, मुत्तुकल, वनगायकन, इतलुकल, ओडक्कुषल, पथिकंटे पाट्टु, अंतर्दाहम, वेल्लिल परवकल, विश्वदर्शनम, जीवनसंगीतम, मून्नरुवियुम ओरु पुषयुम, पाथेयम, जीयुडे तिरंजेटुत्त कवितकल, मधुरम सौम्यम दीप्तम, वेलिच्चत्तिंटे दूतम।

उनकी कुछ काव्य रचनाओं में महाकवि वल्लत्तोल का तो कुछ में अंग्रेजी कवि शेल्ली और वड्र्सवर्थ का प्रभाव दिखाई पड़ता है। टैगोर और गांधीजी के लेखन का भी उन पर प्रभाव रहा फिर भी उन्होंने जो भी लिखा है, उसमें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। उनकी कविताओं में स्वच्छंदतावाद, रहस्यवाद, प्रतीकवाद, राष्ट्रवाद,

अंतर्राष्ट्रीयवाद एवं मानवतावाद शामिल हैं। इन सभी को हम उनकी ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कृति "ओडक्कुषल" में देख सकते हैं।

शंकर कुरुप्प ने केरल साहित्य अकादमी के चौथे अध्यक्ष के रूप में सेवाएं दी। वे केरल शास्त्र साहित्य परिषद के अध्यक्ष भी थे और उन्होंने इसकी अधिकारिक पत्रिका के मुख्य संपादक के रूप में भी कार्य किया। उनके कार्यकाल के दौरान ही यह पत्रिका त्रै-मासिक बन गई। उन्होंने थिलकम नामक एक अन्य पत्रिका का भी संपादन किया। 1968 में, उन्हें भारतीय संसद के ऊपरी सदन, राज्य सभा के सदस्य के रूप में नामित किया गया।

जी शंकर कुरुप्प एक ऐसे कवि हैं जो कई समाजशास्त्रीय मुद्दों पर विशिष्ट दृष्टिकोण रखते हैं। उनके पास अपने स्वामियों के चंगुल में फंसे दबे-कुचले और मजदूर वर्ग के ज्वलंत मुद्दों को सुलझाने की मानवतावादी इच्छा थी। वह दलित महिलाओं के हितों के हिमायती थे। हालांकि वे भारतीय पुनर्जागरण के एक रोमांटिक कवि हैं, फिर भी उनकी कविताओं में एक संदेश हम देख सकते हैं। जी शंकर कुरुप्प को उस धर्म से नफरत थी जो विधवाओं के आंसू नहीं पोंछता या लाखों भूखे लोगों को खाना नहीं खिलाता। 1950 के "ओडक्कुषल" की एक कविता "ओरु काशु, ओरु काशु" में एक मंदिर में भक्तों की भीड़ है और वहीं एक भिखारी लड़का पैसे के लिए भीख मांगता है लेकिन एक भी भक्त ने उस लड़के को पैसे नहीं दिए। मंदिर के खजाने में प्रसाद का भंडार है और भूख से मर रहे लड़के को एक पैसा देने की किसी में दया नहीं थी। एक और कविता "कोच्चम्मा" में एक अच्छी धनी महिला, चांदी के बर्तन से अपनी पालतू बिल्ली को खिलाती है और एक गरीब भिखारी को यह कहते हुए दूर करती है कि "अपना काला बदसूरत चेहरा यहां से हटा दें, ऐसा न हो कि आपकी बुरी नजर मेरे पालतू जानवर को नुकसान पहुंचाए।"

जी शंकर कुरुप्प ने उन जमींदारों के बेरहम रवैये को भी चित्रित किया है जो उनके लिए काम करने वाले मजदूरों का शोषण करते हैं। मजदूर काली ने ठान लिया था कि अगर बच्चा उसी मालिक के लिए गुलाम की तरह काम करेगा तो उसे बच्चा नहीं चाहिए। "माविंटे मार्गम" कविता में कुरुप्प अपनी बीमार पत्नी को छोड़कर काम की तलाश में जा रहे एक लकड़ी काटने वाले को हमारी आंखों के सामने लाते हैं। उसके आने तक वह महिला मर जाती है और यह देखते हुए फिर से वह चिता के लिए लकड़ी की तलाश में चला जाता है। कुरुप्प को उम्मीद है कि मजदूर वर्ग को एक दिन मुक्ति मिल जाएगी और यह क्रांति के माध्यम से ही होगा। उनकी कविता 1981 के "नाले" उज्ज्वल कल की तस्वीर है जब मजदूरों को पूंजीपतियों के हाथों से छुड़ाया जाता है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की पुकार पूरी कविता में सुनाई देती है। कुरुप्प अभिजात वर्ग को अपना ढीठ रवैया छोड़ने के लिए कहता है। किसान आधा नंगा हो जाता है लेकिन देश को हरे-भरे खेतों से ढकता है। ऐसा लगता है कि कुरुप्प का झुकाव मार्क्सवादी है और कविता कम्युनिस्टों द्वारा वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को दर्शाती है।

कुरुप्प उस सफाईकर्मी की प्रशंसा करते हैं जो सुबह होने से पहले काम पर लग

जाता है और वह अमीर महिलाओं से कहता है कि वे ऐसे श्रमिकों का सम्मान करें। वह हमें याद दिलाता है कि हमारी जीवन शैली को शुद्ध करने की जरूरत है, हमारी अंधविश्वासी प्रथाओं और अर्थहीन अनुष्ठानों को दूर करने की जरूरत है और हमें गरीबों की देखभाल करने की जरूरत है। इस प्रकार कविता "तूप्पुकारी" ऐसे श्रमिकों के लिए कुरुप्प की चिंता को दर्शाती है। "कूणुकल" में कुरुप्प सामंती व्यवस्था के पूर्ण विनाश का आह्वान करता है। "कूणुकल" स्वतंत्र भारत में सामंती प्रभुओं का प्रतीक है।

शंकर कुरुप्प समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में चिंतित थे। कुरुप्प ने महिलाओं के साथ हो रहे सामाजिक अन्याय पर प्रकाश डाला। "इणक्कुरुविकल" और "मून्नु अरुवियुम ओरु पुषयुम" कविताएँ किसी न किसी तरह से महिलाओं की पीड़ा से निपटती हैं। कविता "अंध्यमाल्यम" एक महिला को एक शानदार श्रद्धांजलि है जो मुक्ति आंदोलन के दौरान केरल में राजनीतिक संकट का शिकार हुई। "लोरी नामक गर्भवती महिला की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी, पुलिस ने विद्रोहियों को भगाने के आदेश दिए थे। जी शंकर कुरुप्प ने इस घटना पर अपनी तीक्ष्ण कलम से "अंध्यमाल्यम" कविता में प्रतिक्रिया व्यक्त की। कुरुप्प का यह भी मानना था कि स्वतंत्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। कवि का मानवतावाद राष्ट्रीय सीमाओं से परे है। कुरुप्प ने एबिसिनिया पर फासीवादी हमले पर अपना विरोध प्रकट किया। वह अफ्रीका और जापान के लोगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते थे।

लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कुरुप्प थोड़ी हिंसा की भी वकालत करते हैं। वह मनुष्य के सामाजिक कल्याण के बारे में चिंतित थे। कुरुप्प को एक सामाजिक मानवतावादी के रूप में स्वीकार किया जाता है।

कविताओं के अलावा निबंध, नाटक, बालसाहित्य, अनुवाद, आत्मकथा आदि क्षेत्रों में भी उन्होंने अपनी कलम चलाई। **भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ, सर्वप्रथम उनकी प्रसिद्ध रचना 'ओडक्कुषल' अर्थात बाँसुरी को मिला।** इनके द्वारा रचित कविता-संग्रह **"विश्वदर्शनम"** के लिये उन्हें सन् 1961 में केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया और 1963 केंद्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1965 में ज्ञानपीठ के बाद उन्हें 1967 में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ। श्री शंकर कुरुप्प को साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1968 में भारत सरकार ने **पद्म भूषण** से सम्मानित किया था तथा उसी वर्ष राष्ट्रपति ने उन्हें राज्य सभा का सदस्य भी मनोनीत किया जिस पर वे 1968 से 1972 तक बने रहे। 2 फरवरी, 1978 में उनकी मृत्यु हो गई।

****

डॉ.रम्या रामचंद्रन टी
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, एर्णाकुलम

कुवेम्पु

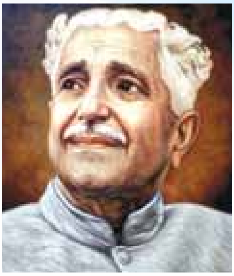

कनार्टक राज्य भारत का छठा सबसे बड़ा राज्य है जो अपनी भाषा, प्राचीन संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए जाना जाता है। जब बात कला, संस्कृति और साहित्य की हो तो कनार्टक राज्य के प्रसिद्ध साहित्यकारों का नाम आना स्वाभाविक है जिन्होंने अपने साहित्य के द्वारा जनमानस के हृदय में अपनी विशिष्ट जगह बनाई है और कर्नाटक राज्य के इतिहास में अनेक साहित्यकार हैं जो साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। कर्नाटक के साहित्यकारों में कन्नड़ भाषा के महान कवि एवं लेखक श्री कुवेम्पु का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका पूरा नाम कुप्पली वेंकटप्पागौड़ा पुटप्पा है। श्री कुवेम्पु केवल एक कवि ही नहीं अपितु एक महान उपन्यासकार एवं नाटककार भी थे।

श्री कुवेम्पु का जन्म 29 दिसम्बर 1904 को कुपपाली, शिमोगा जिले में हुआ था। इनके पिता का नाम वेंकटप्पा गौड़ा एवं माता का नाम सीतमंबी है। इन्होंने माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा अंग्रेजी एवं कन्नड़ भाषा के माध्यम से पूरी की थी। इसके पश्चात मैसूर के महाराजा कॉलेज से कन्नड़ में स्नातक की उपाधि प्राप्त की और बेंगलूरु विश्वविद्यालय में एक लेक्चरर के रूप में अपना करिअर आरंभ किया। 1960 में वे मैसूर विश्वविद्यालय के चांसलर के रूप में सेवानिवृत हुए।

अपने जीवनकाल में इन्होंने 25 कविता संग्रह, जीवनी, कहानी संग्रह, साहित्यिक आलोचना, निबंध संग्रह और 10 नाटकों के अलावा 02 उपन्यासों की रचना की। इनके साहित्य में तत्कालीन कुरीतियों, सामाजिक विषमता, पराधीनता के प्रति रोष दिखाई पड़ता है एवं जन सामान्य को स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान देने के लिए जागृत करने हेतु एक शंखनाद सुनाई देता है। इनके साहित्य के माध्यम से इन्होंने नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने का कार्य किया। स्वतंत्रता संग्राम के 1857 से 1930 के युग में राष्ट्रीय चेतना एवं नवजागरण के लिए साहित्यकारों ने अपने साहित्य को तलवार बना डाला और परतंत्रता की जंजीरों को काटने का काम किया। सन 1933 में कुवेम्पु का कविता संकलन "पांचजन्य" प्रकाशित हुआ जिसमें अधिकांश कविताएं राष्ट्रप्रेम से संबंधित थी। "पांचजन्य" कविता में भी आंदोलन में शामिल होने के लिए आवाज दी है। इस ओजपूर्ण कविता की पंक्तियां इस प्रकार हैं-

बढ़े चलो, बढ़े चलो
चलो, आगे बढ़ो
झुको नहीं, हिलो नहीं
घुसो आगे बढ़ो
चौंको नहीं, विश्वास रखो

अपनी समर्थ छाती में,
बंधन दूर करो उसकी धूल बना कर
मुझे मिटना पड़े, तुमको मिटना पड़े
बनेगी हमारी हड्डियों पर
नवभारत की लीला।।

कुवेम्पु मानते थे कि भारत की गुलामी का कारण आपसी वैर भावना है। ये अंग्रेज बाहर से आकर हमारे लोगों से ही हमारे लोगों की हत्या करवा रहे हैं और हमें आपस में लड़ाकर राज कर रहे हैं।

अंग्रेजी ब्रिटिश सरकार के कुछ गुप्तचरों व अपने देश के गद्दार लोगों पर कटाक्ष करते हुए वे कहते हैं कि-

"भारत खण्ड के हित में अपना हित मानकर
भारत माता का मत अपना मत मानकर
भारत माता की संतान को अपनी संतान मानकर
भारत माता की मुक्ति अपनी मुक्ति मानो".............

भारत माता को लक्ष्य कर अपने एक सॉनेट में कुवेम्पु कहते हैं कि-

"अपने देश की इस लूट की कहानी सुनकर कोई भी आंखों में आंसू भर लेता है, अपमान के दुख की कल्पना मात्र से खून खौलने लगता है। हृदय में क्रोध की ज्वाला शत्रुओं को जलाकर भस्म कर देना चाहती है।"

कुवेम्पु कन्नड़ साहित्य के रसकवि माने जाते हैं लेकिन उनकी कविताओं और अन्य साहित्य ने अंधविश्वासों, परतंत्रता और कुरीतियों पर तीव्र कटाक्ष किया है। अपने देश की प्रगति में बंधक बने सड़े-गले विचारों के उन्मूलन के लिए साहित्य से अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। कुवेम्पु के साहित्य में यह प्रतीत होता है कि एक साहित्यकार को समाज के हित का चिंतन करना चाहिए। जाति धर्म की आड़ में मानवीयता को नष्ट कर रहे अपनी जाति बन्धुओं पर कुवेम्पु अपने काव्य के माध्यम से कहते हैं कि-

मंदिर गिरिजाघर से निपटकर आओ
गरीबी को जड़ सहित उखाड़ने चले आओ
मौढ़ की राक्षसी को दूर करने आओ
विज्ञान का दीपक हाथ लेने आओ
उलझो नहीं अहं मतधर्म के मोह-अज्ञान में,
बुद्धि से काम करो लोक हित में

इस प्रकार कुवेम्पु का साहित्य रुढ़िवादि और जातिवादी परम्पराओं का विरोध करता है तथा नवजागरण का संदेश देता है। इनके इस साहित्य ने स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

****

प्रवीण कुमार
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, बेंगलुरु

विष्णु वामन शिरवाडकर
'कवि कुसुमाग्रज'

(27 फरवरी, 1912-10 मार्च, 1999)

विष्णु वामन शिरवाडकरजी को मराठी साहित्य में माता सरस्वती के मंदिर का अत्यंत तेजस्वी रत्न माना जाता है। वे मराठी के अग्रणी कवि, लेखक, नाटककार, कथालेखक, उपन्यासकार, लघुनिबंधकार तथा समीक्षक रहे हैं। उन्होंने मराठी कविता 'कुसुमाग्रज' के नाम से लिखी और इसी नाम से वे विख्यात हुए। कुसुम नाम की इनकी इकलौती बहन थी, जिनके नाम पर इन्होंने अपना नाम कुसुमाग्रज के रुप में कविता लेखन के लिए चुना।

कुसुमाग्रजजी का जन्म नासिक में 27 फरवरी 1912 को हुआ एवं मृत्यु 10 मार्च 1999 को नासिक में ही हुई। नासिक में ही उनकी विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन शिक्षा हुई। स्कूली जीवन के दौरान ही उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी जो 'रत्नाकर' पत्रिका में छपी थी। 20 वर्ष की आयु में उन्होंने अपना कविता संग्रह 'जीवनलहरी' प्रकाशित किया। शुरुआती दौर में उन्होंने मराठी फिल्मों की स्क्रिप्ट राइटिंग की तथा कुछ छुट-पुट फिल्मों में छोटी-मोटी भूमिकाएँ भी की। स्वराज्य, प्रभात, नवयुग तथा धनुर्धारी समाचारपत्रों का उन्होंने संपादन किया। 1930 में अंबेडकरजी द्वारा चलाए गए नासिक के कालाराम मंदिर सत्याग्रह में उनका सहभाग था। उनका क्रांतिकारी कविता लेखन इसी आंदोलन के शुरू हुआ। उन्होंने अनेक सामाजिक आंदोलनों में, सत्याग्रहों में सक्रियता से सहभाग लिया। नासिक जिले के आदिवासी विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने काफी मदद की। पत्रकारिता के लिए मुंबई आए शिरवाडकरजी की मुलाकात मुंबई मराठी साहित्य संघ मंदिर के श्री भालेरावजी से हुई और उन्होंने मराठी रंगभूमि को संजीवनी देने के लिए नए नाटक लिखे और वे प्रसिद्ध नाटककार बने।

शिरवाडकरजी क्रांति को साहित्य की प्रेरणा मानते थे। साहित्य समाज परिवर्तन को दिशा दे सकता है, ऐसा उनका मानना था। साहित्य को विशुद्ध कला न मानते हुए वे सामाजिक साधन मानते थे। उनका लेखन आत्मनिष्ठ एवं समाजनिष्ठ था। नासिक के अनेक आंदोलनों के वे प्रणेता थे। साहित्यिक अनुभव, स्वतंत्र वृत्ति एवं व्यक्तित्व को वे महत्व देते थे। उनके अनुसार जिस परिवेश में साहित्यकार जीवनयापन करता है, वही उसके व्यक्तित्व को भी जन्म देता है, समाज से परे साहित्यकार की कल्पना नहीं की जा सकती। वे कहते थे कि समाज के हर स्तर से लेखक उभरकर आने चाहिए।

कुसुमाग्रजजी के मतानुसार काव्य मनुष्य का आसपास के परिसर के साथ होने वाला संवाद है। जब अपने काव्य के माध्यम से कवि अपना अनुभव पाठक तक पहुँचाता

है तो उसे अपना अस्तित्व व्यापक होने की तुष्टि मिलती है और उसके आत्मसम्मान को संतोष मिल जाता है। यही उनके विचार में कविता लेखन की प्रक्रिया एवं प्रेरणा है। शिरवाडकरजी के साहित्य ने चार दशकों तक मराठी समाज एवं साहित्य को प्रभावित किया। अपनी सामाजिक आस्था एवं निरपेक्ष, ईमानदार वृत्ति के कारण विशेषकर, वे युवकों के प्रेरक रहे। उनका साहित्य विस्तृत है। उनकी कुछ साहित्य संपदा निम्नानुसार है-

1) **काव्यसंग्रह**-किनारा, मेघदूत, मराठी माती, पांथेय, जीवन लहरी, मुक्तायन, वादळवेल, प्रवासी पक्षी, चाफा, विशाखा आदि कुछ उदाहरण हैं।

2) **नाटक**-आनंद, किमयागार, जेथे चंद्र उगवत नाही, विदूषक, वीज म्हणाली धरतीला, ययाति आणि देवयानी, दूसरा पेशवा, कौंतेय आदि कुछ नाटक प्रसिद्ध हैं।

3) **कथा संग्रह**-अंतराल, सतारीचे बोल, एकाकी तारा ये कुछ नमूने हैं।

4) **उपन्यास**-कल्पनेच्या तीरावर, जान्हवी आदि।

5) **निबंध संग्रह**-आहे तरीही नाही।

कुसुमाग्रजजी की प्रसिद्ध कविताओं में 1) अखेर कमाई 2) पृथ्वीचे प्रेमगीत 3) वेडात मराठे वीर दौडले सात 4) गर्जा जयजयकार 5) स्वातंत्र्यदेवीची विनवणी 6) कोलंबसाचे गर्वगीत 7) बर्फाचे तट पेटून उठले 8) गाभारा 9) कणा का समावेश है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जलियांवाला बाग के हत्याकांड पर लिखी हुई उनकी कविता का अंश-

आणि आज हे तुझ्या पताका ज्यांच्या हातात
नि:शस्त्रांच्या रक्तामांसामध्ये नाहतात
मर्दांच्या बंदुका उडाल्या मुलाबायकांत
जगजेत्यांच्या पराक्रमाची स्फूर्तिप्रद रीत॥

पाचोळ्यापरि पडली पाहून प्रेतांची रास
नयन झाकले असशील देवा, तू आपुले खास
असेल वा ही सैतैनाची प्रभूवरी मात
एक जखम अन् नवीन येशू, तुझ्या काळजात॥

क्रांति गीत के नाम से प्रसिद्ध कविता महाराष्ट्र के सभी स्वतंत्रता संग्रामियों एवं क्रांतिकारी युवकों की प्रेरणा एवं दुर्दम्य आशावाद एवं ध्येयवाद का प्रतीक बनी-

गर्जा जयजयकार क्रांतीचा गर्जा जयजयकार
अन् वज्राचे छातीवरती घ्या झेलूनी प्रहार॥

कशास आई, भिजविसी डोळे, उजळ तुजे भाल
रात्रीच्या गर्भात उद्याचा असे उषःकाल
सरणावरती आज अमुची पेटता प्रेते
उठतील त्या ज्वालांतून क्रांतीचे नेते
लोहदंड तव पायांमधले खळाखळा तुटणार
आई, खळाखळा तुटणार
गर्जा जयजयकार, क्रांतीचा गर्जा जयजयकार॥

इसका एक किस्सा मशहूर है। यह कविता जब प्रकाशित हुई तब वे प्रभात पत्रिका के संपादक थे। सबके मुख पर होने के कारण राजद्रोह के आरोप में पुलिस उन्हें पकड़ने के लिए प्रभात के कार्यालय में पहुँची और उन्होंने वहां का रजिस्टर छान मारा लेकिन रजिस्टर में वि.वा. शिरवाडकर नाम लिखा था, कुसुमाग्रज नहीं था। इसलिए उस नाम का कोई आदमी न पाकर पुलिस वापस चली गई।

'पृथ्वीचे प्रेमगीत' नाम की उनकी और मशहूर कविता है जिसमें पृथ्वी को तेजोनिधि सूर्य से प्रेम की याचना करते हुए दिखाया है जबकि अन्य सभी तारे, चंद्र एवं ग्रह पृथ्वी के प्रेम की याचना करते हैं। इसमें तेज के प्रति उनकी सहज प्रवृत्ति को आसानी से देखा जा सकता है-

नको क्षुद्र श्रृंगार तो दुर्बळांचा, तुझी दूरता त्याहूनी साहवे

उन्होंने कई ऐतिहासिक एवं पौराणिक व्यक्तित्वों के मानवीय पहलुओं को अपने नाटकों के माध्यम से उजागर किया। जैसे कि उनके प्रसिद्ध नाटकों में से एक प्रसिद्ध नाटक ययाति आणि देवयानी ययाति, कच, देवयानी आदि पौराणिक व्यक्तित्वों पर आधारित है तो ऐतिहासिक नाटकों में से वीज म्हणाली धरतीला झांसी की रानी लक्ष्मीबाईजी की जीवनी पर आधारित है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता वेडात दौडले वीर मराठी सात, शिवाजी महाराज और उनके सेनापति के जीवन से संबंधित है जो आज भी गीत के रूप में गायी जाती है। इसकी विख्यात कुछ पंक्तियाँ हैं-

खालून आग, वर आग, आग बाजूंनी
समशेर उसळली सहस्त्र क्रूर इमानी
गर्दीत लोपले सात जीव ते मानी
खग सात जळाले अभिमानी वणव्यात, वेडात मराठे वीर दौडले सात

शिरवाडकरजी का सबसे प्रसिद्ध नाटक नटसम्राट है जो एक सफल व विख्यात अभिनय सम्राट गणपतराव बेलवलकर के आखरी वर्षों की शोकांतिका है। इसके वजनदार एवं भारी भरकम संवाद अपने आप में विशेषता लिए हैं जो अभिनेता के अभिनय की परीक्षा लेते हैं। मराठी के अनेक बड़े-बड़े अभिनेताओं ने इस भूमिका को जीवंत किया है। नटसम्राट को साहित्य अकादमी का 1974 का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। भारत सरकार

ने उन्हें पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया था। **उनके काव्यसंग्रह विशाखा को 1987 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित** किया गया। भारत सरकार ने उनके सम्मान में डाक टिकट भी जारी किया है। उनके नाम पर अंतराल में स्थित एक तारे को उनका नाम दिया गया है।

शिरवाडकरजी गरीबों एवं असहाय लोगों की व्यक्तिगत रूप से हमेशा मदद किया करते थे और सामाजिक तथा व्यक्तिगत रूप से अनेक प्रकल्पों का मार्गदर्शन किया करते थे। उन्होंने 26 मार्च 1990 को नासिक में कुसुमाग्रज प्रतिष्ठान की स्थापना की। 10 मार्च 1999 को उनकी मृत्यु के बाद आज भी कुसुमाग्रज प्रतिष्ठान का कार्य उसी सक्रिय रूप से चल रहा है। संपूर्ण मराठी विश्व को उनके अतुलनीय योगदान का सम्मान करने हेतु महाराष्ट्र राज्य सरकार द्वारा उनके जन्मदिन अर्थात् 27 फरवरी को हर वर्ष मराठी राजभाषा के रूप में मनाया जाता है। शिरवाडकर जी कवि कुसुमाग्रज के रूप में मराठी साहित्य में ध्रुवतारा जैसा अचल स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

****

(संदर्भ ग्रंथ: रुपरेषा, वि.वा.शिरवाडकर-संपादक-श्री.सुभाष सोनवणे, कुसुमाग्रज/शिरवाडकर-एक शोध-लेखक-श्री.द.दि.पुंडे, कुसुमाग्रजांचा सामाजिक साहित्यविचार: डॉ. देवानंद सोनटक्के)

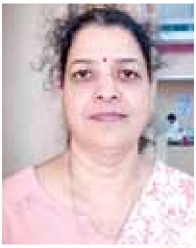

संगीता दलवी
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
क्षेत्र महाप्रबंधक का कार्यालय, मुंबई

कोदूराम दलित

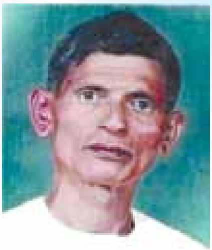

राष्ट्रप्रेमी, गांधीवादी कोदूराम दलित का जन्म 05 मार्च सन् 1910 में छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के टिकरी गांव में हुआ था। वे 1931 से 1967 तक आर्य कन्या गुरुकुल, नगर पालिका परिषद् तथा शिक्षा विभाग, दुर्ग की प्राथमिक शालाओं में अध्यापक और प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत रहे। उनकी रचनाएं करीब 800 (आठ सौ) हैं, जिनमें अधिकतर अप्रकाशित हैं। उन्होंने वर्ष 1926 में कविताएँ लिखनी शुरू की। इनकी रचनाएं लगातार छत्तीसगढ़ के समाचार-पत्रों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। दलित जी ने गद्य और पद्य दोनों में समान गति और समान अधिकार से लिखा। उन्होंने कुल 13 पुस्तकें लिखी हैं- (1) सियानी गोठ (2) हमर देश (3) कनवा समधी (4) दू-मितान (5) प्रकृति वर्णन (6) बाल-कविता-ये सभी पद्य में हैं। गद्य में उन्होंने जो पुस्तकें लिखी हैं वे हैं- (7) अलहन (8) कथा-कहानी (9) प्रहसन (10) छत्तीसगढ़ी लोकोक्तियाँ (11) बाल-निबंध (12) छत्तीसगढ़ी शब्द-भंडार, उनकी तेरहवीं पुस्तक कृष्ण-जन्म हिंदी पद्य में है। इतनी पुस्तकें लिखने के बावजूद भी उनकी एक ही पुस्तक 'सियानी-गोठ' प्रकाशित हो सकी है, जो दुर्भाग्यपूर्ण बात है। दलित जी की अन्य पुस्तकें आज भी अप्रकाशित पड़ी हैं और हम उनके महत्वपूर्ण साहित्य से वंचित हैं। 'सियानी-गोठ' में दलित जी की 76 हास्य-व्यंग्य की कुण्डलियाँ संकलित हैं। यह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की दुर्ग इकाई के सक्रिय सदस्य रहे।

उनका काव्य उस युग में जन्म लिया जब देश आजादी के लिए संघर्षरत था। उनकी रचनाओं में देश-प्रेम, त्याग, जन-जागरण, राष्ट्रीयता की भावनाएं युग अनुरूप हैं। आपके साहित्य में नीतिपरकता, समाज सुधार की भावना, मानवतावादी, समन्वयवादी तथा प्रगतिवादी दृष्टिकोण सहज ही परिलक्षित होता है। हास्य-व्यंग्य उनके काव्य का मूल स्वर है जो शिष्ट और प्रभावशाली है। उन्होंने रचनाओं में मानव का शोषण करने वाली परम्पराओं का विरोध करके, आधुनिक वैज्ञानिक, समाजवादी और प्रगतिशील दृष्टिकोण से दलित और शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है तथा उनके नीति-काव्य एवं बाल-साहित्य एक आदर्श, कर्मठ और सुसंस्कृत पीढ़ी के निर्माण के लिए आज भी प्रासंगिक है।

कोदूराम दलित के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का अन्वेषण:-श्री कोदूराम जी ने उस समय अपने साहित्य की रचना की, जिस समय हमारा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। ऐसे में अपने देश, समाज के जन साधारण को विदेशी हुकूमत से आजाद कराने एवं उनमें राष्ट्रीय चेतना को प्रज्ज्वलित करने के लिए कोदूराम जी ने कई कविताओं की रचना की। उन्होंने अपनी रचनाएं छत्तीसगढ़ी में लिखी। इस संदर्भ में उनकी एक कविता "चलो जेल संगवारी" का एक अंश उद्धृत है :-

"अपन देश आजाद करे बर, चलो जेल संगवारी,
कतको झिन मन चल देइन, आइस अब हमरो बारी...
अब सब झन मन जानिन कि ये आय लुटेरा भारी
अपन देश आजाद करे बर, चलो जेल संगवारी।।"

उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से कोदूराम जी देश के जनमानस को आजादी के संघर्ष के लिए आह्वान कर रहें हैं। दलित जी, गांधी जी से अति प्रभावित थे एवं उस दौर में गांधी जी ने अंग्रेजों की सत्ता की नींव हिलाने हेतु "सत्याग्रह" को अपना सशक्त अस्त्र बनाया था। जिसमें चंपारण, खेड़ा इत्यादि इतिहास के पन्नों में प्रमुखता से दर्ज हैं। गांधी जी की इसी विचारधारा को आत्मसात करते हुए दलित जी ने अपनी भाषा एवं लेखनी से सत्याग्रह के महत्व को उजागर करने का प्रयास किया, जिसे हम उनकी कविता "सत्याग्रह" में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं:-

"अब हम सत्याग्रह करबो
कसो कसौटी-मा अउ देखो
हम सब झन तरबो।
अब हम सत्याग्रह करबो...."

कोदूराम जी की सत्याग्रह कविता के उपर्युक्त अंश के पाठ से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे गांधी जी की भांति देश की आजादी के लिए सत्याग्रह को एक सशक्त माध्यम मानते हैं एवं इसलिए वह इस कविता के माध्यम से अपने देश समाज के जन साधारण को सत्याग्रह करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह परम सत्य है कि जो रास्ता बतलाता है उसे आगे आगे चलना भी पड़ता है। दलित जी की रचनाओं में यह भी देखने को मिलता है कि देश में जन्मे महापुरुषों के उदाहरण के माध्यम से भी उहोंने आम जनता को अपनी शक्ति को पहचानने एवं देश की आजादी के लिए संघर्ष करने हेतु प्रेरित किया है। ऐसी ही एक नजीर उनकी कविता में देखने को मिलती है:-

"एक्के ठन हनुमान बहुत बड़ परबत अधर उठा के लाईस,
दुःख में काम पड़ीस मालिक के लछमन जी के प्राण बचाइस...
का कर सकिही हमर एक हर? अइसन कभू कहो झन भाई।
जऊन एक ला हीनत रहिथौ तऊन एक के सुनो बड़ाई।।"

इस कविता के माध्यम से कविवर कोदूराम जी जन सामान्य को प्रेरित करते हैं कि हमें अपने आपको कभी अकेला जानकर कमजोर नहीं समझना चाहिए, क्योंकि हमने जिस देश में जन्म लिया है वहाँ ऐसे अनेकों महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने अकेले ही बड़े-बड़े कार्यों को अंजाम दिया। इसलिए हमें अंग्रेजों से अकेले भिड़ने में भय नहीं करना है। वह पौराणिक एवं मिथकीय पात्र हनुमान एवं भागीरथ का उदाहरण देते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। इसलिए हमें भी अपनी शक्ति को पहचानने की आवश्यकता है और अपने देश की आजादी में अपना योगदान देने की आवश्यकता है। अपनी कविता 'राह उन्हीं की चलते जावें' के माध्यम से कविवर दलित ने जन-मानस

को राष्ट्र के लिए अपने जीवन को समर्पित करने वाले देशभक्तों के जीवन से शिक्षा लेकर उनके अनुसार जीवन जीने की प्रेरणा दी है:-

जो अपने सारे सुख तज कर जन-हित करने में जुट जावें,
दूर विषमताएँ कर-कर के जो समाज में समता लावें,
जन-जागरण ध्येय रख अपना घर-घर जाकर अलख जगावें,
उनके अनुगामी बन कर हम राह उन्हीं की चलते जावें।

इन पंक्तियों में कविवर कहते हैं कि जैसे देशप्रेमियों ने देश की आजादी के लिए अपना सब-कुछ त्याग करके जनहित के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया, वैसे ही हमें भी अपने देश समाज के कल्याण एवं जनमानस के उद्धार हेतु कार्य करना चाहिए। कवि दलित जी ने अपनी कविता गणतंत्र पर्व के माध्यम से भी अपने राष्ट्र प्रेम को उजागर किया है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता के उपरांत गणतंत्र दिवस की एक झलक प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि आज गणतंत्र पर्व के अवसर पर हमारा तिरंगा शान से लहरा रहा है। चारों तरफ देश की जय जयकार का स्वर गूँज रहा है। सभी लोग आनंद मगन हैं। साथ ही, स्वयं तथा पूरे विश्व में शांति खुशहाली की कामना की जा रही है। हर तरह के बैर भाव को भूलकर सब मिलजुल कर राष्ट्र पर्व गणतंत्र दिवस मना रहे हैं।

"क्या शान से हमारा फहरा रहा तिरंगा
उन्नत सुनील नभ में लहरा रहा तिरंगा...
दुख-द्वेष का हो अविलम्ब ही सफाया
गणतंत्र पर्व आया, गणतंत्र पर्व आया।

कवि दलित ने अपनी कविता 'सिर्फ नाम ही रह जाना है' के माध्यम से भी देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने हेतु देशवासियों का आह्वान किया है:-

पर के अधीन रह पिछड़ा था देश यह,
सहकारिता से इसे आगे को बढ़ाना है...
क्रांति एक लाना है औ गिरे को उठाना है औ
रोते को हँसाना है औ सोते को जगाना है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कोदूराम दलित जी की साहित्य साधना के अंतर्गत हमें राष्ट्र के प्रति असीम प्रेम के दर्शन होते हैं, साथ ही उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि वे आम जनता में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना चाहते हैं। उनकी भाषा अत्यंत सहज एवं सुबोध है। चाहे वह छत्तीसगढ़ी हो या हिन्दी दोनों ही भाषाओं में उनकी रचनाएं आम जन मानस को देश प्रेम का संदेश देती हैं।

****

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय सतना

कांतकवि लक्ष्मीकांत महापात्र

(18 दिसंबर, 1888 - 24 फरवरी, 1953)

लक्ष्मीकांत महापात्र एक भारतीय ओडिया कवि, लेखक, प्रदर्शन कलाकार और स्वतंत्रता सेनानी थे। उनकी दस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वह ओडिशा राज्य एकीकरण आंदोलन के एक प्रमुख प्रचारक और उत्कल सम्मेलन के एक प्रख्यात सदस्य थे।

प्रारंभिक जीवन और परिवार: लक्ष्मीकांत का जन्म 18 दिसंबर, 1888 को कटक शहर में हुआ था। उनका जन्म देवी लक्ष्मी की पूजा के विशेष दिन हुआ था इसलिए उन्हें लक्ष्मीकांत (लक्ष्मी के रूप में दयालु) के रूप में नामित किया गया था। उनके पिता का नाम जमींदार चौधरी भगवत प्रसाद सामंतराय महापात्र था और उनकी माता का नाम राधामणि देवी था। उनके पिता ने चार बार बिहार और उड़ीसा विधान परिषद का प्रतिनिधित्व किया और दो बार इसके डिप्टी स्पीकर के रूप में कार्य किया। लक्ष्मीकांत ने पढ़ाई बालासोर से पूरी की थी। इंटरमीडिएट पास करने के बाद उन्होंने उच्च शिक्षा के लिए कोलकाता के पायन कॉलेज में पढ़ाई की। वह 1913 में रेनशॉ कॉलेज लौट आए और अपनी कला स्नातक की डिग्री पूरी की। उनका विवाह जमींदार लालमोहन दास की पुत्री लबंगा लता से हुआ था।

काव्यकर्म और राष्ट्रीय चेतना: लक्ष्मीकांत ने नाटक, पैरोडी, कविता, लघु-कथा, उपन्यास विधाओं में साहित्यिक रचनाएँ कीं। उनकी साहित्यिक शैली में राष्ट्रवादी जोश और तीखा व्यंग्य था। एक राजनीतिक आलोचक के रूप में, राजनेताओं और सामंती प्रमुखों की उनके द्वारा की गई तीखी आलोचना ने, उन्हें प्रतिकूल प्रतिष्ठा दिलाई। उनके गीत जैसे बंदे उत्कल जननी, कोटि कोटि कांठे आजी, उदय निसान बजाई वेरी स्वतंत्रता संग्राम और राज्य-हुड आंदोलन के दौरान ओडिया स्वतंत्रता सेनानियों के लिए युद्ध के नारे थे। लक्ष्मीकांत ने "दगरा" नामक एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें व्यंग्य, बच्चों की कहानियां, राजनीतिक और सामाजिक आलोचना आदि जैसी विभिन्न विधाओं में लेख प्रकाशित हुए।

'राष्ट्रवाद' शब्द सदियों पुरानी अवधारणा है। प्राचीन काल से ही विश्व साहित्य, मातृभूमि की महिमा और विरासत से संबंधित काव्य विवरणों से भरा पड़ा है। 19वीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण के उदय के साथ भारतीयों की सूखी नसें देशभक्ति की नई भावनाओं से भर उठीं। अंग्रेजों ने 1803 में उड़ीसा पर कब्जा कर लिया। उड़ीसा की स्वतंत्रता अफगानों, मुगलों, मराठों से क्रमिक रूप से खो गई थी और ब्रिटिश इस श्रेणी में अंतिम स्थान पर थे। उड़ीसा की गौरवशाली विरासत, परंपरा और इतिहास धीरे-धीरे और चुपचाप गुमनामी में चला गया। पश्चिमी विस्तार

की वास्तविक वेदी में उड़िया लोगों ने अपनी पहचान खो दी। राष्ट्रीय चेतना अपने निम्नतम स्तर पर थी। इस दौरान लेखक आगे आए, जिन्होंने शक्तिशाली तलवारों से समाज को बुद्धिजीवी नेतृत्व दिया। लक्ष्मीकांत को खुद को कमरे की चार दीवारों तक सीमित रखना पड़ा लेकिन फिर भी राष्ट्रवादी उत्साह से भरी बाहरी दुनिया को देख सकते थे, इसके स्वाद को सूंघ सकते थे। उन्होंने कलम की शरण ली। उन्हें इस बात का एहसास था कि निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक और कविता जैसी साहित्य की कई शाखाओं में से आखिरी विधा में कविता सबसे प्रभावी है। आसपास के लोगों में प्रेरणा और जागृति पैदा करने के लिए, उन्होंने कविता की शरण ली। उन्होंने कविताओं के माध्यम से असंख्य हृदयों में राष्ट्रीयता की भावनाओं को जगाया।

ओडिशा का राज्य गान

वंदे उत्कल जननी, चारू हासमयी चारू भाषमयी, जननी, जननी, जननी॥

यह उड़िया साहित्य में सत्यवादी युग की अवधि थी। नीलकंठ दास, गोदावरीश मिश्रा जैसे अग्रदूतों ने गौरवशाली अतीत, कुलीन पृष्ठभूमि और अतीत की विरासत के पुनरोद्धार के माध्यम से राष्ट्रवाद का संदेश फैलाया। दूसरी ओर गांधीवादी विचारधाराओं और विधियों का राष्ट्रवादी भावना को समृद्ध करने में जबरदस्त प्रभाव पड़ा। दोनों से प्रेरित होकर, लक्ष्मीकांत ने समाज के जमीनी स्तर तक पहुंचने के लिए शक्तिशाली राष्ट्रवादी कविताओं की रचना करना शुरू किया। प्रत्यक्ष भागीदारी के लिए इन लेखों का आम जनता के मन पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा।

लक्ष्मीकांत के लेखन ने अन्य लोगों के साथ-साथ राज्य के कोने-कोने में स्वराज और स्वदेशी की भावनाओं को प्रतिध्वनित किया। उनकी संपूर्ण साहित्यिक कृतियों को दो खंडों में बाँटा जा सकता है। खंड-दो के अंतिम अध्याय में उनकी राष्ट्रवादी कविताएँ हैं। इसमें **तैंतीस राष्ट्रवादी कविताएँ** शामिल हैं। लक्ष्मीकांत की राष्ट्रवादी कविताओं की संख्या कम है, लेकिन अधिक शक्तिशाली उनकी प्रेरक और भावनात्मक अपील है। इन कविताओं का मुख्य उद्देश्य उड़िया मन से हीन भावना को दूर कर आत्मविश्वास की एक मजबूत भावना विकसित करना था। इसका उद्देश्य गतिहीन उड़ियावासियों को उनकी खोई हुई महिमा और विरासत को याद दिलाना था ताकि मातृभूमि के लिए प्रेम और भक्ति की भावना की शुरुआत की जा सके।

'वंदे उत्कल जननी' कांतकवि लक्ष्मीकांत महापात्र द्वारा लिखित एक ओडिया देशभक्ति कविता है। उनकी रचना 'वंदे उत्कल जननी' को उत्कल सम्मेलन के बालासोर सत्र के स्वागत गीत के रूप में अपनाया गया था। इस गीत को ओडिशा के राज्य गान का दर्जा दिया गया। उत्कल जननी (माँ उत्कल की जय) एक देशभक्ति मकसद के कारण लिखा गया था-

बन्दे उत्कल जननी,
चारु हासमयी चारु भाषमयी,
जननी, जननी, जननी॥
पूत-पयोधि-बिधौत-शरीरा,
ताळतमाळ-सुशोभित-तीरा,

शुभ्र तटिनीकूळ-शीकर-समीरा,
जननी, जननी, जननी॥

कविता में उत्कल को आत्मविश्वास और शक्ति को बचाए रखने और असुरक्षा और भय की स्थिति से अपने आत्म-सम्मान और गरिमा को बनाए रखने की एक परिकल्पना की गई। इस कविता से ओड़िशा में अलग प्रांत के लिए आंदोलन में तेजी आई।

लक्ष्मीकांत के गीतों और क्रांतिकारी जोश के गीतों से बनी प्रेरणा ने उन्हें उड़िया का अमूल्य खजाना बना दिया। स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता गांधी जी थे। गांधी पहली बार 1921 में उड़ीसा आए और उनकी लहर के तहत उड़ीसा में रचनात्मक कार्यों की एक श्रृंखला का उद्घाटन किया गया जिसमें कोकिला देवी ने प्रमुख भूमिका निभाई। लक्ष्मीकांत ने अपना धारावाहिक 'द ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए नॉन-कोपरेटर' लिखना शुरू किया जो बाद में 'उत्कल साहित्य' में प्रकाशित हुआ। कताई चरखा और खादर को लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए उन्होंने लिखा-

"अरे भाई,
कताई आपकी मुक्ति है,
देखिए, आपकी जमीन एलियंस से भरी है
मजे से देखना और मुस्कुराना।
तुम कब तक उनके दास रहोगे
और व्यर्थ परिश्रम करते रहो?"

लक्ष्मीकांत के लेखन ने वांछित प्रभाव उत्पन्न किया, लोगों ने चरखा, कताई, खादर को स्वतंत्रता संग्राम के हिस्से के रूप में स्वीकार किया। कवियों का कर्तव्य है कि वे समय के अनुरूप काव्य रचना कर समाज को दिशा दें जो कि कांतकवि की राष्ट्रवादी कविताओं में इस प्रवृत्ति को निश्चित ही पाते हैं। फकीर मोहन सेनापति के शब्दों में- **"लिखते रहो, आत्मभाव के साथ चलते रहो, सुवर्ण रहेगा और अवशेष जलकर राख हो जाएगा।"**

1953 में लक्ष्मीकांत जी का स्वर्गवास हो गया। ढेर सारी उपलब्धियां समय के साथ अपना पूर्व गौरव खो चुकी थी लेकिन कुछ चीजों ने अपनी उपयोगिता, गरिमा और विरासत के लिए अपनी शाश्वत चमक बरकरार रखी। कांतकवि की राष्ट्रवादी कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं। इन कविताओं की रचना समय की आवश्यकता के अनुसार की गई थी लेकिन देश की आजादी के अपेक्षित परिणाम मिलने के बाद भी इनमें से कुछ कविताओं ने राष्ट्रभक्ति एवं देशभक्ति को आज भी जीवित रखा है।

****

राजकुमार दास
प्रबंधक (राजभाषा)
अंचल कार्यालय, भुवनेश्वर

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय

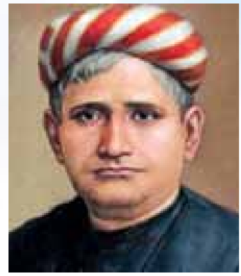

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात अंग्रेजों को यह एहसास हो गया था कि देशवासियों में राष्ट्रप्रेम की भावना यदि इसी प्रकार प्रगाढ़ होती रही तो भारतवर्ष से ब्रिटिश शासन के पैर उखड़ते देर नहीं लगेगी। ऐसे में यह आवश्यक था कि लोगों के मन में राष्ट्र-भक्ति की जगह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भक्ति-भाव में वृद्धि की जाए। अंग्रेजी हुक्मरानों ने अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूरे देश में यह फरमान जारी करवा दिया कि अब से देश में होनेवाले किसी भी कार्यक्रम में महारानी के सम्मान वाले गीत- **"गॉड! सेव द क्वीन"** को गाना अनिवार्य होगा। अंग्रेजों के इस फरमान को सुनकर देशवासी काफी मर्माहत हुए एवं इन परिस्थितयों में एक ऐसे गीत की आवश्यकता महसूस होने लगी जो भारतवर्ष के करोड़ों लोगों का माँ भारती के प्रति प्रेम भाव को उद्घाटित कर सके। ऐसे समय में बंगाल के एक युवा लेखक ने अपनी कलम से एक ऐसे गीत की रचना कर डाली जिसने अंग्रेजी शासन व्यवस्था की नींव हिलाकर रख दी। अनगिनत आलोचनाओं के पश्चात भी स्वतंत्रता संग्राम में इस गीत के अतुलनीय योगदान को देखते हुए, इसे स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय गीत के रूप में चुना गया। आपको विदित हो चुका होगा, हम बात कर रहे हैं, भारत के राष्ट्रीय गीत **"वन्दे मातरम्"** की और वह युवा लेखक और कोई नहीं बल्कि बंगाल की पुण्य भूमि में जन्मे महान रचनाकार ऋषि बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी थे।

बंकिमचंद्र जी का जन्म एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में 26 जून, 1838 में हुआ था। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद हुगली के मोहसीन कॉलेज में दाखिला लिया। हुगली कॉलेज में पढ़ाई पूरी करने के उपरांत जुलाई 1856 में उन्होंने कानून की पढ़ाई के लिए कलकत्ता प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। बंकिमचंद्र एक प्रतिभाशाली रचनाकार होने के साथ-साथ एक मेधावी छात्र भी थे। 1869 में उन्होंने कानून की डिग्री प्राप्त की। कानून की पढ़ाई खत्म होने के तुरंत बाद उन्हें डिप्टी मजिस्ट्रेट पद पर नियुक्ति मिल गई। कुछ साल तक उन्होंने तत्कालीन बंगाल सरकार में सचिव पद पर भी काम किया। अपनी नौकरी के दौरान बंकिमचंद्र ने रायबहादुर और सीआईई जैसी उपाधियां भी अर्जित कीं। उन्होंने सरकारी नौकरी से 1891 में सेवानिवृत्ति ले ली थी।

यद्यपि सरकारी नौकरी में रहने के कारण बंकिमचंद्र को एक मर्यादित सीमा में रहकर ही राजनैतिक विषयों पर समर्थन या विरोध करने का अधिकार था परन्तु इन सभी बातों के होते हुए भी उन्होंने कभी भी अपनी स्वतंत्र चेतना एवं आत्मसम्मान से समझौता नहीं किया।

प्रसिद्ध विद्वान हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि **"बंकिम की इतिहास में, विशेषकर यूरोपीय पुनर्जागरण के इतिहास में विशेष रूचि थी और वह बंगाल में भी उसी प्रकार के अभ्युत्थान का स्वप्न देखते थे।"**

बंकिमचंद्र चटर्जी कविता और उपन्यास दोनों में माहिर थे। वर्ष 1865 में उनकी प्रथम बांग्ला कृति **'दुर्गेशनंदिनी'** प्रकाशित हुई थी। उनकी अगली रचनाएं-1866 में **'कपालकुंडला'**, 1869 में **'मृणालिनी'**, 1873 में **'विषवृक्ष'**, 1877 में **'चंद्रशेखर'**, 1877 में **'रजनी'**, 1881 में **'राजसिंह'** और 1884 में **'देवी चौधरानी'** थीं। बंकिमचंद्र चटर्जी ने 1872 में मासिक पत्रिका **'बंगदर्शन'** का भी प्रकाशन किया।

"आनंदमठ" उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास था जो 1882 में प्रकाशित हुआ जिससे प्रसिद्ध गीत **'वंदे मातरम्'** लिया गया है। इस उपन्यास में उत्तर बंगाल में 1773 के सन्यासी विद्रोह का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के माध्यम से लोगों में देशभक्ति की भावना जगाने का प्रयास किया गया है। बंकिमचंद्र का अंतिम उपन्यास **'सीताराम'** (1886) है। बंकिमचंद्र के उपन्यासों का भारत की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। बंकिमचंद्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उनके कथा साहित्य के अधिकतर पात्र शहरी मध्यम वर्ग के लोग हैं। इनके पात्र आधुनिक जीवन की त्रासदियों और प्राचीन काल की परंपराओं से जुड़ी दिक्कतों से साथ-साथ जूझते हैं। यह समस्या भारत भर के किसी भी प्रांत के शहरी मध्यम वर्ग के समक्ष आती है। लिहाजा मध्यम वर्ग का पाठक बंकिम के उपन्यासों में अपनी छवि देखकर इन रचनाओं से आत्मिक रूप से जुड़ जाता था।

जब बात बंकिमचंद्र जी की चल रही हो और ऐसे में हमारे देश के राष्ट्रीय गीत **'वंदे मातरम्'** का उल्लेख न हो तो यह चर्चा थोड़ी अधूरी-सी अवश्य लगती है। इस गीत की रचना कई साल पहले हुई थी लेकिन बाद में 'आनंद मठ' उपन्यास में इसे जोड़ा गया और इस उपन्यास के जरिए ही अधिकांश लोगों को इसका पता चला। गीत को उपन्यास में भावानंद नाम के एक साधु ने गाया था। इस गीत में बंकिमचंद्र ने भारत को दुर्गा का एक रूप माना और सभी देशवासियों को उस माँ की संतान माना। गीत इस बात पर जोर देता है कि बच्चों को अंधेरे और दर्द से घिरी अपनी माताओं की पूजा और रक्षा करनी चाहिए।

यह गीत मुख्यत: देशवासियों में मातृभूमि के प्रति प्रेम और श्रद्धा के भाव को जागृत करते हुए, अंधेरे और दर्द से घिरी अपनी माँ भारती की रक्षा करने तथा उसके बच्चों को प्रेरित और प्रोत्साहित करने के लिए लिखा गया था। इस संबंध में डॉ. राजेंद्र प्रसाद का कथन है "इसमें मूर्तिपूजा के लिए आह्वान नहीं किया गया है और 'दुर्गा' से अभिप्राय किसी मूर्ति से नहीं बल्कि मातृभूमि का ही दूसरा नाम है।" जवाहरलाल नेहरू ने कहा "मेरे विचार में यह सम्पूर्ण गीत और इसके सम्पूर्ण शब्द किसी भी दृष्टि से निर्दोष हैं और किसी को इस पर आपत्ति नहीं करनी चाहिए।" बंकिमचंद्र जी

‘सर्व-धर्म-समभाव’ में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। अपनी सरकारी नौकरी में रहते हुए अपनी रचना द्वारा लोगों में जागृति पैदा करने के लिए, उन्हें ऐतिहासिक घटनाओं में अपनी कल्पना का रंग चढ़ाकर उसे जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करना होता था।

इस गीत को गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने 1896 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गाया था। पांच साल बाद, 1901 में, कलकत्ता में दूसरे सम्मेलन में, श्री चरणदास ने फिर इस गीत को गाया, उसके बाद 1905 में बनारस सम्मेलन में सरला देवी चौधरी ने यह गीत गाया। धीरे-धीरे यह गीत पूरे भारतवर्ष में जोर-शोर से गाया जाने लगा। देखते ही देखते ‘वंदे मातरम्’ स्वतंत्रता संग्राम का ऐसा जयघोष बन गया जिसके स्वरों ने अंग्रेजी शासन की नींद हराम कर दी। देश की विभिन्न रैलियों के दौरान लोगों द्वारा आत्मा को तृप्त करने के लिए ‘वंदे मातरम्’ गीत गाया जाता था। जब लाला लाजपत राय ने लाहौर से ‘जर्नल’ प्रकाशित करना शुरू किया तो उन्होंने इसका नाम ‘वंदे मातरम्’ रखा। इसके अलावा अंग्रेजों द्वारा गोली मारे गए स्वतंत्रता सेनानी मातंगिनी हाजरा की जुबान पर आखिरी शब्द ‘वंदे मातरम्’ था। संविधान सभा के अध्यक्ष और भारत के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद द्वारा 24 जनवरी 1950 को ‘वंदे मातरम्’ को राष्ट्रीय गीत का दर्जा देने की घोषणा की गई। तब से लेकर देश की आजादी के इतने वर्षों पश्चात, आज भी यह गीत जन-सामान्य का हृदय हार बना हुआ है। 2002 में बीबीसी के एक सर्वेक्षण के अनुसार, ‘वंदे मातरम्’ दुनिया का दूसरा सबसे लोकप्रिय गीत है। इसके लिए दुनिया भर से लगभग 7000 गीतों का चयन किया गया और 155 देशों के लोगों ने सर्वेक्षण में, अब तक के दस सबसे लोकप्रिय गीतों का चयन किया। सर्वे में टॉप 10 गानों में ‘वंदे मातरम्’ दूसरे नंबर पर रहा।

आधुनिक भारत के निर्माताओं में बंकिमचंद्र की गणना मुख्यतः उनकी कृतियों के माध्यम से प्रसारित राष्ट्रवाद के सन्देश पर आधारित है। अपने ऐतिहासिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक उपन्यासों तथा अन्य कृतियों के माध्यम से उन्होंने भावनात्मक दृष्टि से जनसामान्य में देशभक्ति की लहर जागृत कर दी। 8 अप्रैल 1894 को ऐसे साहित्यसेवी, देशसेवी एवं एक सच्चे राष्ट्रप्रेमी का निधन हो गया। बंकिमचंद्र जी की मृत्यु की खबर से बंगाल ही नहीं बल्कि पूरा भारतवर्ष शोक के अंधकार में डूब गया।

****

सूरज प्रसाद साव
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, कोलकाता (उत्तर)

नलिनी बाला देवी

असमिया साहित्य की महान कवयित्री

कई लोगों ने महान भारतीय कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान या महादेवी वर्मा के बारे में जरूर सुना होगा, लेकिन स्थानीय भाषा के कवियों के बारे में ज्यादा लोग नहीं जानते। नलिनी बाला देवी (1898-1977) असमिया साहित्य की दुनिया की सबसे उल्लेखनीय शख्सियतों में से एक हैं।

नलिनी बाला देवी का जन्म 23 मार्च 1898 को असम के गुवाहाटी में हुआ था। उनके पिता कर्मवीर नबीन चंद्र बोरदोलोई एक असमिया भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यकर्ता और लेखक थे। नलिनी बाला देवी असमिया भाषा की प्रसिद्ध कवयित्री थीं। इनकी कविताएं अपनी राष्ट्रवादिता तथा रहस्यवाद के लिए प्रसिद्ध हैं।

नलिनी बाला देवी पढ़ने लिखने के लिए पिता के साथ कलकत्ता चली गईं। यहीं पर नलिनी बाला की लेखन और राष्ट्रवादी आंदोलन दोनों में दिलचस्पी बढ़ी। उनके जीवन में हुई घटनाओं ने उनके जीवन और साहित्य की धारा को बदल दिया। उस समय की सामाजिक परंपरा के अनुसार उनकी शादी 12 साल की उम्र में हो गई। उनके चार बच्चे थे लेकिन आठ साल बाद सन् 1917 में उनके पति का निधन हो गया। उन्होंने बहुत जल्द अपने दो छोटे बेटों को भी खो दिया लेकिन दुखों का सिलसिला यहां खत्म नहीं हुआ। सन् 1922 में उनके पिता को अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन में भाग लेने के आरोप में जेल में डाल दिया गया था। उनके बेटे को जिंदा जला दिया गया। इन सब से जूझ कर उन्होंने काव्य संसार में शरण ली। उनकी कविताएँ त्रासदी, देश-प्रेम और भक्ति भावनाओं से भरी थीं। उन्होंने जेल में बंद अपने पिता को पत्र भी लिखे थे।

अध्यात्म और देशभक्ति उनकी रचनाओं के दो प्रमुख विषय रहे हैं। उनके लिए देशभक्ति मानवता के निवास-स्थान की तरह थी। अपने पिता और राष्ट्र के प्रति उनके समर्पण से प्रेरित होकर उन्होंने अपने पिता की एक बेहतरीन जीवनी लिखी। उन्होंने अपने पिता की देशभक्ति की भावना को आत्मसात कर देशभक्ति की कुछ कविताएँ लिखीं जिनमें राष्ट्र के प्रति उनके प्रेम और इसके गौरवशाली अतीत को पूरी शिद्दत और पुरजोर तरीके से व्यक्त किया गया। उनके लेखन का एक दिलचस्प पहलू यह है कि कैसे उन्होंने असम की सुंदरता के साथ साथ भारत की सुंदरता का वर्णन किया है। भारत, रवींद्र तर्पण, महानदर आत्मा कहिनी (ब्रह्मपुत्र नदी की जीवनी) देशभक्ति पर उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

सबसे पहले मैंने आँखें खोलीं तेरी गोद में मां
जन्म की पहली सुबह में,
सो कर तेरी गोद में आँखें बंद कर लूंगी
जीवन की अंतिम संध्या में।

असमिया से हिंदी में अनुवादित ये पंक्तियाँ उनकी एक प्रसिद्ध असमिया कविता 'जन्मभूमि' से ली गयी हैं। जिसे कवयित्री की मातृभूमि के प्रति गहरी और अतिप्रवाह प्रेम की एक अतुलनीय अभिव्यक्ति माना जाता है। साहित्य में तो उन्होंने नाम कमाया ही, साथ ही महात्मा गांधी से बेहद प्रेरित होकर उन्होंने अपने तरीके से स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका अदा की।

नलिनी बाला देवी को उनके साहित्य में रहस्यवाद के लिए भी जाना जाता है। कहा जाता है कि वह उपनिषद् और रवींद्रनाथ टैगोर के साहित्य से बहुत प्रेरित थीं। रहस्यवाद एक आध्यात्मिक और पारलौकिक दुनिया की अवधारणा पर आधारित है। चंद्रकुमार अग्रवाल जैसे असमिया कवियों को जहां पारलौकिकता पर उनके लेखन के लिए जाना जाता है, वहीं नलिनी बाला देवी को असम साहित्य में अध्यात्मवाद को चित्रित करने के लिए जाना जाता है। वह कर्म की अवधारणा में विश्वास करती थीं और उनकी राय में मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। उनकी रचना 'परम-तृष्णा' एक लंबी कविता है, जिसमें उनकी कुछ दार्शनिक मान्यताओं का विवरण है। वह लिखती हैं (अनूदित):

कई बार मैंने तुम्हारी गोद में जन्म लिया
और कई बार वापस चली गई
कर्मों के अधूरेपन के कारण,
कई बार तुम्हारे पास वापस आई।

साहित्य के अलावा, नलिनी बाला ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी योगदान दिया। वह उन कुछ महिलाओं में से थीं जिन्होंने असम में गांधी जी के असहयोग और स्वदेशी आंदोलन का खुलकर समर्थन किया। नलिनी बाला ने असम की कुछ अन्य महिलाओं जैसे हेमंता कुमारी देवी और गुणेश्वरी देवी के साथ मिलकर खादी के उत्पादन को बढ़ाने के लिए गुवाहाटी में एक बुनाई प्रशिक्षण केंद्र खोला। कताई और बुनाई को बढ़ावा देना असहयोग आंदोलन के प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रमों में से एक था। कहा जाता है कि उन्होंने सन् 1950 में बच्चों, उनकी शिक्षा और कल्याण के लिए एक संगठन बनाया था। उनकी साहित्यिक विरासत आज भी असमिया साहित्य में जीवित है।

सन् 1957 में साहित्य में उनके योगदान के लिए भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया था। उन्हें उनके कविता संग्रह "अलकनंदा" (1964) के लिए 1968 में साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। वह पद्मश्री से सम्मानित होने वाली पहली महिला असमिया कवि और असम साहित्य सभा की अध्यक्षता करने वाली पहली महिला थीं। असम साहित्य सभा की स्थापना दिसंबर 1917 में असम और असमिया साहित्य की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए की गई थी। वे अपने युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में से एक थीं। दर्शन में डूबी उनकी कविताएँ आज भी प्रेरणा देती हैं। दिसंबर 1977 में उन्होंने जीवन की अंतिम सांस ली और इस संसार को अलविदा कह दिया।

****

चेतना शर्मा
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, आसनसोल

कलम आज उनकी जय बोल : रामधारी सिंह 'दिनकर'

राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म 30 सितम्बर 1908 को बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। दिनकर के पिता का नाम रवि सिंह था जो किसान थे। रवि यानि सूर्य, सूर्य को दिनकर भी कहा जाता है। दिनकर प्रकाश का स्रोत है अत: रामधारी सिंह ने अपना उपनाम 'दिनकर' रख लिया। स्वतंत्र भारत में दिनकर जी बिहार विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक रहे। 1952 से 1954 तक वे राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे। इसके बाद उन्हें भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। कुलपति पद से त्याग-पत्र देने के बाद वे 1965 में भारत सरकार के हिंदी सलाहकार नियुक्त किए गए। अपनी साहित्य सेवा के लिए दिनकर जी को 1956 में "पद्मभूषण" से अलंकृत किया गया।

दिनकर जी ने जब लिखना शुरु किया था तब तक हिंदी साहित्य जगत में छायावाद के चार स्तम्भ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी प्रतिष्ठित हो चुके थे। लेकिन दिनकर जी ने तत्कालीन प्रचलित परम्परा का अनुकरण करने के स्थान पर अपने लिए एक अलग काव्य सृजन की दिशा निर्धारित की थी। उनकी कविता में आवेगमय राष्ट्रीयता और सामाजिक चिंतन दोनों हैं। दिनकर का पहला प्रकाशित काव्य-संग्रह "बारदोली-विजय" है जिसे उन्होंने 1928 ई में बारदोली में सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में सफल आंदोलन से प्रभावित होकर लिखा था। इसमें संकलित 10 कविताओं में दिनकर की राष्ट्रीय भावना बीज रूप में विद्यमान है। कालांतर में वे ओज, पौरुष, हुंकार और विद्रोह के कवि के रूप में सामने आए और उन्हें उग्र विचारों के राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली। हुंकार की कविताओं में सर्वत्र मानव पीड़ा, विद्रोह और बलिदान का स्वर व्याप्त है जिसका आधार सामाजिक और राष्ट्रीय दोनों हैं। "रेणुका" में कवि लिखते हैं :

"हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध-दूध ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं"

रामधारी सिंह 'दिनकर' की इन पँक्तियों में ब्रितानी सरकार के प्रति एक आदमी के विद्रोह का स्वर है जो अब मूक-बधिर बन कर जीने के लिए तैयार नहीं है। वो अब अपनी भावी पीढ़ी के लिए संघर्ष करना चाहता है चाहे इसकी कीमत कुछ भी हो। शोषण और पीड़ा सहते-सहते अब वह मृत्यु के भय से मुक्त हो चुका है। दिनकर जी की रचना "रेणुका" जब 1935 ई. में प्रकाशित हुई तो अंग्रेज चौंक गए क्योंकि कवि स्वयं सरकारी नौकरी करते थे। दिनकर जी पर सरकार विरोधी होने का आरोप लगाया गया और उन्हें सरकारी उत्पीड़न भी सहना पड़ा। लेकिन दिनकर जी ने दृढ़ता से लिखा

"यदि राष्ट्रभक्ति अपराध है तो मैं यह जान लेना चाहता हूँ"। दिनकर जी की मजबूरी थी कि परिवार चलाने के लिए उन्हें सरकारी नौकरी करनी पड़ती थी लेकिन उनका राष्ट्रभक्त कवि हृदय हमेशा ब्रितानी सरकार के खिलाफ रहा। वे सक्रिय क्रांतिकारी नहीं बन पाए लेकिन उनकी कलम से हमेशा क्रांति की चिंगारी निकलती रही। फलत: इसकी कीमत भी दिनकर जी को चुकानी पड़ी। बताया जाता है कि दिनकर जी का चार साल में बाइस बार तबादला किया गया था। इसके बाद उनका युद्ध-प्रचार विभाग में स्थानांतरण कर दिया गया। यह दिनकर जी के लिए घोर आत्मसंघर्ष का दौर था। उन्हें अत्यंत कठिन मानसिक द्वंद से गुजरना पड़ा। फिर भी वे हारे नहीं और अपनी लेखनी के लिए ईश्वर से वरदान में आग का ही तेज माँगा :

निर्वाक है हिमालय गंगा भी डरी हुई है
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है
हम दे चुके लहू हैं, तू देवता विभा दे
अपने अनल विशिख से आकाश जगमगा दे।

1942 ई में देश की स्वतंत्रता को कुचलने के लिए अंग्रेजों का दमन चक्र और तेज हो गया। इसी समय दिनकर जी ने प्रतिक्रिया में 'कुरुक्षेत्र' लिखना प्रारम्भ किया है। उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार की नौकरी छोड़ दी और पत्रकारिता करने लगे। इसी अवधि में उन्होंने नई दिल्ली, हाहाकार, अनल किरीट, हिमालय, विपथगा जैसी महत्वपूर्ण कृतियाँ लिखीं। दिनकर जी राष्ट्रीय एवं सामाजिक संबंधों के कवि हैं। दिनकर जी की रचनाओं में अतीत का गौरव गान है तो देश के दमन एवं शोषण के विरोध में क्रांति और जागरण का स्वर भी है। मंगल आह्वान, ताण्डव, कविता की पुकार, कस्मै देवाय आदि जन जागरण संबंधी उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। कवि नवजागरण का संदेश देते हुए कहते हैं कि

''दो आदेश फूंक दूँ श्रृंगी
उठे प्रभाती राग महान
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में
जागें सुप्त भुवन के प्राण"

"भारत का यह रेशमी नगर" कविता में दिनकर जी ने सत्ता-लोलुप देशभक्तों को भी आड़े हाथों लिया है:

तो होश करो दिल्ली के देवों, होश करो
सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली।

"हुँकार" दिनकर जी की मुक्तक कविताओं का संग्रह है जो 1939 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की प्रत्येक कविता क्रांति और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से परिपूर्ण है। इसमें बेबस और लाचार भारतीयों के दिल में सुलगती हुई क्रांति की चिंगारी की अभिव्यक्ति है जो अब अपने शहीदों की आहूति का मूल्य चाहते हैं:

"कलम आज उनकी जय बोल
जला अस्थियाँ बारी-बारी
चिटकायी जिनमें चिंगारी
जो चढ़ गए पुण्य वेदी पर लिए बिना गरदन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल" प्रणति (हुँकार)

दिनकर जी महात्मा गाँधी के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखते थे। उनके निधन पर दिनकर जी ने लिखा था-

"चालीस कोटि के पिता चले, चालीस कोटि के प्राण चले"

दिनकर जी महात्मा गाँधी के प्रति आग्रह तो रखते थे किंतु वे क्रांति के लिए अहिंसा को पूरी तरह समर्थ नहीं मानते थे। "कुरूक्षेत्र" में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि अन्याय और अत्याचार के विनाश के लिए शस्त्र उठाना भी धर्म है और इनका विरोध करने के लिए हिंसा भी अहिंसा से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है इसीलिए "कुरुक्षेत्र" को अपने समय के "आक्रोश का काव्य" कहा गया है। दिनकर जी की रचनाओं में इतिहास की उपस्थिति विगत काल की सुखद स्मृति की तरह नहीं है बल्कि उसका सचेत उपयोग वर्तमान के जनमानस को झकझोरने के लिए किया गया है। वास्तव में, दिनकर का काव्य वर्तमान में यथार्थ के धरातल पर अतीत के आदर्शों के साथ भविष्य की सुनहरी सृष्टि के निर्माण का आग्रही है।

वस्तुत: भारत में राष्ट्रप्रेम की अवधारणा पाश्चात्य अवधारणा से अलग भी रही है और अधिक व्यापक भी रही है। भारत की सांस्कृतिक अंतर्धारा में नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान, जीवों पर दया, परम्पराओं के प्रति समान रूप से सम्मान भाव आदि काल से अक्षुण्ण रहे हैं। भारत के इस समन्वय तत्व की अलख को हमारे मनीषियों एवं कवियों ने हर युग में जगाए रखा है। पश्चिम के लिए राष्ट्र एक राजनीतिक अवधारणा है लेकिन हमारे देश में यह एक सांस्कृतिक अवधारणा है जिसकी अभिव्यक्ति करते हुए दिनकर जी ने बहुत सुंदर पंक्तियाँ लिखी हैं-

मानचित्र में जो मिलता है, नहीं देश भारत है।
भू पर नहीं, मनों में ही बसा कहीं शेष भारत है।
भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण-विशेष नर का है।
एक देश का नहीं शील, यह भूखण्ड भर का है।

****

सुजाता राज़ी
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, लखनऊ

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' "अब्र"

प्रस्तावना: "राजते दीप्यते प्रकाशते शोभती इति राष्ट्रम्" अर्थात जो स्वयमेव देदीप्यमान रूप में विविध वैभव से सुशोभित हो, उसे राष्ट्र कहा जाता है। भारत के संविधान की 'उद्देशिका' में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'नेशन' शब्द के हिंदी पर्याय के रूप में किया गया किया गया है। अतएव, राष्ट्र का संबंध जन्मभूमि से है।

राष्ट्र की संकल्पना का मूल आधार राष्ट्रीय चेतना की वह मानवीय भावना है जो एकत्व की ओर प्रेरित करती है। राष्ट्रीय चेतना की इसी भावना को जाग्रत रखने और जागृत करने में बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' "अब्र" की महती भूमिका है।

काव्यकर्म एवं राष्ट्रीय चेतना: बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' की कविताओं में समकालीन भारतीय स्थितियों, राष्ट्र की हीन दशा-दिशा, समाज सुधार और समकालीन सामाजिक विषयों का भरपूर चित्रण मिलता है। इन्होंने विदेशी शासन की बर्बरता से पीड़ित भारतीय जनमानस में राष्ट्रभक्ति की भावना को जागृत करने का भरपूर प्रयास किया है, जो **"धन्य भूमि भारत सब रतननी की उपजावनी"** आदि में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है।

प्रेमघन का झुकाव संगीत, नज्मों और गजलों की ओर भी था। उर्दू-फारसी भाषाओं का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उन्होंने "अब्र" तखल्लुस (उपनाम) के साथ गजल, नज्म, और शेरों की भी रचना की। उन्होंने 1930 में मीरजापुर में "सद्धर्म सभा" तथा 1931 'रसिक समाज' की स्थापना की।

प्रेमधन जी आधुनिक हिंदी के आविर्भाव काल के सफल कवि के साथ ही उच्च कोटि के गद्यकार और नाटककार भी थे। उन्होंने 'भारत सौभाग्य', 'प्रयाग रामागमन' आदि नाटकों तथा 'बनारस का बुढ़वा मंगल' और 'दिल्ली दरबार में मित्र मंडली के यार' आदि निबंधों का भी प्रणयन किया है। इन्होंने कई नाटक लिखे हैं जिनमें "भारत सौभाग्य" 1888 में कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिए लिखा गया था।

प्रेमधन की कविता में भारतेन्दु के काव्य की भाँति ही भक्ति, शृंगार, राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति के सम्मिलित स्वर दृष्टिगत होते हैं। पितर प्रलाप, कलिकाल, तर्पण, मंगलाषा, और कजली होली आदि रचनाओं में राष्ट्रभक्ति की व्यापक झलक मिलती है। 'आनंद

बधाई' में हिन्दी भाषा के प्रति अनन्य प्रेम के दर्शन होते हैं। 'जीर्ण जनपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', 'मयंक-महिमा', 'अलौकिक लीला', 'वर्षा-बिंदु', 'संगीत सुधासरोवर', 'भारत भाग्योदय' काव्य आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं।

गद्य-पद्य के अलावा उन्होंने ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा में बेजोड़ लोकगीतात्मक कजली/कजरी, होली, चौती आदि की रचना की है। उनके काव्यकर्म का प्रमुख क्षेत्र जातीयता, समाज दशा और देश प्रेम की अभिव्यक्ति है। अपनी रचनाओं के द्वारा उन्होंने देश की दुरावस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का व्यापक वर्णन और चित्रण किया है। "कलिकाल तर्पण" में जहाँ उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत एवं तत्कालीन दुर्दशा का चित्रण किया है, वहीं पितर प्रलाप में राष्ट्रीयता का प्रबल स्वर दिखाई देता है-

निर्धन दिन-दिन होत है, भारत भुव सब भांति
ताहि बचाई न कोई निज भुज बुद्धिबल कांति

जन्मभूमि की दुर्दशा की चिंता उन्हें हमेशा सताती थी, उनका मानना था कि जिसके हृदय में जन्मभूमि की चिंता नहीं है उसे मानव की बजाय जड़ जीव मानना ही बेहतर है-

रहत न तत्पर जो, ताको मुख देखेहुँ पातक।
नर पिशाच सों जननी जन्मभूमि को घातक।।

प्रेमघन की कविताओं में अपने देश के प्रति गौरव का बोध है जिसे विधाता ने विशाव के मस्तक के रूप में रचा है और जहाँ अन्न-धन, सुख-संपत्ति, प्रकृति की अकूत संपदा, अतुलनीय प्राकृतिक सौन्दर्य और सबसे ऊपर कुलशील गुणवान जनमानस के प्रति गौरव का बोध है-

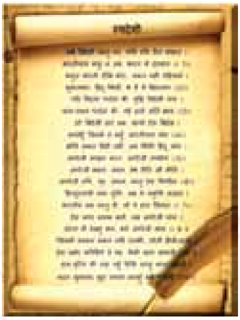

जिनकी आशा करत सकल जग हाथ पसारत।
आसृत औरन के न रहे कबहूँ नर भारत।।

अंग्रेजी राज के दौरान भारतीयों का विदेशी वस्तुओं के प्रति लगाव, उनकी संस्कृति के प्रति आकर्षण और विदेशी वेशभूषा के अनुकरण ने उन्हें बेहद व्यथित किया जिसका दर्शन हमें उनकी "स्वदेशी" कविता में होता है।

सबै बिदेसी वस्तु नर, गति रति रीत लखात।
भारतीयता कछु न अब, भारत में दरसात।।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में बोलचाल और व्यवहार में हिन्दी भाषा के प्रति गुरेज और अंग्रेजी भाषा और पहनावे की तरजीह को उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के साफ-साफ लिखा है-

बोलि सकत हिंदी नहीं, अब मिलि हिंदू लोग।
अंगरेजी भाखन करत, अंगरेजी उपभोग।।

उत्तर भारत के लोगों का स्वभाव, रीति-रिवाज, वेशभूषा के प्रति अनन्य लगाव तथा प्रबुद्धता के नाम पर भारतीयता को छोड़ विदेशी विद्या के अंधानुकरण से उन्हें बेहद ठेस पहुँचती है। अपनी तल्ख टिप्पणी में वे उन राजनेताओं को भी माफ नहीं करते जिनसे भारतीय परिधान धोती नहीं सँभलती है। अंग्रेजी पहनावे की नकल में भारत के परंपरागत पहनावे से किनारा कर पाश्चात्य पहनावे को अपनाने तथा भारतीय पोशाक को त्यागनेवाले नेताओं पर तंज कसते हुए विलाप करते हैं-

जिनसों सम्हल सकत नहिं तनकी, धोती ढीली-ढाली।
देस प्रबंध करिहिंगे वे यह, कैसी खाम खयाली॥

ऐसे माहौल में भी भारतीयों को उनके गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण कराते हुए उद्‌बोधित करते हैं-

"उठो आर्य संतान, बस न बिलंब लगाओ"

भारतवर्ष की उन्नति की कामना करते हुए लिखते हैं-

"सब द्वीप की विद्या कला विज्ञान आईटी चली आवई।
उधम निरत आरन प्रजा रहि सुख समृद्धि बढ़ावई॥
दुष्काल रोग अनीति नसि, सठम उन्नति पावई।
भर विवुध, अन्न, सुरात्र भारत भूमि नीट उपजाई॥

समाहार: वर्ष 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय से भारत के आजाद होने तक असंख्य कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता को आंदोलित करने और उनमें राष्ट्रीयता का भाव जगाने के लिए साहित्य सृजन किया है। उत्तर प्रदेश के कवियों में बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन' ने भी अपनी कविताओं, नाटकों, निबंध आदि के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना को नव चेतना और नव जागृति देने में अपना योगदान दिया है और उनकी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की सुप्तधारा को नयी दिशा मिली और जनमानस में नव चेतना और जागृति का संचार हुआ।

****

संदर्भ:

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के संस्मरण
2. कविता कौमुदी, संपादक-रामनरेश त्रिपाठी
3. प्रेमघन सर्वस्व
4. कविता कोश

राजेश कुमार सिंह
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
स्टाफ कॉलेज लखनऊ

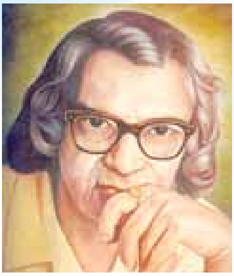

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभ-प्रसाद, पंत, वर्मा और निराला में से एक हैं। उनका जन्म उत्तराखंड के बागेश्वर जिले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई 1900 ई. को हुआ। उनकी माँ के निधन के बाद उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका नाम गोसाई दत्त रखा गया।

वे 1910 में शिक्षा प्राप्त करने के लिए गवर्मेन्ट हाईस्कूल अल्मोड़ा गए। वहां उन्होंने अपना नाम गोसाई दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन किया।

इलाहाबाद में उनकी काव्यचेतना का विकास हुआ। 1938 में प्रगतिशील मासिक पत्रिका 'रूपाभ' का सम्पादन किया। 1958 में 'युगवाणी' से 'वाणी' काव्य संग्रहों की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'चिदम्बरा' में प्रकाशित हुआ, जिससे 1968 में उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1960 में 'कला और बूढ़ा चाँद' काव्य संग्रह के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। 1961 में 'पद्मभूषण' की उपाधि से वे विभूषित किए गए।

निसर्ग के उपादानों का प्रतीक व बिम्ब के रूप में प्रयोग उनके काव्य की विशेषता रही। 1964 में विशाल महाकाव्य 'लोकायतन' का प्रकाशन हुआ। वह जीवन-पर्यन्त रचनारत रहे। उनकी मृत्यु 28 दिसम्बर, 1977 को हुई। 1926 में उनका प्रसिद्ध काव्य संकलन 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। पन्त जी प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उन्होंने प्रकृति के दोनों रूपों-कोमल व कठोर पर काव्य रचा। 'गुंजन' में कवि जग-जीवन के विस्तृत क्षेत्र में पदार्पण करता है। 'युगान्त' में धरती के गीत है। 'युगवाणी' में कवि का प्रगतिवादी स्वर मुखर है। वह मानव-जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास करने लगते हैं। 'ग्राम्या' में वे भारत की आत्मा, गाँवों को सजीव रूप में चित्रित करते हैं। वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हैं-

साक्षी है इतिहास आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का शासन होगा अब उत्पादक यन्त्रों पर।

पन्त जी एक ऐसे युग का निर्माण चाहते थे जिसमें वर्गभेद न हो, समानता हो, जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ सभी के लिए सुलभ हों। पन्त जी ने विश्व बन्धुत्व एवं लोक कल्याण की भावना पर विशेष बल दिया है। वे कहते हैं-

वह हृदय नहीं जो करे न प्रेमाराधन।
मैं चिर प्रतीति में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण।।

देश प्रेम की व्याख्या पंत जी सत्य, अहिंसा और मानव निर्माता देश, भारत के रूप में करते हैं-

जय जन भारत जन मन अभिमत
जन गण तंत्र विधाता
जय गण तंत्र विधाता
गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल
कटि विंध्याचल सिंधु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता
जय जन भारत...
जय हे जय हे जय हे
शांति अधिष्ठाता
जय-जन भारत...

सुमित्रानंदन पंत जी ने 15 अगस्त 1947 नामक एक कविता लिखी, जिसमें नव स्वतंत्र भारत की नई तस्वीर का नखशिख वर्णन किया गया है। वे लिखते हैं-

चिर प्रणम्य यह पुष्य अहन, जय गाओ सुरगण,
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन!
नव भारत, फिर चीर युगों का तिमिर-आवरण,

'बापू के प्रति' कविता में पंत जी ने परतंत्रता के विरोध और गांधी जी के त्याग को भारत की स्वतंत्रता से जोड़ा और अपनी कविता में कुछ इस तरह पंक्तिबद्ध किया-

शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से

अंग्रेजी हुकूमत की मक्कारी और उनकी तानाशाही को कंस का साम्राज्यवाद के रूप में निम्नलिखित पंक्तियों में लिखा गया-

जन-शोषण
साम्राज्यवाद था कंस, बन्दिनी
मानवता पशु-बलाक्रान्त,
श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु

हरिवंशराय बच्चन जी ने पन्त जी के सन्दर्भ में कहा है कि "जब सदियाँ बीत जाएँगी और हिन्दी हिन्द की एकता की भाषा होगी तब यह सहज स्पष्ट होगा कि राष्ट्रभाषा का यह कवि सचमुच उस राष्ट्र का जन चारण था।"-

आह धरती कितना देती है! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को!
नही समझ पाया था मैं उसके महत्व को,
मानवता की, जीवन श्रम से हँसे दिशाएँ-
हम जैसा बोयेंगे वैसा ही पायेंगे।

****

बलबीर सिंह
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, देहरादून

पहाड़ी बाबा कांशीराम

(1882-1943)

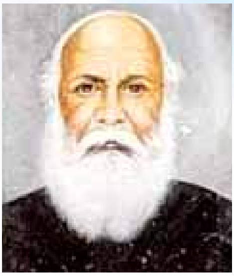

आजादी के दीवाने, स्वतंत्रता सेनानी, स्वच्छन्दतावादी एवं सामाजिक चेतना के कवि बाबा कांशीराम का जन्म 11 जुलाई, 1882 को तत्कालीन पंजाब प्रान्त के जिला कांगडा, जो कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश में है, के ऐतिहासिक कस्बा डाडा-सीबा के निकट के गांव पद्जाली में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित लखनू राम था। वे अपने भाई के साथ दुकानदारी करते थे और क्षेत्र के माने हुए साहूकार थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा उर्दू-फारसी में हुई थी। इन्होंने अपना आरंभिक जीवन मस्त मलंगी में बिताया। गांव की चौपाल और हाट-बाजार में साथियों के साथ लोकगीत गाना, होलियों के स्वांग रचाना और स्थानीय ड्रामा पार्टी में हिस्सा लेना उनके युवाकाल के शौक रहे।

पारिवारिक समस्याओं के कारण छोटी आयु में ही आजीविका की तलाश में भटकना पड़ा। नौकरी तलाश करते हुए ये लाहौर पहुंच गए। इसके पश्चात् वे ऐसे पंजाबी युवाओं के संपर्क में आए, जो स्वतंत्रता संग्राम में संघर्षशील थे। इसके बाद इनके जीवन की दिशा ही बदल गई। सन् 1905 में कांगड़ा में एक भयंकर भूचाल आया। इसमें असंख्य लोगों और पशुओं की हानि हुई। उस समय लाला लाजपत राय के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी की ओर से कांगडा क्षेत्र में राहत कार्य शुरू किया गया जिसमें कांशीराम भी सम्मिलित हुए। इसी दौरान उनका परिचय लाला लाजपत राय से हुआ। इसके बाद सन् 1906 में वे सरदार अजीतसिंह, सूफी अम्बाप्रसाद और मौलवी बरकत उल्ला जैसे प्रमुख देशभक्त नेताओं से भी मिले और प्रभावित हुए। इसके बाद सन् 1908 में सूरत मंडी के चौबार पर लाला हरदयाल से हुई भेंट ने उनके जीवन को नया मोड़ दिया।

सन् 1919 में जब रोलेक्ट एक्ट विरोध प्रदर्शनों पर जलियांवाला बाग में जो नृशंस हत्याकांड हुआ, उस समय कांशीराम अमृतसर में ही थे। इस घटना से उनके मानस में विकसित हो रही देशभक्ति- भावना को बढ़ावा मिला। उन्होंने महात्मा गांधी का अनुचर बनकर देशोद्धार के कार्य में जुट जाने का संकल्प किया। इसके बाद सन् 1919 में वे सत्याग्रह से जुड़कर कांग्रेस में सम्मिलित हो गए।

सन् 1920 में कांशीराम की गिरफ्तारी के वारंट निकले और वे धर्मशाला जेल में बन्दी हुए। इसके बाद इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही। लाहौर जाकर उनकी रूचि व्यवसाय की अपेक्षा स्वतंत्रता - आन्दोलन में अधिक बढ़ गई। जिसके परिणामस्वरूप जेल यात्राएं शुरू हुईं।

23 मई, 1931 के दिन सरदार भगत सिंह, राजगुरू तथा सुखदेव को लाहौर में

फांसी दिए जाने की घटना से वे इतने क्षुब्ध तथा उत्तेजित हुए कि उन्होंने आजीवन काले वस्त्र धारण करने और ब्रिटिश सरकार से जूझने का व्रत लिया और "स्याहपोश जरनैल" कहलाए। सन् 1931 से 1943 की अवधि में वे तीन बार जेल गए। देश की आजादी को समर्पित कांशीराम ने नौ वर्ष जेल काटी। देश की आजादी के लिए समाज को नई दिशा देने वाले गीत, गीतियां तथा कविताएं लिखी और गांव-गांव जाकर सुनाया। जेल में कैदी काल के दौरान उन्होंने 1 उपन्यास, 508 कविताएं और 8 कहानियां लिखी। प्रो. नारायण चन्द पराशर के शब्दों में- "पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम की महानता स्वतंत्रता संग्रामी के रूप में अधिक थी या कवि रूप में, ऐसा निर्णय देना कठिन है। यह मान लेना उचित होगा कि वे दोनो में समान रूप से स्मरणीय रहेंगे।" अपने लक्ष्य की साधना में अनेक कष्ट एवं यातनाएं सही। जेल में रहकर दुरावस्था में अमानवीय यातनाओं का सामना करना पड़ा था। अटक किसे की जेल से लौटकर उन्होंने जो कविता इस यात्रा के संस्मरण के रूप में लिखी, उसमें उन्होंने वहां जेल में अधिकारी द्वारा पिस्तौल दिखाकर डराने-धमकाने एवं डंडों से प्रताड़ित करने का विवेचन है। जेल के जुल्मों एवं यातनाओं को सहते हुए वे आजादी का दीपक अपने हृदय में जलाए रखे एवं आजादी की सुबह देखने से पूर्व ही 15 अक्टूबर, 1943 को चिर निद्रा में विलीन हो गए। रह गई तो उनकी देश प्रेम से ओत - प्रोत कविताएं एवं गीत और संघर्ष भरी गाथाएं।

स्वदेश प्रेम एवं स्वराज की भावना उनके लहू की बूंद-बूंद में भरी थी। उन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध बहुत सी कविताएं लिखी, जिसमें सन् 1857 की क्रान्ति में शहीद हुए नाना, तांतिया और झांसी की रानी को अमर कहा-

"सहीदां रे लहुए री इकसी बूंदा
लखां गंगा खूने री बहियां
सन्यासियां आज़ादी री जंग लड़ी
हजारां शहीद, शहीद होई गेए।"

राष्ट्रीय संवेदना की मस्ती में वे लोगों को कुलजा माता री रक्षा का स्मरण दिलाते स्वतंत्रता संग्राम हेतु प्रेरित करते हुए कहते है:-

"जिन्दडी लज नीं लाणी
इक बरी जम्मणा अम्मां/बब्बे री लज्ज बचाणी
कुलजा मत्था टेकी कन्ने/इन्कलाब बोलना
कांशी/असां जेलां जाणा।"

अर्थात् जीवन को लज्जित नहीं करना। मां ने एकबार ही जन्म देना है। बाप की लाज़ रखनी। देश बड़ा, कौम बड़ी है। यह जीवन तो उसी की अमानत है। कुलजा देवी को मस्तक नवाकर। इन्कलाब का नारा बोलना। कांशी हमने जेल जाना। स्वतंत्रता-बलिवेदी पर न्यौछावर होने वाले वीर सपूत ही उनके आदर्श रहे, उन्हीं के कारनामों से

स्वतः प्रेरित हुए। जीवन में तप, त्याग ही चिर स्थायी हैं। जिस पथ पर अनेक कष्ट उठाने पड़े, वही मार्ग हमें भी अभीष्ट है-

"साह आए न आए
न भरोसा जिन्दगानी दा-
ओही रस्ता जित्थू होर चली गै
ओ तां कमाई गै/असां भी कमाना।"

उन्हें सांस के आने न आने की परवाह नहीं थी। उन्हें तो एक ही जुनून था, जिस मार्ग पर देशभक्त बढ़ते चले गए, उन्होंने जो बलिदान दिए, हमें भी अपने प्राण उसी मार्ग पर आहूत करने हैं।

उनकी सुरीली आवाज से प्रभावित होकर ही श्रीमती सरोजनी नायडू ने इन्हें 'बुल-बुले पहाड़' का खिताब दिया। स्वतंत्रता की दीवानगी के लिए गड़दीवाला (होशियारपुर) की विशाल जनसभा में पं. जवाहरलाल नेहरू ने 'पहाड़ी गांधी' का नाम दिया। बाबा के सम्मान में 23 अप्रैल 1984 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बाबा कांशीराम पर डाक टिकट का विमोचन किया था।

इंदिरा गांधी के साथ पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम।

****

निशा चोरेटिया
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मेरठ

ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर

ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर (15 जनवरी 1899-18 जनवरी 1976) एक भारतीय राजनीतिज्ञ और पंजाबी भाषा के लेखक थे। मुसाफिर का जन्म 15 जनवरी 1899 को कैंपबेलपुर (अब ब्रिटिश भारत में पंजाब प्रांत का अटॉक जिला कहा जाता है (वर्तमान में पाकिस्तान में पंजाब प्रांत का रावलपिंडी जिला) में अधवाल में हुआ था- चड्ढा कबीले के खत्री खुखरैन बिरादरी के एक छोटे से भूमि वाले किसान परिवार में हुआ।

उन्होंने प्राथमिक शिक्षा गांव के प्राथमिक विद्यालय से पूरी की और फिर मध्य विद्यालय की परीक्षा पास करने के लिए रावलपिंडी चले गए। 1918 में, वे खालसा हाई स्कूल, कल्लार में शिक्षक बने। एक शिक्षक के रूप में चार वर्षो में उन्हें ज्ञानी की उपाधि दी गई, मुसाफिर उनके द्वारा अपनाया गया छद्म नाम था। 1922 में, उन्होंने पढ़ाना छोड़ दिया और गुरुद्वारा सुधार के लिए अकाली आंदोलन में शामिल हो गए। 1922 में गुरु का बाग आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें कारावास की सजा भुगतनी पड़ी। उन्हें 12 मार्च 1930 से 5 मार्च 1931 तक अकाल तख्त के सिख धर्म के जत्थेदार के सर्वोच्च धार्मिक कार्यालय में नियुक्त किया गया था।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में जहां एक ओर सुधारवादी और क्रांतिकारी योजनाएं बनाई जा रहीं थीं, वहीं 13 अप्रैल 1919 को पंजाब के जलियांवाला बाग नरसंहार का उन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और वे उसके बाद ब्रिटिश सम्राज्य के विरोधी बन गए। शांतिपूर्ण ढंग से विरोध करने आए लोगों के लिए वो दिन खूनी रविवार बन गया था। अंग्रेजों द्वारा किए गए जलियांवाला बाग के खूनी नरसंहार के बाद उनके मन में अंग्रेजों के प्रति रोष था। उस दौरान उन्होंने अपनी कविता नवां भारत लिखी जिसमें देशवासियों को इस जुल्म के खिलाफ आवाज उठने व गुलामी की ज़ंजीरों को तोडने के लिए प्रेरित किया, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

उठ भारत देआ उठ जवानां
बदल गया ए वेख जमाना।
हथ सी जकडे जिनां जंजीरां
बदल गईयां ओह विच श्मशीरां
मुदतां तो लतां सी नडीयां

टुट गईयां पैरां दीयां कडीयां
मार छलांगा टप जा टोए
चंगा नहीं हुण वक्त ज़माना
उठ भारत देआ उठ जवानां
बदल गया ए वेख जमाना। ....

ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर गुरूद्वारा आंदोलन के प्रमुख नेता थे। उनका जवाहरलाल नेहरू से निकट का परिचय था और उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में कई बार जेल यात्राएं की। उन्होंने 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन में गिरफ्तारी दी। वे सिखों के लिए धार्मिक अधिकार की केंद्रीय सीट अकाल तख्त के प्रमुख बने। उन्होंने 12 मार्च 1930

से 5 मार्च 1931 तक इस कार्यालय को संभाला। उन्होंने कुछ समय के लिए शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के सचिव के साथ-साथ शिरोमणि अकाली दल के महासचिव के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने सत्याग्रह और भारत छोड़ो आंदोलनों के हिस्से के रूप में गिरफ्तारी भी दी।

भारत छोड़ो आंदोलन में वे जिस समय जेल में बंद थे, उनके पिताजी, एक पुत्र और एक पुत्री की मृत्यु हो गई। निजी संकट की इस घडी में भी उन्होंने 'पैरोल' पर जेल से बाहर आना स्वीकार नहीं किया। यह सब उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति ही थी और उस मुश्किल समय में उनके मन में देश को आजाद कराने की भावना और प्रबल हुई जो कि उनकी कविता आजादी में दिखाई देती है:

रब ने ख्वाइश मन विच पाई
कुदरत ने है आप सिखाई।
बूटे बिरछ एह पीले लाल
फूलन फलन एह आज़ादी नाल।
खांदी खांदी सावे पठ्ठे
चाहंदी गां खुरली तों नठ्ठे।
दाना, वंड, गुतावां खावे
फिर वी गलों गलावां लावे।

विद्या वरगी दात है पांदा
दाव लगे ता नसना चाहंदा।
बडी सुहानी खुल दी दात
पर मिलदी बंदिश तों बाद।
पिठ ते गुनी भार लदावे
अडियल खोता तां खुल पावे।
दात कुदरती बेश्क खुल है
जितनी प्यारी उतना मूल है।

अगस्त 1942 में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' की शुरूआत की तथा भारत छोड़कर जाने के लिए अंग्रेजों को मजबूर करने के लिए सामूहिक नागरिक अवज्ञा आंदोलन 'करो या मरो' आरंभ करने का निर्णय लिया। इस आंदोलन के बाद रेलवे स्टेशनों, दूरभाष कार्यालयों, सरकारी भवनों और अन्य स्थानों तथा उपनिवेश राज के संस्थानों पर बड़े स्तर पर हिंसा शुरू हो गई। इस घटना से प्रेरित होने का प्रमाण गुरमुख सिंह जी की वतन दे शहीद कविता में मिलता है जिसमें उन्होंने भगत सिंह का उदाहरण देते हुए देशवासियों को देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने व शहीद होने के लिए प्रेरित किया है।

देश दा चानन जगदे दीवे
मरे नहीं, ओह जानो जीवे।
मने जान बहादर वीर
वतन लई जो लान शरीर।
भगत सिंह ने जो जिंदडी लाई

करदी उस नूं याद लुकाई।
राजे शाह मुक्कदम मर गए
कोई न जाने कौन किधर गए
मर के वी जेहडे नहीं मोए
ओही शहीद वतन दे होए।

1947 में भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात गुरमुख सिंह जी ने देशवासियों को अपनी कविता के जरिए संबोधित किया और कहा कि अंग्रेजों का स्वराज्य अब समाप्त हो गया है, अब हमें कर्म करके अपने भारत में दोबारा से खुशहाली लानी होगी और हिम्मत करके इसे दोबारा से सोने की खान बनाना होगा जिसे पराए (अंग्रेज) लोगों ने लूट लिया था, जो कि उनकी निम्न कविता में झलकता है:-

रस जावे हुन डाली डाली

उठ करीए ऐसी तदबीर
देश दे फलन जंड करीर
पतझड बदली विच बहारां
उठ वसायीए नवीआं बांरा।
आप कमाइए आप खाइए
गैरां दा उठ गया टिकाना
उठ भारत देआ उठ जवानां
बदल गया ए वेख जमाना।
हथ आईए तेरे तू जान
दबी पई सोने दी खान
तेरे सी ए सब सरमाए
पर आए सी वस पराए
वेहलड सी बनाया परधान
तूं सैं किरती सिर्फ किसान
हिम्मत हर के पाल लै बूटे
उखड गया ए बिरछ पुराना
उठ भारत देआ उठ जवानां
बदल गया ए वेख जमाना।

मुसाफिर 1954 में स्टॉकहोम में अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन, 1965 में हेलसिंकी में विश्व शांति सम्मेलन और 1969 में बर्लिन में विश्व शांति सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य थे। उन्होंने जापान में विश्व प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया। 1961 में और 1965 में बाकू में भारतीय लेखक अफ्रीकी-एशियाई सम्मेलन के सदस्य थे।

उनकी प्रकाशित रचनाओं में कविताओं के नौ संग्रह (सबर दे बान, प्रेम बान, जीवन पांड, मुसफरिदन, टूटे खंभ, कदवे सुनेहे, सहज सुमेल, वक्खर्ड वक्खर्ड कटर्ड और दुउर नेरहे) शामिल हैं; आठ लघु कथाएँ (वक्खन डूमा, अहलाने दे बॉट, कंधदन बोल पेडन; सतदल जानवारी; अल्लाह वाले, गुटद्र, सब अच्छद, और सस्तद तमदश); और चार जीवनी कृतियाँ (वेख्य सूर्या गांधी, वेख्य सुन्या नेहरू, बघल जमैल और वाहन सादी दे शाहिद)। उन्होंने 1954 में स्टॉकहोम और 1961 में टोक्यो में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारतीय लेखकों का प्रतिनिधित्व किया।

उन्होंने मोहनदास गांधी और जवाहरलाल नेहरू के साथ अपने जुड़ाव की यादें दो अलग-अलग खंडों में दर्ज कीं-वेख्य सूर्य गांधी (गांधी जैसा कि मैं उन्हें जानता था), "वेख्य सूर्य नेहरू" (नेहरू जैसा कि मैं उन्हें जानता था)। उनकी किताब 20वीं सदी के शहीद 30 साल के शोध का परिणाम है। उनकी अधिकांश कविताएँ और लघु कथाएँ जेल में रहते हुए लिखी गई। उन्होंने गांधी गीता और जेम्स एलन के बायवेज ऑफ ब्लेस्डनेस का भी अनुवाद किया जिसका शीर्षक आनंद मार्ग था।

उन्हें पंजाबी में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, 1978 में साहित्य अकादमी, भारत की राष्ट्रीय पत्र अकादमी द्वारा उनके लघु कहानी संग्रह, उर्वर पर के लिए दिया गया था और उन्हें मरणोपरांत पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया था, जो सरकार द्वारा दिया जाने वाला दूसरा सर्वोच्च भारतीय नागरिक पुरस्कार है।

****

दीप्ति
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, चंडीगढ़

दयाचन्द मायना हरियाणवी

(1915-1993)

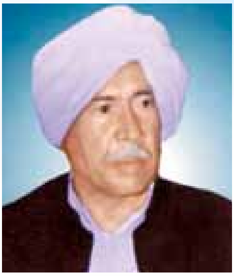

दयाचन्द मायना हरियाणवी कवि थे। इनका जन्म हरियाणा के रोहतक जिले के मायना गांव में 10 मार्च, 1915 को वाल्मिकी परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री नान्हू राम तथा इनकी माता श्रीमती जूमिया देवी है। इनकी शिक्षा नाम मात्र की हुई थी और इसके बाद ये लोक साहित्य सृजन में रम गए। इनके गुरू सांकोल के निवासी मुंशी राम जी थे। ये हरियाणा के एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपनी सरल सहज रागिनियों के माध्यम से हरियाणवी का विस्तार देश के विभिन्न प्रान्तों में किया। इनकी रागिनियां दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद एवं हरियाणा में लोकप्रिय थी। इन्हें हरियाणा का 'जॉन मिल्टन' कहा जाता है, ये हरियाणा के एकमात्र कवि है, जिन्हें राष्ट्रीय कवि का दर्ज़ा प्राप्त है। कविता रचना करने के अतिरिक्त ये सन् 1941 से 1947 तक सेना में भी सेवारत रहे और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में कार्य किया। सेना में जान फूंकने के लिए भी इन्होंने कई रागिनियां लिखी, जिन्हें हम नीचे देख सकते हैं-

चलो सूरमा रणभूमि में, है काटना कटना
हिन्द के वीर दिलेरों शेरों, पीछे ना हटना...टेक
हक आपणे पै लड़ो मरो, कायदे कानून से
भारत माँ की प्यास बुझा दो अपणे खून से
बर्मा शहर रंगून से चल दिल्ली डटना...
भारत म्हं हाम चालैंगे, हां चालैंगे, हां चालैंगे
शेर के दम चालैगें, हां चालैंगे, हां चालैंगे
रफल, तौब और बम्ब चालैंगे, हो धरती का फटना...
गूँज उठा आसमान सारा, दिल की किलकार से
शेर कभी ना डरा करैं, दुश्मन की मार से
हिम्मत और हार से, हो वीरों का छटना...
कह 'दयाचंद' इसे वीरां का, निसदिन प्रचार हो
सुणकै कथा बोस की, खुश नर और नार हो
म्हारे हिन्द का बेड़ा पार हो, मन ओम नाम रटना...

उक्त रागिनी को दयाचन्द मायना जी ने आजाद हिन्द फौज को युद्ध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से लिखा था। इसके अलावा इनके द्वारा रचित नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का किस्सा भी बहुत प्रसिद्ध है:-

सुण-सुण ताने भारत मां की नाड़ तळे नै होगी।

चढगी शरम लिहाज आज मैं कोन्या बोलण जोगी।
इस गैर मुल्क की बोली के मेरै छींटे से लागै सैं।
सबतै पाछै बैठे रहे जो बोलणिया आगै सैं।
अक्ल बिना ऊंट उभाणे कांटडा मैं भागै सैं।
यो भारत देश नींद का दुखिया और मुल्क जागै सै
बेरा ना कद आंख खुलैगी मेरी भोळी जनता सोगी।।
हंस हंस ताने मारण लागे बर्मा चीन जापानी।
अमरीका अफ्रीका रूस जर्मन लोग इरानी।
अरब तुर्क भी बोली मारैं ठठे करैं भुटानी।
ये के मांगैं आजादी कै पगले हिंदुस्तानी।
बेईमाना और बैर हिंद नै या छूआछात डुबोगी।।
लख चोरासी जिया जून का कर्म एक बतलाया।
लख चौरासी जिया जून का ब्रह्म एक बतलाया।
पांचा तै हो पोंचा भारी नर्म एक बतलाया।
हाड मांस और लहू पसीना चर्म एक बतलाया।
समझणिया कै कली तीसरी गुप्ती सेल चुभोगी।।
लखमीचंद नै सांग कराया नौटंकी लक्कडहारा।
मांगेराम हीर पीर की जोड़ रागणी गा रहा।
धनपत सिंह निंदाणे आळा लीलो चमन नै ठा रहा
सुण सुण कै नै बात उघाड़ी यो भारत डूबा जा रहा।
करो दयाचंद प्रचार धर्म के या दुनिया थूक बिलोगी।।

देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से हो रहे संघर्ष और स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान इन्होंने कई रागिनियां गाई और स्वतंत्रता सेनानियों एवं फौज के सिपाहियों को हिम्मत न हारने की प्रेरणा दी। वे अपनी इन रागिनियों के माध्यम से लोगों में जान फूंकते थे। ये सच्चे देशभक्त और सिपाही थे। निम्नांकित रागिनी में दयाचन्द जी कह रहे हैं कि हिम्मत नहीं हारना है, हिम्मत हार गए तो हिन्दुस्तान गुलाम बना रह जाएगा और हम अंग्रेजों के डंडों से पीटे जाते रहेंगे। भारत मां के शेर हो, मरने की चिन्ता न करो, अंग्रेजों से लड़ो और पिंजरे से आजाद हो जाओ। इनकी हिम्मत न हारने के लिए गाई गई रागिनी आज भी जोश से भर देती है। उनकी ये रागिनियां हमारे देश की युवा पीढ़ी को भी राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत कर देती हैं। उनकी कुछ रागिनियों की झलक निम्नलिखित है:-

हिम्मत का हो राम हिमाती, हिम्मत मतना हारै
मनुष मति मंद तू.........
जै तू हिम्मत हार गया तै हिन्दुस्तान गुलाम रहैगा
गौरां के डंडा के नीचौ न्यूहै पिटता जाम रहैगा
हिम्मत मतना हारे बहादुर तेरी मदद म्हं राम रहैगा।

धरती और आकाश रहेंगे, जब तक तेरा नाम रहैगा।
हिम्मत चीज बड़ी सै क्यूं ना भारत ने उभारै
काट दे फंद तू............
अंग्रेजों नै मजा चखादे, जयहिन्द की राखै मेर सै तूं
रुल, तोप और तेग चलाणी, जाणै सब हथफेर सै तूं
चुस्त और चालाक बहादुर, पटेबाज दिलेर सै तूं
मरणे का क्यूं फिकर करै सै भारत मां का शेर सै तूं
होज्या नै आजाद पड़ा क्यूं पांह पिंजरे मैं मारे
कैद में बंद तू.....

स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् इन्होंने सन् 1952 में सी.ओ.डी. दिल्ली कैंट में नौकरी की। इन्होंने हरियाणवी सांग एवं रागनी को मिलाकर बेहतरीन रचनाओं का निर्माण किया। इन्होंने विभिन्न प्रकार की रागिनियां लिखी, जिसमें देश प्रेम, जाति-पाति, सामाजिक सद्भाव, स्त्री शिक्षा एवं सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध जागरूकता की अलख जगाई। इन्होंने सामाजिक समस्याओं को कलात्मक तरीके से आम-जनता के सामने रखा। आजादी के लिए चल रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन के दौरान इन्होंने विभिन्न कविताएं लिखी, जिसमें इन्होंने जलियांवाला बाग हत्याकांड, भगत सिंह की शहादत से लोगों को गीतों के माध्यम से अवगत कराया। उन्होंने अपनी कविता "रै तुम सुणों गोर से, वीरों की कुर्बानी...टेक" के माध्यम से लोगों को देश के वीर सपूतों की शहादत से परिचित कराया है:-

महाराणा प्रताप वीर बहुत कष्ट ठाता रहा
जंगल, पहाड़, झाड़ियां मैं, ठोकर न्यूंए खाता रहा
कन्द, फूल, फल खाकै नै, जीवन को बिताता रहा
वीर शिवाजी मरहेठे नै, कभी ना झुकाई स्यान
मुगलों कै ना काबू आया, देश पै खो दी ज्यान
हरिसिंह बन्दा बैरागी, देश पै हुए बलिदान
राजपाल भी छुरी खा गया, समझी ना जिन्दगानी...
भगत सिंह से वीरां नै, आन्दोलन उठाया न्यारा
हँसते-हँसते फाँसी खाग्या, भारत माँ का राजदुलारा
राजगुरु सुखदेव भी साथ मैं, इनकी ललकारा
लाजपत राय शेर लाहौर में घबराया नहीं
डण्डां गैल्या पिटता रह्या, कदम को हटाया नहीं
ऊधम सिंह जैसा वीर, मुड़कै वापिस आया नहीं
असम्बली में बम्ब फेंक दिया, कोन्या दहशत मानी...
ये दोनूं वीर काम आए, सरहद की दीवार म्हं
श्रद्धानन्द बलिदान हुए, दिल्ली के बाजार म्हं

तिलक, गोखले, मालवीय, रोशन हैं संसार म्हं
जलियाँ वाले बाग के अन्दर, बहुत वीर मारे गये
खुदी राम बोस वीर, मौत के घाट तारे गए
वीर हकीकत राय भी, सबतै छंट न्यारे गए
भारत का हर बच्चा गावै वीरों की अमर कहानी...
छोटू राम चौधरी नै, दो को जगाया था
ओम नाम का झण्डा, हर जगह पै लहराया था
पूज्य बापू गांधी जी ने, आन्दोलन उठाया था
देश के लिए गांधी जी, कष्ट तन पै ठाते रहे
जेल से घबराया नहीं, क्रान्ति को जगाते रहे
नेताजी सुभाष चन्द्र, कदम को बढ़ाते रहे
कह 'दयाचन्द' बढ़ो अगाड़ी, तुम आजाद सेनानी...

सन् 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति पर भारत-पाक विभाजन पर भी उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से आक्रोश व्यक्त किया और कहा कि यूरोपियन ने भारत के दो टुकड़े कर दिए। इसके लिए चर्चिल यूरोप का दूत बनकर आया था और भारत को हक, कानून इत्यादि पैंचों में फंसवाकर आपस में लड़वा दिया, जिससे भारत के दो टुकड़े हो गए।

जग जाणै अम्बर का थूक्या, मुँह पै पडडा करै
कम कूत, ऊत पै जूत पडै, जब नक्सा झडडा करै........
ऊपर नै थूक्या करते, यूरोपियन घणे ऊत
एक हिन्द के दो टूक बणा ग्या, वो चर्चिल साला दूत
बातां तै न मान्या करते, लातां आले भूत
उठा पूछड़ा भगे, लगे जब जय हिन्द आले जूत
हक, कायदे, कानून, पैंच तै, यो भारत लडडा करै.........

इन्होंने न केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही देशभक्ति से ओत-प्रोत कविताएं की, अपितु आजादी के बाद भी देश पर आए संकट की घड़ी में राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत कविताएं रची। इसी क्रम में उन्होंने चीन से युद्ध के दौरान भी भारत के वीरों को प्रेरित करते हुए अपने अंदाज में आगे बढ़ने का आह्वान किया तथा डट कर लड़ाई करने का जोश जगाया। उन्होंने वीरों में मौत के खौफ को समाप्त करने की प्रेरणा भरी। उन्होंने कहा कि मरना तो हम सबको एक दिन है ही, तो भारत माँ के पुत्रों, भारत माँ के लिए लड़ो और लड़ते हुए अपने प्राण देश और अपनी धरती माँ के लिए न्यौछावर करो। सन 1965 एवं 1971 के दौरान लिखी गई कुछ कविताओं की झलक हम नीचे देख सकते हैं-

बढ़ो अगाडी वीर लड़न का मौका है फिलहाल
हाथ दिखा दे भारत माँ के लाल.....

दुश्मन का सामना करना, मेरे शैर मौत से क्या डरना-2
एक रोज सबनै मरणा, इसा आज मर्या इसा काल...
मेरे लाल लद्दाख डिगरज्या तू, सीमा पै कट मरज्या तू-2
इसा काम देश मैं करज्या तू, तेरी अमर रहैगी मिसाल.....
जाग-जाग मेरे लाल माँ तेरी जगावै,
दुश्मन देर्हा बोल, नींद कैसे आवै
मेरी आज़ादी सोखणा चाह्वैं,
रे दुष्ट चण्डाल...........
तू कैा और लद्दाख पहुंच नजदीकै सै
मनैं थपडी कमर, पीठ कोए छींकै सै
मनै विजय आपकी दीखै सै रे, यो 'दयाचन्द' का ख्याल

उनकी कविता "लोहे कैसी छाती करलां, बज्जर जैसा गात" आपके समक्ष प्रस्तुत है:-

लोहे कैसी छाती करलां, बज्जर जैसा गात
पति चले म्हारे लड़न नै, चीन के साथ...टेक
द्यो तार रेशमी सूंट, टूम धर दो
थारे पतियों की हो जीत, इसा वर दो
इब बिठा पाटड़े पै कर दो, रण दुल्हां की हलदात...
जै दुश्मन नै राह पाग्या तै, इसा दुष्ट देश पै छाग्या सै
याडै राज बराणा आग्या तै
म्हारै धर्म रहै ना जात...
शेरां की छाती तण्या करै
जब गीदड़ का दिल छण्या करै
बार-बार ना जण्या करै, सुत जणने आली मात...
हिन्द के झण्डे लहराएंगे
जब गीत 'दयाचन्द' गाएंगे
ये जंग जीत के आएंगे, तुम जब करना मुलाकात...

इसके अतिरिक्त इन्होंने सामाजिक असमानता और कुरीतियों के विरूद्ध भी रागिनियां लिखी हैं और सामाजिक समानता का संदेश दिया। साथ ही, बेराजगारी, गरीबी तथा महंगाई पर भी कटाक्ष करती हुई कविताएं लिखी है। इन्होंने जात-पात से ऊपर उठते हुए अपनी कविताओं में पुरानी कुरीतियों को समाप्त करने पर जोर दिया।

पहले आली बात पुराणे ख्याल बदलणे होंगे
ऊंच-नीच के शब्द पिता, फिलहाल बदलने होंगे.........
ये सोचणा पडैगा पिता, भूल मैं ना ह्रंया करते
नीच में बहैगा पाणी, ऊंच मैं ना बहया करते
ये भी तो इन्सान हैं तम थोडी सी भी ना दया करते

छाती से लगाओ जिनको दूर-दूर किया करते
मास्टर जी कह्या करते, बुरे सवाल बदलणे होंगे.........

राष्ट्रीय कवि दयाचन्द मायना जी ने देश में फैल रही गरीबी, बेरोजगारी एवं भ्रष्टाचार के विरूद्ध भी अपने उद्‌गार व्यक्त किए, जिसे नीचे देखा जा सकता है:-

बेरोजगार गरीब बिचारे महंगाई तै डरगे
इस बखत आया रै लोग लुगाई तै डरगे.............
महंगाई के डंडे आगै, कापै नर नारी
कोण मिटावण आला सै, या गरीबी बेकारी
बड़े-बड़े विषियकरमणिधारी गिजाई तै डरगे.....
आपस के महं कटकै मरगे पाण्डू और कैरू
धरती और आसमान कांपगे, भैया और भैरू
इसी सिखा ग्या बन्दा नेहरू, बाई तै डरगे
बेरा ना कद बदलैगा, इन झूठां का दर्जा
ज्यादा बोलै कम तौलै, महंगाई का नरजा
अचल-विचल करदी प्रजा, राह-राही तै डरगे
छल कपट बेईमान कदसी होगी बंद
झूठा झगड़ा छाप काटना महारै ना पसंद
ये नकली भेड़िया 'दयाचन्द' की कविताई तै डरगे...........

दयाचन्द मायना जी की अधिकांश कविताओं और रागिनियों में हमारे देश के वीर सपूतों, स्वतंत्रता सेनानियों तथा शहीदों का नाम है। उन्होंने अपनी रचनाओं में शहीद भगतसिंह, लाला लाजपत राय, खुदीराम बोस, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस इत्यादि जैसे स्वतंत्रता सेनानियों का जिक्र किया है। इनके गीतों एवं रागिनियों में व्याप्त भावनाओं ने देशवासियों को काफी प्रभावित किया था तथा आज भी अपना प्रभाव बनाए हुए हैं। यह कारण है कि आज भी इनके गीत गाए जाते हैं और आने वाली पीढ़ियां भी इन्हें गर्व से गाएंगी। अपनी कविताएं, रागिनियों तथा गीतों के माध्यम से इन्होंने राष्ट्रीय चेतना का विस्तार किया। ये राष्ट्रकवि के साथ-साथ फौजी एवं स्वतंत्रता सेनानी भी रहे। इन्होंने 19 किस्से और 100 से भी अधिक हरियाणवी गीत लिखे। अंतत: 20 जनवरी, 1993 को अपनी कला का अनमोल खजाना हमें सौंपकर दुनिया से विदा ले ली।

****

निशा चोरेटिया
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मेरठ

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

(26 अगस्त 1891 - 2 फरवरी 1960)

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का जन्म 26 अगस्त 1891 ई. को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के चांदोख में हुआ था। उनके पिता का नाम केवलराम ठाकुर तथा माता का नाम नन्हीं देवी था। वे हिन्दी भाषा के एक महान उपन्यासकार थे। इनका अधिकतर लेखन ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इनकी प्रमुख कृतियां गोली, सोमनाथ, वयं रक्षामः और वैशाली की नगरवधू इत्यादि हैं। 'आभा', इनकी पहली रचना थी। शास्त्री जी ने अपनी प्राथमिक शिक्षा अपने गाँव के निकट स्थित सिकन्दराबाद के स्कूल से प्राप्त की। तदुपरांत, उन्होंने राजस्थान के जयपुर के संस्कृत कॉलेज में प्रवेश किया। यहाँ से उन्होंने सन् 1915 में आयुर्वेद में आयुर्वेदाचार्य तथा संस्कृत में शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि भी प्राप्त की।

चतुरसेन बहुत ही भावुक, संवेदनशील और स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। दीन-दुखियों तथा रोगियों के प्रति उनके मन में असाधारण करुणा भाव था। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद वे आयुर्वेदिक चिकित्सक के रूप में कार्य करने के लिए दिल्ली आ गए। उन्होंने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए दिल्ली में अपनी खुद की आयुर्वेदिक डिस्पेंसरी भी खोली लेकिन कुछ कारणों से इसे बन्द करना पड़ा, जिसके कारण आर्थिक स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि उन्हें अपनी पत्नी के जेवर तक बेचने पड़े। जीवन की विभिन्न कठिनाईयों से गुजरते हुए और नित नये कार्य करते हुए वे लेखन की दुनिया में पहुँचे। उन्होंने बहुतेरी कहानियों एवं उपन्यासों की रचना की और अपनी पहचान एक कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में बनाई। यह बचपन से ही आर्य समाज से प्रभावित थे, जिसकी झलक इनके साहित्य में देखने को मिलती है। इन्होंने अनाज मंडी शाहदरा का घर दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी बोर्ड को दान कर दिया था, जिसमें आजकल विशाल लाइब्रेरी है।

चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के उन साहित्यकारों में हैं जिनका लेखन-क्रम साहित्य की किसी एक विशिष्ट विधा में सीमित नहीं किया जा सकता। शास्त्रीजी ने जीवन के संघर्षों के बीच अपनी रचनाधर्मिता जारी रखी। लगभग पचास वर्ष के लेखकीय जीवन में सृजित उनकी प्रकाशित रचनाओं की संख्या 186 है। इनका अधिकांश लेखन ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित था। आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य हिन्दी के लिए एक गौरव है। उन्होंने अपनी किशोरावस्था से ही हिन्दी में कहानी और गीतिकाव्य लिखना आरम्भ कर दिया था। बाद में उनका साहित्य-क्षितिज फैलता गया और वे उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण, इतिहास तथा धार्मिक विषयों पर लिखने लगे।

वे मुख्यत: अपने उपन्यासों के लिए चर्चित रहे हैं। परन्तु उपन्यासों के अलावा उन्होंने और भी बहुत कुछ लिखा है। उन्होने प्राय: साढ़े चार सौ कहानियाँ लिखीं हैं। गद्य-काव्य, धर्म, राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र के साथ-साथ स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर भी उन्होंने अधिकारपूर्वक लिखा है। रचनाकारों ने तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यास लिखे जो कि उन दिनों अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

अंग्रेजी काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय हिन्दी के विकास में एक नयी चेतना आयी। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय महात्मा गाँधी सहित अनेक नेताओं ने भारतीय एकता के लिये हिन्दी के विकास का समर्थन किया। आचार्य चतुरसेन के उपन्यास रोचक और दिल को छूने वाले होते हैं। सन् 1918 में उन्होंने अपना पहला उपन्यास "हृदय की परख" लिखा। इसके बाद 1921 में सत्याग्रह और असहयोग विषय पर गांधीजी पर केन्द्रित आलोचनात्मक पुस्तक लिखी, जो काफी चर्चित रही। साढ़े चार सौ कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने बत्तीस उपन्यास तथा अनेक नाटक लिखे। साथ ही गद्य, इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, स्वास्थ्य-चिकित्सा आदि विभिन्न विषयों पर उन्होंने लेखन कार्य किया।

उनके उपन्यासों में "वैशाली की नगरवधू", "सोमनाथ", "वयं रक्षाम:", "सोना और खून", "आलमगीर" इत्यादि प्रसिद्ध हैं। शास्त्रीजी के उपन्यासों में ग्रामीण, नगरीय, राजसी जीवनशैली की झलक देखने को मिलती है। वे पुराण, इतिहास, संस्कृत, मानव साहित्य और स्वास्थ्य विषयक साहित्य पर बड़ी गम्भीरता और ईमानदारी से लिखते रहें। आरोग्य शास्त्र, स्त्रियों की चिकित्सा, आहार और जीवन, मातृकला तथा अविवाहित युवक-युवतियों के लिए भी उन्होंने उपयोगी पुस्तकें लिखी। शास्त्रीजी अध्येता ही नहीं, कुशल चिकित्सक भी थे। उन्होंने आयुर्वेद सम्बन्धी लगभग एक दर्जन ग्रंथ लिखे। व्यवसाय से वैद्य होने पर भी उन्होंने साहित्य-सर्जन में गहरी रुचि बनाए रखी।

चतुरसेन जी ने "यादों की परछाई" अपनी आत्मकथा में 'राम' को ईश्वर रूप में न बताकर मानव रूप में बताया। समाज और मनुष्य के कल्याणार्थ लिखा गया उनका साहित्य सभी के लिए उपयोगी रहा है। शास्त्रीजी अपनी शैली के अनोखे लेखक थे, जो अपने कथा-साहित्य में भी इतिहास, राजनीति, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र और युगबोध से सम्पृक्त विविध विषयों को दृष्टि में रखकर लिखते थे।

****

नीलम
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, दिल्ली (दक्षिण)

कन्हैयालाल सेठिया

राजस्थानी भाषा के महान रचनाकार, स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक कार्यकर्ता, पर्यावरणविद और 'धरती धोरा री' व 'पाथल और पीथल' जैसी महान कविताओं के रचयिता कवि कन्हैयालाल सेठिया जी का जन्म 11 सितंबर 1919 को राजस्थान के चूरु जिले के सुजानगढ़ शहर में हुआ। इनकी शिक्षा कोलकाता विश्वविद्यालय तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्पन्न हुई। सेठिया जी की आरंभ से ही साहित्य के क्षेत्र में बहुत रुचि थी। इन्होंने बचपन से ही देश के प्रति समर्पण एवं देश हित को सर्वोपरि रखा। इनमें बचपन से ही देशप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण इनकी शिक्षा बाधित हुई। बाद में इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र, राजनीति और साहित्य में स्नातक की उपाधि हासिल की। 1934 में वे महात्मा गाँधी के संपर्क आए तथा उन्हीं के प्रभाव से वे खादी के वस्त्र धारण करने लगे। दलित उद्धार कार्य करना तथा राष्ट्रभक्ति से ओत प्रोत रचनाएं लिखना इनकी प्राथमिकता हो गई। इनकी रचना 'अग्निवीणा' में अंग्रेजी हुकूमत को ललकार थी जिसके कारण इन पर राजद्रोह का मुकदमा चला तथा इन्हें जेल भी जाना पड़ा। ये बीकानेर प्रजामंडल के सदस्य भी रहे तथा भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान कराची में इन्होंने जनसभाएं कर लोगों को जागृत करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

राजस्थानी के 'भीष्म पितामह' कहे जाने वाले श्री सेठिया जी द्वारा रचित राजस्थानी गीत "धरती धोराँ री !" राजस्थान का वंदना गीत है जिसमें राजस्थानी धरा की महिमा एवं राजस्थान के गौरवशाली अतीत का वर्णन है। राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक पहचान को देश-विदेश में पहुंचाने में इस गीत की अहम भूमिका रही है। श्री सेठिया जी का यह अमर गीत देश के कण-कण में गूंजने लगा, हर सभागार में धूम मचाने लगा, घर-घर में गाया जाने लगा। स्कूल-कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में ये गीत पढ़ाये जाने लगे, जिसने पढ़ा वही दंग रह गया और इस गीत ने कन्हैयालाल सेठिया जी को केवल राजस्थान के ही नहीं वरन पूरे देश का कवि बना दिया-

"धरती धोराँ री..........,
आ तो सुरगां नै सरमावै,
ई पर देव रमण नै आवै, ई रो जस नर नारी गावै,
धरती धोराँ री,धरती धोराँ री ।"

कवि ने अपनी कविता के माध्यम से राजस्थान को जगाने का प्रयास भी किया–

"किस निद्रा में मग्न हुए हो, सदियों से तुम राजस्थान!
कहाँ गया वह शौर्य्य तुम्हारा, कहाँ गया वह अतुलित मान!"

कन्हैयालाल सेठिया की अन्य प्रसिद्ध कविता "पीथल और पाथल" है जिसमें राणा प्रताप और मुगल बादशाह अकबर के संघर्ष का वर्णन है। अनेक युद्धों को लड़ते हुए और घनघोर कष्ट सहकर भी महाराणा प्रताप ने अकबर की अधीनता कभी स्वीकार नहीं की और वो राजपूताना में अमर हो गए। राजस्थान के कण कण में राणा प्रताप की शौर्य गाथा कन्हैयालाल सेठिया की कविता के माध्यम से गायी जाती है–

मेवाड़ धधकतो अंगारो आंध्यां में चमचम चमकै लो,
कड़खै री उठती तानां पर पग पग पर खांडो खड़कैलो,
राखो थे मूंछडाँ ऐंठडोड़ी, लोही री नदी बहा द्यूंला,
हूँ अथक लडूंला अकबर स्यूँ, उजडडो मेवाड़ बसा द्यूंला,

1941 में सेठिया जी का पहला काव्य संग्रह 'वनफूल' प्रकाशित हुआ, इसके बाद 'अग्निवीणा' का प्रकाशन हुआ जिसमें देश की आजादी की छटपटाहट थी। देशप्रेम और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत इन रचनाओं के कारण इन पर राजद्रोह का आरोप लगा। साथ ही इनका एक एक पद शौर्य की भावनाएं जगाने वाला है।

कन्हैयालाल सेठिया जी की अब तक हिन्दी में 18, उर्दू में 02 व राजस्थानी में 14 पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। सेठिया जी के सृजन दौर का आरंभ राजस्थानी रचना 'रमणियां रा सोरठां' से माना जा सकता है। इनसे इतर 'नीमड़ो' राजस्थानी की लघु पुस्तिका है। 'इरा' में चुनी हुई कविताएं हैं तो वहीं 'सप्त किरण' संयुक्त प्रकाशन है। 'परम वीर शैतानसिंह', 'जादूगर माओ', 'रक्त दो', 'चीन की ललकार' आदि लघु कृतियाँ भी सेठिया जी की ही हैं। इनकी कई रचनाएं विभिन्न भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

राजस्थानी भाषा की कृतियाँ: रमणियां रा सोरठा, गळगचिया, मींझर, कूंकंऊ, लीलटांस, धर कूंचा धर मंजळां, मायड़ रो हेलो, सबद, सतवाणी, अघरीकाळ, दीठ, कक्को कोड रो, लीकलकोळिया एवं हेमाणी।

हिंदी भाषा की कृतियाँ: वनफूल, अग्णिवीणा, मेरा युग, दीप किरण, प्रतिबिम्ब, आज हिमालय बोला, खुली खिड़कियां चौड़े रास्ते, प्रणाम, मर्म, अनाम, निर्ग्रन्थ, स्वागत, देह-विदेह, आकाशा गंगा, वामन विराट, श्रेयस, निष्पति एवं त्रयी।

उर्दू भाषा की कृतियाँ: ताजमहल एवं गुलचीं।

वर्ष 1942 में जब महात्मा गाँधी ने 'करो या मरो' का आह्वान किया, तब कन्हैयालाल सेठिया जी की कृति 'अग्निवीणा' प्रकाशित हुई, जिस पर बीकानेर राज्य

में इनके ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चला और बाद में राजस्थान सरकार ने इनको स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी के रूप में सम्मानित भी किया। महात्मा गाँधी की मृत्यु पर भी कन्हैयालाल जी की एक कृति प्रकाशित हुई थी, जिसमें देश के विभाजन के समय हुई लोमहर्षक व वीभत्स घटनाओं से जुड़ी रचनाएं संग्रहीत हैं। इसके बाद 1962 में हिन्दी की कृति 'प्रतिबिम्ब' का प्रकाशन हुआ। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ।

स्वतन्त्रता संग्रामी, समाज सुधारक, दार्शनिक तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कवि एवं लेखक के नाते सेठिया जी को अनेक सम्मान, पुरस्कार एवं अलंकरण प्राप्त हैं जिनमें प्रमुख हैं-

1. 1976 - राजस्थानी काव्यकृति 'लीलटांस' पर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा राजस्थानी भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृति के नाते पुरस्कृत।
2. 1981 - राजस्थानी की उत्कृष्ट रचनाओं हेतु लोक संस्कृति शोध संस्थान, चूरू द्वारा 'डॉ. टेस्सीतोरी स्मृति स्वर्ण पदक' सम्मान प्रदत्त।
3. 1983 - राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य मनीषी' की उपाधि से अलंकृत।
4. 1983 - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत।
5. 1987 - राजस्थानी काव्यकृति 'सबद' पर राजस्थानी अकादमी का सर्वोच्च 'सूर्यमल मिश्रण शिखर पुरस्कार' प्रदत्त।
6. 1992 - राजस्थान सरकार द्वारा 'स्वतन्त्रता सेनानी' का ताम्रपत्र प्रदत्त कर सम्मानित।
7. 2004 - 'पद्म श्री' - भारत सरकार द्वारा।

सेठिया जी जीवन पर्यंत साहित्य सेवा में लगे रहे, भाषा के महत्त्व को उन्होंने बहुत अच्छी तरह समझा और भाषा के हर रूप का प्रयोग उन्होंने अपनी साहित्य सर्जना हेतु किया। इन्होंने आजादी के दौरान महसूस किया कि आमजन को मातृभाषा में ही भाषण देकर प्रेरित किया जा सकता है। यही कारण था कि जागीरदारों के खिलाफ 'कुण जमीन रो धणी' जैसी कविता की रचना की और वह लोगों में बहुत लोकप्रिय हुई। राजस्थान के इस महान कवि और स्वतंत्रता सेनानी का निधन 11 नवंबर 2008 को हुआ। मरणोपरांत राजस्थान सरकार ने उन्हे "राजस्थान रत्न" से सम्मानित किया।

****

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय जयपुर

काका कालेलकर

काका कालेलकर (1885-1981) के नाम से विख्यात दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी थे। काकासाहेब कालेलकर ने गुजराती एवं हिन्दी भाषा में साहित्य रचना की। उन्होंने हिन्दी की महान सेवा की। उनके द्वारा रचित 'जीवन व्यवस्था' नामक निबंध-संग्रह के लिए उन्हें सन् 1965 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

वे साबरमती आश्रम के सदस्य थे और अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। गांधीजी के निकटतम सहयोगी होने के कारण ही वे 'काका' के नाम से जाने गए। वे 'सर्वोदय' पत्रिका के संपादक भी रहे। 1930 में पुणे की यरवदा जेल में गांधीजी के साथ उन्होंने महत्वपूर्ण समय बिताया।

जीवन एवं राष्टभाषा प्रचार कार्य: उनका जन्म 01 दिसंबर, 1885 को महाराष्ट्र के सतारा में हुआ था। उनका परिवार मूल रूप से महाराष्ट्र के सतारा जिले का रहने वाला था और उनकी मातृभाषा कोंकणी थी, लेकिन सालों से गुजरात में बस जाने के कारण गुजराती भाषा पर उनका बहुत अच्छा अधिकार था और वे गुजराती के प्रख्यात लेखक समझे जाते थे। जिन नेताओं ने राष्ट्रभाषा प्रचार के कार्य में विशेष दिलचस्पी ली, उनमें प्रमुख काका साहब कालेलकर का नाम आता है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के 1938 में हुए अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा था, "हमारा राष्ट्रभाषा प्रचार एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है।" उन्होंने पहले स्वयं हिन्दी सीखी और फिर कई वर्ष तक दक्षिण में सम्मेलन की ओर से प्रचार किया। अपनी सूझ-बूझ, विलक्षणता और व्यापक अध्ययन के कारण उनकी गणना प्रमुख अध्यापकों और व्यवस्थापकों में होने लगी।

हिन्दी प्रचार कार्य में जहां कहीं कोई कमी होती या प्रगति रुक जाती, गांधीजी काका कालेलकर को जांच के लिए वहीं भेजते थे। इस प्रकार के चुनौतीपूर्ण कार्य भी उन्होंने सफलतापूर्वक किए। "राष्ट्रभाषा प्रचार समिति" की स्थापना के बाद गुजरात में हिन्दी प्रचार की व्यवस्था के लिए गांधीजी ने काका कालेलकर को चुना। साहित्य अकादमी में काका साहब गुजराती भाषा के प्रतिनिधि रहे। गुजरात में हिन्दी प्रचार को जो सफलता मिली, उनका मुख्य श्रेय काका साहब को है।

काका कालेलकर उच्च कोटि के विचारक और विद्वान थे। उनका योगदान हिन्दी भाषा के प्रचार तक ही सीमित नहीं था। उनकी अपनी मौलिक रचनाओं से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है। सरल और ओजस्वी भाषा में विचारपूर्ण निबंध और विभिन्न विषयों

की तर्कपूर्ण व्याख्या उनकी लेखनशैली के विशेष गुण हैं। मूलरूप से विचारक और साहित्यकार होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति की अपनी शैली थी। उनकी भाषा-शैली बड़ी सजीव और प्रभावशाली थी। उनमें सरलता होने के कारण स्वाभाविक प्रवाह है और विचारों के बाहुल्य होने के कारण भावों के लिए उड़ान की क्षमता है। उनकी शैली प्रबुद्ध विचार की सहज उपदेशात्मक शैली है, जिसमें विद्वता, व्यंग्य, हास्य, नीति सभी तत्व विद्यमान हैं।

काका साहब मंझे हुए लेखक थे। किसी भी सुंदर दृश्य का वर्णन अथवा पेचीदा समस्या का सुगम विश्लेषण उनके लिए आनंद का विषय रहा है। उन्होंने देश, विदेशों का भ्रमण कर वहां के भूगोल का ही ज्ञान नहीं कराया, अपितु उन प्रदेशों और देशों की समस्याओं, उनके समाज तथा रहन-सहन का भी अपनी पुस्तकों में सजीव चित्रण किया।

उनकी प्रसिद्ध कृतियां स्मरणयात्रा, धर्मोदय-(आत्मचरित) हिमालयनो प्रवास, लोकमाता (यात्रा विवरण) जीवननो आनंद, अवरनावर (निबंध संग्रह) हैं।

काका कालेलकर सच्चे बुद्धजीवी व्यक्ति थे। साहित्य लेखन सदा से उनका व्यसन रहा। सार्वजनिक कार्य की अनिश्चितता और व्यस्तताओं के बावजूद उन्होंने बीस से ज्यादा ग्रन्थों की रचना कर डाली। राष्ट्रभाषा का प्रचार-प्रसार एवं हिन्दी में लेखन के क्षेत्र में उनका अविस्मरणीय योगदान रहा।

****

आलोचना शर्मा
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

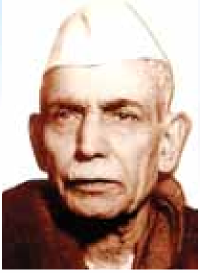

माखनलाल चतुर्वेदी

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का नाम छायावाद की उन हस्तियों में से है जिनके कारण वह युग विशेष हो गया। उस युग के कवि कुदरत को स्वयं के करीब महसूस कर लिखा करते थे। चतुर्वेदी जी की भी कई रचनाएं ऐसी हैं जहां उन्होंने प्रकृति के माध्यम से अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। अपनी रचना 'पुष्प की अभिलाषा' और 'फूल की मनुहार' में उन्होंने एक कुसुम के द्वारा अपनी आंतरित संवेदनाओं को प्रकट किया है जिससे संकेत मिलता है कि वह एक राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति होने के साथ-साथ अपनत्व से आप्लावित व्यक्ति थे।

चतुर्वेदी जी का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद (वर्तमान नर्मदापुरम) जिले के बाबई गाँव में 4 अप्रैल, 1889 को हुआ। सरल भाषा और ओजपूर्ण भावनाओं के वे अनूठे हिंदी रचनाकार थे। अप्रैल 1913 में खंडवा के हिंदी सेवी कालूराम गंगराड़े ने मासिक पत्रिका 'प्रभा' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके संपादन का दायित्व माखनलालजी को सौंपा गया। 'प्रभा' और 'कर्मवीर' जैसे प्रतिष्ठत पत्रों के संपादक के रूप में उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ जोरदार प्रचार किया और नई पीढ़ी को आह्वान किया कि वे गुलामी की जंजीरों को तोड़कर बाहर आए। उन्हें अनेक बार ब्रिटिश साम्राज्य का कोपभाजन बनना पड़ा। महात्मा गाँधी द्वारा आहूत 1920 के 'असहयोग आंदोलन' में महाकौशल अंचल से पहली गिरफ्तारी देने वाले माखनलालजी ही थे। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी उन्हें गिरफ्तारी देने का प्रथम सम्मान मिला। उस समय के स्वतंत्रता सेनानी जेल-यात्रा को भी सम्मान की तरह ही देखते थे।

उन्होंने सितंबर 1913 में अध्यापक की नौकरी छोड़ दी और पूरी तरह पत्रकारिता, साहित्य और राष्ट्रीय आंदोलन के लिए समर्पित हो गए। 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन के दौरान चतुर्वेदी जी ने श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी, मैथिलीशरण गुप्त और महात्मा गाँधी से मुलाकात कीं। उनके महान कर्तृत्व के तीन आयाम हैं: पहला, पत्रकारिता-'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' का संपादन। दूसरा, कविताएँ, निबंध, नाटक और कहानी। तीसरा, अभिभाषण और व्याख्यान।

उनकी अधिकांश रचनाएं राष्ट्रीयता के ताने-बाने से बंधी हुई हैं। इनकी वाणी अत्यंत मार्मिक है जो कि राष्ट्र के हित की बात करती हुई प्रतीत होती है। 1943 में उस समय का हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा 'देव पुरस्कार' माखनलालजी को 'हिम किरीटिनी' पर दिया गया था। 1954 में साहित्य अकादमी पुरस्कार की स्थापना होने पर हिंदी साहित्य के लिए प्रथम पुरस्कार भी उन्हें 'हिमतरंगिनी' के लिए प्रदान किया गया। 'पुष्प की अभिलाषा' और 'अमर राष्ट्र' जैसी ओजस्वी रचनाओं के लिए सागर विश्वविद्यालय ने

1959 में डी.लिट. की मानद उपाधि से विभूषित किया। 1963 में भारत सरकार ने चतुर्वेदी जी को 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। चतुर्वेदी जी के काव्य में बलिदान और प्राणोत्सर्ग का आग्रह है। 'हिमकिरीटिनी' में युवकों को संदेश देते हुए वे कहते हैं-

"खून हो जाए न ते देख, पानी,
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।"

उन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए भारतीयों से आत्म-समर्पण का आह्वान किया-

"मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जाएं वीर अनेक।"

राष्ट्र को केंद्र में रखकर लिखी गई चतुर्वेदी जी की रचनाओं में कहीं भारत माता की वंदना है, कहीं शक्ति और उत्साह का आह्वान है और कहीं देश की गुलामी को लेकर गहरी पीड़ा है। उन्होंने 1920 में "तिलक" नामक एक लंबी कविता लिखी, जिसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं-

"बंदी होवे वह दयाहीन
तूँ भारतीय आजाद रहे।
वह स्वर्ग टूटकर गिर जाए,
यह आर्यभूमि आबाद रहे।"

इसी प्रकार विदेशी शासन के विरोध में इन्होंने जोर से ललकारते हुए कहा है-

"बलि होने की परवाह नहीं
मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे।
मैं जीता, जीता, जीता हूँ
माता के हाथ स्वराज्य रहे।"

अतएव स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि चतुर्वेदी जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीयों को राष्ट्र के प्रति जागरूक करने का अनूठा काम किया है। 1947 में देशवासियों की मुक्ति की अभिलाषा पूरी हुई। देश की जनता आजादी के उल्लास में मग्न थी। इस उल्लास को चतुर्वेदी जी ने अपने गीत "मुक्त गगन है, मुक्त पवन है" में उमंग के साथ अभिव्यक्त किया है।

****

निपुण जैन
वरिष्ठ प्रबंधक, राजभाषा
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, भोपाल

कुमारन आशान

देश भर में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव केरल के कवियों पर भी पड़ा था। उस जमाने के समकालिक कवि थे श्री कुमारन आशान, श्री वल्लत्तोल नारायण मेनन और श्री उल्लूर एस परमेश्वर अय्यर। ये 'कवित्रय' के रूप में जाने जाते हैं। कुमारन आशान का जीवन काल 12 अप्रैल 1873 से 16 जनवरी 1924 तक है। नलिनी, लीला, करुणा, चंडालभिक्षुकी, चिंताविष्टयाय सीता, दुरवस्था आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

आशान जी ने अपने सक्रिय सृजन के 15 वर्षों में जिन काव्य कृतियों की रचना की है, वे इस तथ्य की साक्ष्य है कि भारत की दुर्दशा के प्रति उन्होंने अपने सृजन से एक भारतीय कवि के रूप में पहचान दी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय भाषाओं की कविताओं में जो उन्मेष दिखाई देता है, भारतीय राष्ट्र के प्रति नई सचेतनता, जिसमें देश-प्रेम एक अनिवार्य तत्व के रूप में समावेश है तथा भारत के अतीत के प्रति, एक नए प्रकार की अभिरुचि, ये सब उनकी कविताओं में भी शामिल है।

उनकी "दुरवस्था" और "चंडाल भिक्षुकी" जैसी कविताएं हमारे जन समाज की ऐसी स्थितियों की कविताएं है, जो न केवल मौलिक है, बल्कि यथार्थ की बेजोड़ छवियों को उकेरने वाली कविताएं हैं। "चांडाल भिक्षुकी" में वे जाति-पाति की निरर्थकता की ओर संकेत करते हैं। इन्हें पढ़कर कोई भी व्यक्ति भारतीय समाज की स्थिति को बदलने के लिए प्रेरित हो सकता है और वह तमाम तरह की क्रांतिकारी, आंदोलनकारी वृत्तियों का समर्थक हो सकता है।

सत्य और समता के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वे स्वातंत्र्य के अमृत को अनिवार्य मानते हैं। अपनी कविताओं में भारत की स्वतंत्रता की भावना को स्थान देते हुए वे सामाजिक नवोत्थान की ओर भी ध्यान देते थे। अपनी कविता "ओरु उद्बोधनम" अर्थात् एक उद्बोधन में उन्होंने सुप्त जनशक्ति को जगाने और एकजुटता द्वारा अपना लक्ष्य हासिल करने की प्रेरणा के रूप में लिखा था:

स्वातंत्र्य ही अमृत है, स्वातंत्र्य ही जीवन है।
परतंत्र मानियों के लिए मृति से भी भयानक है।

उन्होंने आगे चलकर "स्वतंत्र गाथा" नामक गीत लिखा, जिसे उनके काव्य सृजन की विस्मयकारी घटना ही कहा जा सकता है। इसमें उन्होंने स्वतंत्रता के अन्य पक्षों की ओर भी संकेत किया है। वे केवल राजनैतिक स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे, वे सामाजिक-आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सांस्कृतिक स्वतंत्रता के भाव को नई नैतिक

निष्ठा के साथ उठाते हुए उसे मानव अस्तित्व के लिए अनिवार्य सिद्ध करते हैं। वे दासता के ऐतिहासिक दबाव को भली-भाँति जानते थे। भारत के कृषक की दयनीय हालत के वे स्वयं गवाह भी थे। इस रूढ़ीग्रस्त समाज में रहते हुए विवेकपूर्ण और न्यायपूर्ण ढंग से वे कहते हैं-

"इन नियमों को तुम बदलो,
अन्यथा वह तुम्हारे लिए विनाशकारी होगा।"

वे 'विवेकोदयम' नामक मासिक पत्रिका के संपादक थे। पत्रिका में लेखों के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय भावना और सामाजिक नवोत्थान की अनिवार्यता को रेखांकित किया था। भारत के संबंध में राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ उनके लिए केरल की सामाजिक जीर्णता के प्रति संवेदना भी महत्व रखती थी। हिन्दु संन्यासी श्रीनारायण गुरु ने सामाजिक परिवर्तन का जो आन्दोलन चलाया था, उसका प्रभाव पूरे केरल में पड़ा था। स्वाभाविक रूप से परिवर्तन के उस प्रवाह में इनका भी योगदान रहा था।

केरल सरकार ने तिरुवनंतपुरम के पास तोन्नकल नामक जगह में स्थित आशान के गृह को उनका स्मारक घोषित किया और कुमारन आशान राष्ट्रीय संस्कृति संस्थान की स्थापना की। केरल के इतिहास में यह पहला उदाहरण है। चेन्नै स्थित एक संगठन, आशान मेमोरियल एसोसिएशन ने कवि के जन्मस्थान, कायिक्करा में एक स्मारक बनवाया है। मलयालम कविता में उत्कृष्टता को मान्यता देने के लिए एक वार्षिक पुरस्कार, 'आशान स्मारक कविता पुरस्कार' भी स्थापित किया गया है। इंडिया पोस्ट ने 1973 में आशान की जन्मशताब्दी के संबंध में उनके चित्र को दर्शाने वाला एक स्मारक डाक टिकट जारी किया।

****

पी एस सिंधू
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, इमेज, चेन्नै

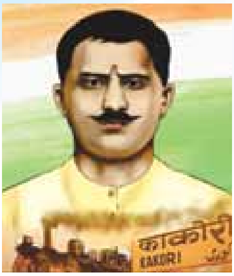

राष्ट्रीय चेतना के अमर उन्नायक: राम प्रसाद “बिस्मिल”

राम प्रसाद “बिस्मिल” (11 जून 1897-19 दिसंबर 1927) एक भारतीय कवि, लेखक और क्रांतिकारी थे, जिन्होंने 1918 के मैनपुरी कांड और 1925 के काकोरी कांड में भाग लिया था। उनके पास उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं पर अच्छी पकड़ थी, जिसने उन्हें एक प्रमुख क्रांतिकारी बना दिया। वे एक बहुभाषी अनुवादक भी थे और उनकी प्रसिद्ध कविता “मैनपुरी की प्रतिज्ञा” बहुत लोकप्रिय हुई थी। 19 दिसंबर 1927 को बिस्मिल को उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए अंग्रेजी शासन द्वारा फांसी दे दी गई। एक देशभक्त कवि के रूप में उन्होंने राम, अज्ञेय और बिस्मिल नामों का उपयोग करके हिंदी और उर्दू में लिखा। वे उपनाम ‘बिस्मिल’ से लोकप्रिय हुए। बिस्मिल क्रांतिकारी संगठन ‘हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन’ के संस्थापक सदस्यों में से एक थे।

‘द वायर’ में छपे लेख के मुताबिक, ‘मातृदेवी’ संस्था से हुए एक मुकाबले में 50 अंग्रेज सैनिक मारे गए थे। इस मुकाबले के लिए बिस्मिल और दीक्षित ने इटावा, शाहजहांपुर, मैनपुरी, आगरा जैसे कई जिलों में गुपचुप अभियान चलाया और युवकों को देश की आन पर मर मिटने के लिए संगठित किया। उन्हीं दिनों बिस्मिल ने अपनी “मैनपुरी की प्रतिज्ञा” कविता भी लिखी।

बिस्मिल ने देशवासियों के नाम संदेश “ए मैसेज टू माय कंट्रीमेन” शीर्षक से एक पैम्फलेट प्रकाशित किया। उन्होंने बोल्शेविकों की करतूत और योगिक साधना (अरविंद घोष की) जैसी पुस्तकों का अनुवाद किया। इनके अलावा, मन की लहर “ए सैली औफ माइंड” और स्वदेशी रंग की कविताओं का संग्रह भी उनके द्वारा लिखा गया। उन्होंने ‘एक और स्वाधीनता की देवी: कैथरीन’ को एक अंग्रेजी किताब से हिंदी में अनुवाद किया।

काकोरी समेत अन्य कांड के लिए उन्हें 26 सितंबर, 1925 को गिरफ्तार कर लिया गया और लखनऊ सेंट्रल जेल भेज दिया गया। 19 दिसंबर 1927 को बिस्मिल को फांसी दे दी गई। फांसी के दिन बिस्मिल ने, मशहूर शायर ‘बिस्मिल अजीमाबादी’ की गजल “सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है” को पूरे जोश-ओ-खरोश के साथ गाया।

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है।
खींच कर लाई है सब को कत्ल होने की उम्मींद,
आशिकों का जमघट आज कूंचे-ऐ-कातिल में है।
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।

बिस्मिल ने देशभक्ति से ओत-प्रोत अनेक रचनाएं कीं। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है:

अशआर

इलाही खैर वो हरदम नई बेदाद करते हैं
हमें तोहमत लगाते हैं जो हम फरियाद करते हैं

ऐ मातृभूमि! तेरी जय हो

ऐ मातृभूमि तेरी जय हो, सदा विजय हो,
प्रत्येक भक्त तेरा, सुख-शांति-कान्तिमय हो।
अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में,
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो।

तराना-ए-बिस्मिल

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से,
लटकते आए अक्सर पैकरे-ईसार फांसी से।
लबे-दम भी न खोली जालिमों ने हथकड़ी मेरी,
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से।

न-चंहू मान

न चाहूँ मान दुनिया में, न चाहूँ स्वर्ग को जाना।
मुझे वर दे यही माता, रहूँ भारत पे दीवाना॥
करुँ मैं कौम की सेवा, पड़े चाहे करोड़ों दुख।
अगर फिर जन्म लूँ आकर, तो भारत में ही हो आना॥
लगा रहे प्रेम हिन्दी में, पढूँ हिन्दी लिखूं हिन्दी।
चलन हिन्दी चलूँ, हिन्दी पहरना, ओढना खाना॥
भवन में रोशनी मेरे रहे हिन्दी चिरागों की।
स्वदेशी ही रहे बाजा, बजाना, राग का गाना॥

उन्होंने भारत में ब्रिटिश काल के दौरान सरफरोशी की तमन्ना, मन की लहर और स्वदेशी रंग कविता को अमर कर दिया।

फाँसी की अंतिम रात राम प्रसाद बिस्मिल के कहे शब्द–

"जाऊँगा खाली हाथ मगर, यह दर्द साथ ही जायेगा;
... जाने किस दिन हिन्दोस्तान, आजाद वतन कहलायेगा।
बिस्मिल हिन्दू हैं कहते हैं, फिर आऊँगा-फिर आऊँगा;
... ले नया जन्म ऐ भारत माँ! तुझको आजाद कराऊँगा।"
जी करता है मैं भी कह दूँ, पर मजहब से बँध जाता हूँ;
... मैं मुसलमान हूँ पुनर्जन्म की बात नहीं कह पाता हूँ।
हाँ, खुदा अगर मिल गया कहीं, अपनी झोली फैला दूँगा;
... औ जन्नत के बदले उससे, एक नया जन्म ही मांगूँगा।

राम प्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखे हुए गीत एवं रचनाएं आजादी उपरांत भी हमारे देश के सैनिकों और देशवासियों के रक्त में देश भक्ति का संचार करती रही है। आज भी नौजवानों को देश हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहने के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है।

****

राजकुमार यादव
मुख्य प्रबंधक एवं संकाय
इंडियन बैंक, स्टाफ कॉलेज लखनऊ

रामवृक्ष बेनीपुरी

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म 23 दिसम्बर, 1899 ई. में बेनीपुर नामक गाँव, मुजफ्फरपुर जिला, बिहार में हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव की पाठशाला में ही पाई थी। बाद में वे आगे की शिक्षा के लिए मुजफ्फरपुर के कॉलेज में भर्ती हो गए। रामवृक्ष बेनीपुरी भारत के प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार और नाटककार थे। ये एक महान् विचारक, चिन्तक, मनन करने वाले क्रान्तिकारी, साहित्यकार, पत्रकार और संपादक के रूप में भी अविस्मणीय हैं। बेनीपुरी जी हिन्दी साहित्य के 'शुक्लोत्तर युग' के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। ये एक सच्चे देश भक्त और क्रांतिकारी भी थे। इन्होंने 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' में आठ वर्ष जेल में बिताये। हिन्दी साहित्य के पत्रकार होने के साथ ही इन्होंने कई समाचार पत्रों, जैसे-'युवक' आदि भी निकाले। इसके अलावा कई राष्ट्रवादी और स्वतंत्रता संग्राम संबंधी कार्यों में भी संलग्न रहे।

स्वतंत्रता संग्राम के समय राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'रौलट एक्ट' के विरोध में 'असहयोग आन्दोलन' प्रारम्भ किया। ऐसे में बेनीपुरी जी ने भी कॉलेज त्याग दिया और निरंतर स्वतंत्रता संग्राम में जुड़े रहे। इन्होंने अनेक बार जेल की सजा भी भोगी। ये अपने जीवन के लगभग आठ वर्ष जेल में रहे। समाजवादी आन्दोलन से रामवृक्ष बेनीपुरी का निकट का सम्बन्ध था। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय जयप्रकाश नारायण के हजारीबाग जेल से भागने में भी रामवृक्ष बेनीपुरी ने उनका साथ दिया और उनके निकट सहयोगी रहे। रामवृक्ष बेनीपुरी की आत्मा में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी, जिसके कारण आजीवन वह चैन की साँस न ले सके। उनके फुटकर लेखों से और उनके साथियों के संस्मरणों से ज्ञात होता है कि जीवन के प्रारंभ काल से ही क्रान्तिकारी रचनाओं के कारण बार-बार उन्हें कारावास भोगना पड़ा। सन 1942 में 'अगस्त क्रांति आंदोलन' के कारण उन्हें हजारीबाग जेल में रहना पड़ा था। जेलवास में भी वह शान्त नहीं बैठे सकते थे। वे वहाँ जेल में भी आग भड़काने वाली रचनायें लिखें। जब भी वे जेल से बाहर आते, उनके हाथ में दो-चार ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ अवश्य होती थीं, जो आज साहित्य की अमूल्य निधि बन गई हैं। उनकी अधिकतर रचनाएँ जेल प्रवास के दौरान लिखी गई।

उपन्यास- पतितों के देश में, आम्रपाली

कहानी संग्रह- माटी की मूरतें

निबंध- चिता के फूल, लाल तारा, कैदी की पत्नी, गेहूँ और गुलाब, जंजीरें और दीवारें

नाटक- सीता का मन, संघमित्रा, अमर ज्योति, तथागत, शकुंतला, रामराज्य, नेत्रदान, गाँवों के देवता, नया समाज, विजेता, बैजू मामा

संपादन- विद्यापति की पदावली

रामवृक्ष बेनीपुरी की अनेक रचनाएँ, जो यश कलगी के समान हैं, उनमें 'जय प्रकाश', 'नेत्रदान', 'सीता की माँ', 'विजेता', 'मील के पत्थर', 'गेहूँ और गुलाब' आदि शामिल है। 'शेक्सपीयर के गाँव में' और 'नींव की ईट', इन लेखों में भी रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने देश प्रेम, साहित्य प्रेम, त्याग की महत्ता और साहित्यकारों के प्रति जो सम्मान भाव दर्शाया है, वह अविस्मरणीय है। उन्होंने विभिन्न समयों में लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। उनका विपुल साहित्य, शैली, भाषा और विचारों की दृष्टि से बड़ा ही प्रभावकारी रहा है। उपन्यास, जीवनियाँ, कहानी संग्रह, संस्मरण आदि विधाओं की लगभग 80 पुस्तकों की उन्होंने रचना की थी। इनमें 'माटी की मूरतें' अपने जीवंत रेखाचित्रों के लिए आज भी याद की जाती हैं। हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष सत्यनारायण ने कहा कि बेनीपुरी एक साहित्यकार होने के साथ स्वतंत्रता क्रांतिकारी थे। वे प्रेमचंद की श्रेणी के ही लेखक थे जिनकी रचनाओं में हमारे देश की आत्मा गांवों का जीवंत वर्णन मिलता है। कथाकार ऋषिकेश पाठक ने बेनीपुरी को युवा शक्ति के प्रति अत्यंत आस्थावान और आशावान बताया। पाठक ने कहा कि उनकी पुस्तक 'गेहूं और गुलाब' एक निबंध भी है और आंदोलन भी जो हमें भौतिकता की अंधगुफा से उठाकर सांस्कृतिक धरातल की ओर ले जाती है, जो संघर्ष के बीच भी हमें सौंदर्य देखने की दृष्टि देती है।

बेनीपुरी जी की रचनाओं में छोटे वाक्य, दृश्य को नजरों के आगे जीवंत करने की क्षमता तो प्रेमचंद जैसी ही है, वहीं सरसता और सहजता उनसे ज्यादा दिखती है। बेनीपुरी जी की तरह बिहार की पृष्ठभूमि से ही उपजे एक और लेखक शिवपूजन सहाय खुद भी प्रांजल भाषा को चलन में लाने वाले लेखक रहे हैं। वे बेनीपुरी जी के गद्य के लिए कहते थे-'बेनीपुरी का लिखा गद्य चपल खंजन की तरह फुदकता हुआ चलता है।' अगर हम बेनीपुरी जी के ही शब्दों में कहें तो उनकी भाषा में 'गेहूं और गुलाब' का समन्वय था। इसमें यथार्थ की कठोरता भी थी और उसका सौंदर्य भी। किसी भी लेखक के लिए इससे बड़ी बात और क्या होगी कि उसकी भाषा अपना रंग बदल सकने का कमाल रखती हो। रामवृक्ष बेनीपुरी अपनी इसी जादूगरी के बल पर ही कलम के जादूगर थे। उनकी शैली इतनी रोचक है कि उसकी छाप दिमाग से हटाए नहीं हटती। सिर्फ यह समझने के लिए कोई उनके ललित निबंध 'गेहूं और गुलाब', या 'मशाल' को पढ़ सकता है। ये तो निबंध थे, लेकिन जब हम उनकी 'शब्दचित्र'-अपने संस्मरण यानी रेखाचित्रों की किताब 'माटी की मूरतें' की रचनाओं को उन्होंने यही नाम दिया था-की रचनाओं को पढ़ते हैं तो यह कमाल हर वाक्य में दिखता है। यहां उन्होंने गांव की जमीन से उठाए गए कुछ अनगढ़ चरित्रों को न सिर्फ रंगत दी, बल्कि उनमें नए

प्राण भी फूंक डाले।

बेनीपुरी जी की कहानियां भी अपनी तमाम संभावनाओं, व्यंग्य और कथ्य की गहनता लिए हुए होने के बावजूद उस तरह से प्रसिद्ध नहीं हो सकी। 'चिता के फूल' नाम से उनका एक ही कहानी संग्रह उपलब्ध है, जिसमें उनकी कुल सात कहानियां हैं। इनमें स्वतंत्रता पूर्व का देश, उसकी त्रासदियों, अंदरूनी हालात, कशमकश और द्वेष, सब आकार लेते मिल जाते हैं। ये कहानियां वर्गीय खाइयों और उससे उपजी विषमताओं को खूब गहरे से दिखाती हैं। 'चिता के फूल' और 'उस दिन झोपड़ी रोई' इसी श्रृंखला की कहानियां हैं, जिसमें वर्ग विशेष के लिए स्वतंत्रता के मायने, उसकी परिणति और लड़ाइयां, सबके अर्थ बिलकुल अलग जान पड़ते हैं। इन दोनों कहानियों में उन्होंने 1930 और 1940 के दशक के दौरान कांग्रेस और अमीरों और गरीबों के बीच की उस गहरी फांक को कहीं गहरे धंसकर रेखांकित किया है। यह बहुत मुश्किल होता है कि हम जिसके प्रभाव में हों, उसकी खामियां भी हमें पता हों और पता हों तो हम उन्हें सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर पाएं। बेनीपुरी जी के भीतर का लेखक किसी विचारधारा के प्रभाव में होने और वस्तुस्थिति की गंभीरता, दोनों को अलग-अलग करके देखता था। बतौर कथाकार और राजनेता, यह बात उन्हें बहुत खास बनाती थी।

यदि हम यहां 'चिता के फूल' कहानी को ही लें तो उसमें रैली देखने गए एक युवक का जेल में ठूंस दिया जाना, गोली लगने से उसके पांव का सड़ना और जेल में ही उसकी मृत्यु और उसे वहीं दफन कर दिया जाना एक बड़ा रूपक है। दरअसल यह कहानी स्वतंत्रता संग्राम में बेनाम खत्म होनेवाले अनगिनत गरीबों की कथा है। इस संग्रह की सातों कहानियां अगर गौर से पढ़ी जाएं तो किसी भी बड़े लेखक की सत्तर कहानियों से कहीं ज्यादा मायने रखती हैं। ये अनगिनत अनाम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के मूक बलिदान का दस्तावेज हैं। खुद बेनीपुरी जी ने भी कहानी संग्रह की भूमिका में कहा है-'अपनी इन कहानियों में देश और समाज की विषम परिस्थितियों से उत्पन्न मृत्यु और संहार की विभीषिकाओं को ही मैंने कलात्मक रूप देने की चेष्टा की है। इनमें ढंकने की कोशिश नहीं की गई, बल्कि उभारने का ही प्रयास है... कि हम इन विभीषिकाओं को देखें और समझें ...कि हमें ऐसा दृश्य न देखना पड़े।'

बेनीपुरी सही मायने में योद्धा साहित्यकार रहे हैं। आजादी के आंदोलन में बेनीपुरी जी जैसे साहित्यकारों की अहम भूमिका रही है। समाजगत परिवेश और परिस्थिति ही तब ऐसी थी कि उस जमाने में कई कालजयी साहित्यकारों का उदय हुआ। समाजवादी विचारधारा से ओत-प्रोत उनकी लेखनी निरंतर पूरी सार्थकता के साथ जीवन पर्यंत प्रतिबद्ध रही। हजारीबाग सेंट्रल जेल में रहते हुए उन्होंने प्रसिद्ध नाटक 'आम्बपाली का सृजन किया। जेल में ही रहते हुए उन्होंने हस्तलिखित पत्रिका का सम्पादन किया। 'पतितों के देश पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि उसमें केवल अंग्रेजों पर ही कटाक्ष नहीं किया गया है अपितु उन भारतीयों को भी सवालों के घेरे में खड़ा किया

गया है जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते। 'विद्यापति पदावली और 'बिहारी सतसई जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं का भी उन्होंने कुशल सम्पादन किया। पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. चन्द्रभानु प्रसाद सिंह ने कहा कि बेनीपुरी जी ने रूढ़िवादी समाज के बैरियर्स को तोड़ा। इसी कड़ी में उन्होंने "शर्मा" उपनाम को अपने नाम से हटाकर अपने गांव के नाम "बेनीपुर" को अपने नाम के साथ जोड़ लिया। सह प्राचार्य डॉ. सुरेंद्र प्रसाद सुमन ने भगत सिंह, राजगुरु व चन्द्रशेखर आजाद से बेनीपुरी जी की तुलना करते हुए कहा कि ऐसे क्रांतिकारी कभी मरते नहीं बल्कि अमर हो जाते हैं। हिंदी विभाग के सह प्राध्यापक डॉ.आनन्द प्रकाश गुप्ता ने कहा कि बेनीपुरी जी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार थे। वे कुशल सम्पादक भी रहे। सीएम कॉलेज के सहायक प्राध्यापक अखिलेश राठौर ने कहा कि वे सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार थे। उन्होंने आत्मत्याग और आत्म उत्सर्ग का मार्ग चुना और 'नींव की ईट बनना स्वीकार किया जबकि वे महल का गुम्बद भी बन सकते थे। शोधप्रज्ञ कृष्णा अनुराग ने कहा कि बेनीपुरी जी क्रांतिधर्मी साहित्यकार थे। "माटी की मूरतें" और "पैरों में पंख बांधकर" उनकी कालजयी रचनाएं हैं।

****

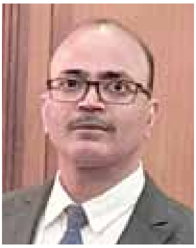

ओमप्रकाश वर्मा

वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)

इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, राँची

रायप्रोलु सुब्बाराव

(ए देशमेगिना एन्दु कालिडिना)
(ए पीठमेक्किना एव्वरेमनिना)
(पोगडरा नी तल्लि भूमि भारतिनी)
(निलपरा नी जाति निंडु गौरवम्मु)

अर्थात्-

किसी भी देश में जा, कहीं भी कदम रख,
किसी भी आसन पर चढ़, कोई भी तेरे सम्मुख आवे,
तुम अपनी माँ भारत भूमि की प्रस्तुति कर,
अपनी जाति की प्रतिष्ठा की रक्षा कर।

रायप्रोलू सुब्बाराव (1892-1984) जिन्हें "तेलुगु नव्य कविता का पितामह" के रूप में जाना जाता है, को तेलुगु में भावनात्मक कविता का अग्रदूत कहा जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि तेलुगु कविता में "नए युग" की शुरुआत 1913 में लिखी गई उनकी "तृणकंकणम" से हुई थी। सुब्बाराव जी कवीन्द्र रवीन्द्र के शांति-निकेतन में अध्ययन करते हुए इन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। अंग्रेजी-साहित्य के अध्ययन के साथ वड्र्सवर्थ, शेल्ली, कीट्स, टेनिसन इत्यादि प्रकृति प्रेमी अंग्रेजी कवियों की कृतियों से भी ये प्रभावित हुए। भावुकता एक कला रूप है जो कलाकार की कल्पना, भावनाओं और रचनात्मकता को प्राथमिकता देता है। 18वीं शताब्दी में जर्मनी और फ्रांस में फली-फूली इस कला शैली ने चित्रकारों, लेखकों, मूर्तिकारों और कवियों को गहराई से प्रभावित किया। रायप्रोलू ने पश्चिमी देशों की इस भावना को तेलुगु में उजागर किया। उन्होंने तेलुगु कविता को स्वतंत्र कार्यों की ओर मोड़ दिया, जो संस्कृत कार्यों पर बहुत अधिक निर्भर थी। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति सुब्बाराव के हृदय में अगाध भक्ति एवं श्रद्धा थी ही, राष्ट्रीय-आन्दोलन का भी इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मानवता के प्रति प्रेम ने इनकी कविता में कोमलता, मार्दवता एवं मधुरता पैदा कर दी। उपर्युक्त सभी विशेषताओं से पूर्ण रायप्रोलु की कविता को तेलगु-वाङमय में सम्मानित स्थान प्राप्त है।

रायप्रोलू एक महान राष्ट्रवादी थे। तेलुगु जाति के प्रशंसक थे। उनके देशभक्ति गीत बहुत प्रेरणादायक हैं।

नादु जाति, नादु देशम, नादु भाषा अनु अहंकार दर्शनम

"मेरी जाति, मेरा देश, मेरी भाषा पर अहंकारी दृष्टि" रखने का उपदेश दिया और उन्होंने राष्ट्रवाद, देशभक्ति और भाषा को सभी की नस-नस में भरने के लिए अपनी लेखनी चलायी।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में लोगों ने उसी भावना के साथ लड़ाई लड़ी जो गतिशीलता की एक बढ़ती लहर की तरह थी। तेलुगु कवियों ने पूर्ण देशभक्ति की दी हुई एक नई सांस से संखरवा को भर दिया। वे विभिन्न प्रक्रियाओं के संवाहक के रूप में कार्यों को लिखकर आंदोलन के प्रेरक बने। लोगों को देश के प्रति काम करने हेतु तैयार करने के लिए, कवियों के सपने देशभक्ति जगाने के लिए व्याकुल हो गए।

प्राचीन भारत के ऐश्वर्य के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए इन्होंने लिखा है:

वेदशाखलु वेलसे निच्चट
आदिकाव्यं बलरे निच्चट

अर्थात-

वेदों की शाखाओं तथा आदि काव्य का आविर्भाव यहीं पर,
अर्थात् इसी भूमि पर हुआ है।

सुब्बाराव के गीत राष्ट्रीय-भावों से परिपूर्ण हैं। उनके राष्ट्रीय गीत आंध्र के निवासियों को प्रबुद्ध करने में ही नहीं, वरन् उनमें देश-प्रेम के बीज बोने में भी सफल सिद्ध हुए हैं। यहाँ उनकी ऐसी कविताओं से उद्धरण इस सन्दर्भ में प्रेषित है:

(ए पूर्वपुण्यमो, ए योग बलमो)
(जनिईचिनाड वी स्वर्गखंडमुन)

अर्थात-

कोई पूर्व पुण्य या किसी योग बल से
तुम इस स्वर्गखंड पर पैदा हुए हो।

(लेदुरा इटुवन्टि भूदेवी येन्दु)
(लेरुरा मनवन्टि पौरुलिंकेंदु)

अर्थात-

ऐसा भूदेवी अन्यत्र नहीं है रे
ऐसे धीर-वीर अन्यत्र नहीं है।

(अवमानमेलरा? अवमानमेल?)
(भारतीयुडनंचु भक्ति तो पाड़!)

अर्थात-

अवमान किस लिए, संकोच किस लिए

भक्ति के साथ गाओ मैं भारतीय हूँ।

इसी प्रकार आन्ध्र के प्राचीन वैभव का गान करते कवि थकते नहीं। एक कविता में उन्होंने लिखा है--अमरावती नगर में बौद्ध-मतावलंबियों ने जिस मुहूर्त में विश्व-विद्यालयों की स्थापना की, ओरुगल्लु (वरंगल) में वहाँ के राजाओं ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए शस्त्र-शालाओं की जिस दिन स्थापना की, विद्यानगर (विजयनगर) के राजमार्गों में कविता-कन्या के परिणय के पंदल जिस दिन अलंकृत किये गये, पोट्नर के समीप में जिस दिन आन्ध्र-साम्राज्य ने अपने दिग्विजय-सूचक स्तम्भ की प्रतिष्ठापना की, उस दिन यह सब कुछ मिलाकर आन्ध्र-संतति की ऐसी महिमा अपनी दिव्य दीक्षा के सुख की स्फूर्ति दिलाने वाली है। आज भी उस आवेश की अभ्यर्थना करते हुए ये कहते हैं-
है आन्ध्रवासी! आन्ध्र-भूमि पर अक्षत छिड़काओ।

रायप्रोलू की अन्य एकत्रित कविताओं में आंध्रावली, जड़ कच्छुलु, वाना माला और मिश्रा मंजरी हैं जो उनकी सभी मूल रचनाएँ हैं। "मिश्रा मंजरी" ने रायप्रोलू के लिए साहित्यिक योग्यता की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक के रूप में वर्ष 1965 के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार जीता।

****

श्वेता गंगिरेड्डी
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

बाल गंगाधर तिलक

अंग्रेजों के खिलाफ पहली बार संपूर्ण स्वराज की मांग करने वाले महान स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को खत्म करने वाले प्रखर चिंतक, 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूंगा' कहकर शंखनाद करने वाले बलवंत राव, जो आगे चलकर **'बाल गंगाधर तिलक'** बने, का जन्म 23 जुलाई, 1856 को महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश के रत्नागिरी जिले के चिखली गांव में हुआ था। समाज सुधारक, दार्शनिक और पत्रकार के तौर पर भी उन्होंने अपनी पहचान बनाई, इसलिए उन्हें **'लोकमान्य'** की उपाधि दी गई। बाल गंगाधर तिलक भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के जनक के रूप में जाने जाते हैं। बाल गंगाधर तिलक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक शिक्षक, वकील, सामाजिक कार्यकर्त्ता, स्वतंत्रता संग्रामी, नेशनल लीडर थे। उन्हें इतिहास, संस्कृत, खगोलशास्त्र एवं गणित में महारथ हासिल थी।

तिलक ने 1889 में सर विलियम वेडरबर्न की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बॉम्बे सत्र में भाग लिया। वहां लाला लाजपत राय और गोपाल कृष्ण गोखले से उनकी मुलाकात हुई। लॉर्ड कर्जन के बंगाल राज्य के विभाजन के निर्णय के साथ भारत के युवा, उग्रवादी राजनीति और सीधी कार्रवाई की ओर बढ़े। बिपिन चंद्र पाल और लाला लाजपत राय के साथ, तिलक ने अंग्रेजों के खिलाफ मोहभंग के अवसर को जब्त कर लिया और लाल-बाल-पाल की तिकड़ी 'चरमपंथी' के रूप में लोकप्रिय हो गए। वे खुद को 'राष्ट्रवादी' कहना पसंद करते थे। 1908 में तिलक ने क्रान्तिकारी फ्रुल्ल चाकी और खुदीराम बोस के बम हमले का समर्थन किया जिसकी वजह से उन्हें बर्मा (अब म्यांमार) स्थित मंडाले की जेल भेज दिया गया। जेल से छूटकर उन्होंने 1916 में एनी बेसेंट और मुहम्मद अली जिन्ना के साथ अखिल भारतीय होम रूल लीग की स्थापना की। होमरूल लीग आन्दोलन का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहते हुए संवैधानिक तरीक़े से स्वशासन को प्राप्त करना था। इस लीग के प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक एवं श्रीमती एनी बेसेंट थीं।

तिलक पश्चिमी शिक्षा पद्धति के बड़े आलोचक थे। भारत में शिक्षा को सुधारने के लिए उन्होंने अपने मित्र के साथ मिलकर 'डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी' बनाई जिसके माध्यम से पुणे में स्कूल एवं फर्ग्युसन कॉलेज जैसे कॉलेज की स्थापना की। तिलक ने दो समाचारपत्रों का प्रकाशन भी शुरू किया। इसमें एक था, 'केसरी' जो मराठी का साप्ताहिक समाचार पत्र था और दूसरा था 'मराठा' ये अंग्रेजी का साप्ताहिक समाचार

पत्र था। इन समाचार पत्रों में तिलक भारत की दुर्दशा पर लिखा करते थे। वे लोगों के कष्टों की और वास्तविक घटनाओं की तस्वीर को इसमें छापते थे।

बाल गंगाधर तिलक ने हिंदी साहित्य में भी काफी योगदान दिया है। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या को लेकर लिखी गयी गीता-रहस्य सर्वोत्कृष्ट है। बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखीं प्रसिद्ध पुस्तकें 'वेद काल का निर्णय', 'आर्यों का मूल निवास स्थान', 'गीता रहस्य' अथवा 'कर्मयोग शास्त्र' है। सांस्कृतिक सुधारों में वे अग्रणी रहे। महाराष्ट्र में सार्वजनिक रूप से गणेश उत्सव एवं शिव जयंती उत्सव की नींव श्री बाल गंगाधर तिलक ने पहली बार पुणे एवं मुंबई में रखी।

लोकमान्य तिलक बाल विवाह के विरोधी और विधवा विवाह के समर्थक थे। उन्होंने विख्यात समाज सेवक बैहरामजी मालाबारी द्वारा प्रस्तावित सुधार प्रस्तावों में संकलित करने के लिए 1890 में अपने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किए:-

1. लड़कों के विवाह की न्यूनतम आयु 20 वर्ष और लड़कियों के विवाह की आयु 16 वर्ष हो।
2. 40 वर्ष के ऊपर के पुरुष विवाह न करें और यदि वे विवाह करना ही चाहें तो विधवाओं से करें।
3. विवाह उत्सव पर मद्यपान बंद कर दिया जाए। दहेज का चलन रोक दिया जाए।
4. विधवाओं का निरादर ना किया जाए।
5. प्रत्येक समाज सुधारक अपनी मासिक आय का 10% सामाजिक सेवा में लगाए।

तिलक ने जो भारतीय दर्शन प्रस्तुत किया उसके महत्वपूर्ण तथ्य यह थे कि तिलक सामाजिक परिवर्तन के विरुद्ध नहीं थे। वे उस सामाजिक परिवर्तन का विरोध करते थे जो पश्चिम के अनुसरण से होता है। तिलक ने राजनैतिक जागरण और राजनीतिक सुधारों को सामाजिक सुधारों की तुलना में प्राथमिकता दी। वे नहीं चाहते थे कि भारत में सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र पर भी विदेशी नौकरशाही का नियंत्रण हो जाए।

भारत माता की स्वतंत्रता की लड़ाई में बाल गंगाधर तिलक जीवन भर कार्यरत रहे। 01 अगस्त 1920 को मुंबई में उनकी अचानक मृत्यु हो गई। उनके निधन पर श्रद्धांजलि देते हुए महात्मा गांधी ने उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता और जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें भारतीय क्रान्ति का जनक कहा था।

****

भारती प्रधान
वरिष्ठ प्रबंधक (सू.प्रौ.)
इंडियन बैंक, आर.जी.आर, मुंबई

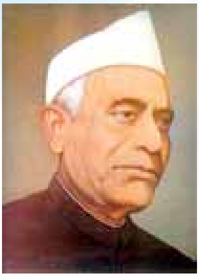

रामनरेश त्रिपाठी

(4 मार्च, 1889-16 जनवरी, 1962)

रामनरेश त्रिपाठी जी हिन्दी भाषा के 'पूर्व छायावाद युग' के कवि थे। कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, संस्मरण, बाल साहित्य एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने हेतु उन्होंने कलम चलाई। अपने 72 वर्ष के जीवन काल में उन्होंने लगभग सौ पुस्तकें लिखीं। रामनरेश त्रिपाठी जी का जन्म 1889 में जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव में एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। इनके पिताजी का नाम पंडित रामदत्त त्रिपाठी था। रामनरेश त्रिपाठी हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग के एक महान कवि थे, जिन्होंने हिंदी साहित्य में अपनी अमूल्य एवं अतुलनीय रचनाओं से महत्वपूर्ण योगदान दिया। रामनरेश त्रिपाठी जी की प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही संपन्न हुई और उसके बाद उन्होंने घर पर स्वयं अध्ययन किया। वे साहित्य और कविता लेखन में अधिक रूचि रखते थे। उन्हें हिंदी के साथ अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और गुजराती भाषा का भी अच्छा खासा ज्ञान था। उन्होंने अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए सेठ बल्लभ के पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा का कार्यभार संभाला और साहित्य में अपनी निपुणता को हासिल करते गए। उन्होंने **'हे प्रभु आनंद दाता, ज्ञान हमको दीजिए'** जैसी अद्भुत रचना की, जिसे आज भी विद्यालयों और धार्मिक स्थलों के साथ-साथ कई कार्यालयों में भी प्रार्थना के रूप में गाया जाता है।

रामनरेश त्रिपाठी जी की प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ:-

काव्य-कृतियाँ: मिलन (1918), पथिक (1920), मानसी (1927), स्वप्न (1929) इसके लिए उन्हें हिन्दुस्तान अकादमी का पुरस्कार मिला था। **मुक्तक:** आर्य संगीत शतक, कविता-विनोद, क्या होम रूल लोगे, मानसी, मारवाड़ी मनोरंजन, मुक्तक लिखे हैं। **कहानी:** तरकस, आखों देखी कहानियां के साथ स्वपनों के चित्र, नखशिख, उन बच्चों का क्या हुआ आदि कहानियां लिखी हैं। **उपन्यास:** मारवाड़ी और पिशाचनी, सुभद्रा वीरांगना, वीरबाला, और लक्ष्मी, आदि प्रमुख उपन्यास प्रसिद्ध हैं। **नाटक:** वफाती चाचा, अजनबी, के आलावा पैसा परमेश्वर, बा और बापू, कन्या का तपोवन, जयंत, प्रेमलोक, आदि प्रसिद्ध नाटक लिखे हैं। **व्यंग्य:** दिमागी ऐयाशी, स्वप्नों के चित्र आदि सबसे प्रसिद्ध व्यंग हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी एक समर्थ कवि, सम्पादक एवं कुशल पत्रकार थे। राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित इनका काव्य अत्यन्त "हृदयस्पर्शी" है। इनके निबन्ध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस प्रकार ये कवि, निबन्धकार, सम्पादक आदि के रूप में हिन्दी में सदैव जाने जाएँगे। ये द्विवेदी युग के स्वच्छंद-प्रेमधारा के उन प्रमुख प्रखर कवियों में से एक हैं, जिन्होंने आधुनिक हिंदी-साहित्य की अटूट बुनियाद देने का अभूतपूर्व कार्य किया है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार और साहित्य-सेवा की भावना

से प्रेरित होकर इन्होंने **'हिन्दी मन्दिर'** की स्थापना की। इन्होंने अपनी कृतियों का प्रकाशन भी स्वयं ही किया। ये द्विवेदी युग के उन साहित्यकारों में से हैं, जिन्होंने द्विवेदी-मण्डल से अलग रहकर अपनी मौलिक प्रतिभा से साहित्य के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण कार्य किए। इन्होंने भाव प्रधान काव्य की रचना की। राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, सेवा, त्याग आदि की भावना से ओत-प्रोत विषयों पर इन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की रचना की। कहते हैं प्रकृति की मनोहारी छटा अब रीतिकाल परिवेश के बंधनमय वातावरण से निकलकर, परंपरागत रूढ़ियों को तोड़ते हुए उन्मुक्त एवं स्वच्छंद आँगन में विहार करने लगी थी। उस समय मैथलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने ऐसा परिवेश तैयार किया कि कविगण राष्ट्रीय चेतना की ओर बढ़े बिना नहीं रुक सके। इन कवियों में मुख्य रूप से राम नरेश त्रिपाठी जी प्रखर रहे व राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित अनेक कविताओं की रचना की, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को जीवंत करने में सहायता मिली। त्रिपाठी जी की राष्ट्रीय रचनाओं का स्वर उदात्त देश-प्रेम और बलिदान की भावना रहा है। समकालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण कर उदात्त राष्ट्र-प्रेम और आदर्श जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा ही इनके साहित्यिक जीवन की धुरी था। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। परिणामस्वरूप वे कई बार जेल भी गये।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी जहाँ एक ओर राष्ट्र को भगवान एवं राष्ट्र सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानकर देश और देशवासियों के लिए प्राणोत्सर्ग करने में ही मोक्ष का अनुभव कराते हैं तो वहीं दूसरी ओर विश्व बंधुत्व और प्रेम की उदारता में ही अपनी समस्त श्रद्धा का वचन दोहराते हैं। स्वाधीनता के इस सिपाही ने भारत की मुक्ति को अपनी काव्यमाला में संघर्ष, बलिदान एवं त्याग की प्रेरणा से सुंदर एवं अकल्पनीय पुष्प पिरोकर स्वतंत्रता का गलहार बनाया है। उनके काव्य में विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय भावना का परिपार्श्व दिखाई देता है, जिसमें देशभक्ति, देशप्रेम, राष्ट्रीय जागरण, जन उद्बोधन, नारी जागृति, देश के निर्माता एवं स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान, विदेशी शासन की आलोचना तथा सांस्कृतिक गौरव का मुखर गान आदि के सहज दर्शन किए जा सकते हैं। राष्ट्रीयता की उत्ताल तरंगों से तरंगायित हृदय के महान कवि ने 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न', या फिर मुक्तकों में भी विदेशी शासन का डटकर विरोध करते हुए सहज रहने का मूल मंत्र दिया:

जिस पर गिर कर उदर दरी से तुमने जन्म लिया है,
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर-समीर पिया है,
वह स्नेह की मूर्ति दयामयी माता-तुल्य मही है,
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है।

स्वतंत्रता आंदोलन के नायिकाओं के चरित्र को भी त्रिपाठी जी ने कम करके नहीं आँका है। वे कहते हैं कि देश-प्रेम का तूफान उनके भी हृदय में उठता है और वह घर बैठे पति की कायरता को ललकारती हुई जागृति प्रदान करती हैं। तभी 'स्वप्न' की नायिका 'सुमना' अपने पति से कहती है-

तुम हो वीर पिता माता के, वीर पुत्र मेरे जीवन-धन
तुम से आशाएँ कितनी हैं, जन्म भूमि को हे अरिमर्दन।

त्रिपाठी जी ने भावी निर्माण के लिए एक तरफ अतीत के गौरव का गुणगान कर सुप्त पड़ रही क्रांति को जागृत किया है, तो दूसरी तरफ तत्कालीन दुर्दशा एवं व्याप्त अभाव को जनता के बीच व्यक्त कर इसका पर्दाफाश भी किया है। इस प्रकार त्रिपाठी जी ने राष्ट्रीय चेतना के स्वर जगाने में अपने-आप को सम्पूर्ण समर्पित कर दिया। शिक्षा-दीक्षा द्वारा, भारतीयता की भावना द्वारा, अधिकार की जागृति एवं शोषण के खिलाफ पैदा की गई गूंज द्वारा औपनिवेशक भारत की दुराचारी नीतियों पर कसे गए व्यंग्य द्वारा कवि अपने दयित्वों को निभाता है।

राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाने में त्रिपाठी जी ने साहित्यिक एवं परिमार्जित भाषा तथा अभिव्यंजना की कलात्मक-दृष्टि का परिचय दिया है। वे अपनी काव्य रचना के लिए लोक प्रचलित एवं व्यावहारिक भाषा का चयन करते है। उपर्युक्त समग्र विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि महान कवि रामनरेश त्रिपाठी ने अपने साहित्य में जहां शिव और सौंदर्य का बेहतरीन समन्वय किया है वहीं वे अपने काव्य में आदर्श और औदात्य की संस्कार पैदा कर भारत की जनता को राष्ट्रहित एवं समष्टि कल्याण की राह को प्रखर करता है।

****

संदर्भ सूची:

इग्नू पाठ्यक्रम: यूनिट-6 रामनरेश त्रिपाठी और उनकी कविता (पृष्ठ संख्या 138,148,149,151, 157, 161, 162),

2. गूगल आदि।

2.1 https://www.google.com/search?q=ramnaresh+tripathi+ke+kavya+men+rashtriy+chetna&rlz=1C1GCEU_enIN986IN986&ei=_5X7YsmKMpaMseMPuKOkmAc&ved=0ahUKEwiJhrustsv5AhUWRmwGHbgRCXMQ4dUDCA4&uact=5&oq=ramnaresh+tripathi+ke+kavya+men+rashtriy+chetna&gs_lcp=Cgxnd3Mtd-2l6LXNlcnAQAzoHCAAQRxCwAzoECAAQQzoFCAAQgAQ6BQgAEIYDOgQ-IABAKOgYIABAeEBY6CAgAEB4QCBANOgcIIRCgARAKOgQIIRAVOggIIRAeEBYQHUoECEEYAEoECEYYAFCLA1iHSWDlSmgBcAB4BYABggWIA-bQ4kgEMMC4xNC45LjAuMS40mAEAoAEByAEIwAEB&sclient=gws-wiz-serp

2.2 https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/67381/3/Unit-6.pdf

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

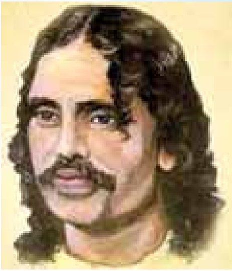

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। उनका जन्म 9 सितम्बर, 1850 को वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। उनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया।

भारतेंदु जी के कृतित्व की चर्चा करें, तो हम उनके कृतित्व को निम्नानुसार देख सकते हैं-**काव्य**-प्रेम मालिका, सतसई श्रृंगार, भारत वीणा, प्रेम तरंग, भक्त सर्वस्व, प्रेम सरोवर, गीत गोविंद, वर्षा विनोद, विनय प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, वेणुगीत, दशरथ विलाप, फूलों का गुच्छा, विजयिनी-विजय-वैजयंती आदि प्रमुख काव्य रचनाएं हैं। **नाटक**-नील देवी, भारत जननी, भारत दुर्दशा, प्रेम योगिनी, चन्द्रवली नाटिका, वैदिकी, हिंसा, हिंसा न भवति, सती प्रताप, दुर्लभ बंधु एवं अंधेर नगरी आदि नाट्य कृतियां हैं। **स्त्री शिक्षा**-बालाबोधिनी। **संपादन**-कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका। **इतिहास**-काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण, अग्रवालों की उत्पत्ति, दिल्ली दरबार दर्पण, महाराष्ट्र देश का इतिहास। अनूदित-बांग्ला से हिंदी अनुवाद-विद्या सुंदर नाटक, मुद्राराक्षस, पाखंड विडंबन, धनंजय विजय। **निबंध**-सुलोचना, मदालसा, लीलावती, परिहास वंचक, कर्पूर मंजरी, सत्य हरिश्चंद्र।

भारतेंदु जी के रचनाकाल के समय भारत परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, स्वतंत्रता की छटपटाहट इनमें भी थी। भारतेंदु जी की कविता में निहित देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। अंग्रेजों द्वारा की जा रही लूट पर अपने विचार रखते हुए वे लिखते हैं-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी"

सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा

और उनके इर्द-गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता था। उनकी कविताएं जहां एक ओर सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित है तो वहीं दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम से संबंधित है। भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। अपनी कविता में इसका उल्लेख करते हुए लिखते हैं-

"चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।"

भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भावना भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

"भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।"

भारतेंदु जी ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। वे हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। वे अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं, सम्पूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनके जीवन का मूलमंत्र था। उन्होंने निज भाषा के गौरव पर अपने विचार रखते हुए लिखा है-

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
अँग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन,
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।"

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु जी ने समझा और "कविवचनसुधा" में उन्होंने जनता का आह्वान किया-

"भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

'भारत दुर्दशा' नाटक में उन्होंने देश की वर्तमान परिस्थितियों का बखूबी वर्णन किया है। इस नाटक में वे देश की दयनीय स्थिति से दु:खी होकर कहते हैं-

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥"

बाबू भारतेंदु की कविताओं और विचारों से यह बात सिद्ध है कि देश की उन्नति तब तक नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा प्राप्त न हो जाए। उनका मानना था कि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी। भारतेन्दु ने अपने 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाटक' का समापन भी इसी भरत-वाक्य से किया है-

बुध तजहिं मत्सर नारि-नर सम होंहिं, सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं॥

बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविताएं मानव मन में देश के प्रति अनुराग, मातृभाषा के प्रति प्रेम, नई विचार धारा और राष्ट्र की एकता पर बल देती हैं।

****

डॉ. अंजनी कुमार पाण्डेय
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सीतापुर

जनकवि-ऊमरदानजी लालस

शौर्य, औदार्य, भक्ति, नीति, लोकव्यवहार एवं अनुरक्ति आदि विविध विषयों से रचित राजस्थानी साहित्य डिंगल काव्यधारा का अपना अनुराग एवं गौरवशाली इतिहास है। जहां तक प्रगतिशील चेतना का प्रश्न है जिस तरह अंधेरे की कोख में उजाला जन्म लेता है उसी तरह परंपरा की कोख से ही प्रगतिशीलता का जन्म होता है। प्रतिरोध एवं प्रतिकार के स्वर से प्रगतिशीलता का गहरा नाता है। समय की जड़ता को तोड़कर शंखनाद करने वाले स्वर को प्रगतिशील स्वर कहा जाता है। परंपरा जब जड़ एवं रूढ़ रीति रिवाजों की जकड़न में फंसती नजर आती है तो प्रगतिशील चेतना उसे ललकारने को विवश हो जाती है। इस दृष्टि से देखे तो डिंगल काव्यधारा में वह चेतना सदैव विद्यमान रही है जो समय की अनीति पर बिना किसी भेदभाव एवं पक्षपात के करारी चोट करने की रचनात्मक जबावदेही का अहसास कराती है। इतिहास इस बात का साक्षी है जब राष्ट्र या समाज पर संकट के बादल मंडराए हैं तब इन डिंगल कवियों ने अपनी लेखनी की धार को तीक्ष्ण करके संबंधित के जमीर को जगाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इनमें से एक कवि रहे हैं ऊमरदान लालस। जबकि ऊमरदान लालस का नाम राजस्थानी साहित्य कोश में एक ज्योतिर्मय नक्षत्र में देदीप्यमान है। उनके व्यक्तित्व की पृथक पहचान है। इनका प्रमुख लक्ष्य पाखण्ड खण्डन, नशा-निवारण, राष्ट्र-गौरव एवं जन-जागरण का उद्घोष देखने को मिलता है। इनकी रचनाओं में सामाजिक व्यंग्य की प्रधानता के साथ ही साहित्यिकता, ऐतिहासिकता एवं आध्यात्मिकता की त्रिवेणी समान रूप से प्रवाहमान है।

राजस्थान के लोकप्रिय कवि ऊमरदान जी का जन्म 1908 वैशाख शुक्ल 2, शनिवार के दिन जोधपुर जिले की फळौदी तहसील के गाव ढांढरवाला में हुआ था। ये लालास शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का नाम मेघराज था। ऊमरदान के बड़े भाई का नाम नवलदान था और दो छोटे भाई शोभादान एवं आईदान थे। ऊमरदान के बचपन में ही माता और पिता का स्वर्गवास हो गया था और बड़े भाई का स्नेह भी नहीं मिला।

गाँव में जमीन-जायदाद के झगड़ों से खिन्न होकर उन्होंने समीपवर्ती गाँव भोळू में रामस्नेही संत जीयारामजी की झोपड़ी में रहना आरम्भ कर दिया। वहां से रामस्नेही संतों के कटिबंध शिष्य होकर जोधपुर आ गये और मोतीचौक स्थित दरबार स्कूल में चौथी कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त की थी। इसके पश्चात उन्होने चारण-कुलोत्पन्न मनीषी एवं कवि स्वामी गणेपुरीजी के पास डिंगल और पिंगल की काव्य शिक्षा ग्रहण की। तत्कालीन दरबार के शिक्षक पं. नर्वदाप्रसाद भार्गव से उन्होंने तरुण अवस्था में साधारण अंग्रेजी सीखी थी। जोधपुर के पं. देवराजजी के पिताश्री से उन्होंने ज्योतिष और संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया था। तरुण अवस्था में ही उन्होंने एक ओर दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज के वैदिक सिद्धान्तों के साथ पाखण्ड खण्डन के अकाट्य तर्क सुने तो

दूसरी ओर अनिच्छापूर्वक साधू बने कई लोगों को निकट से देखने का अवसर मिला, जो चादर की ओट में आदर पाने के साथ व्याभिचारी रत थे। ऊमरदान जी की कवित्व शक्ति और वाक्पटुता से प्रभावित होकर कई लोगों ने उन्हें सामाजिक जीवन के साथ जुड़ने का आग्रह किया। अत: 28 वर्ष की उम्र में उन्होंने साधुवेश को तिलांजली दे दी। इसके बाद वे गृहस्थ बन गये।

कविवर ऊमरदानजी प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने गृहस्थ बनते ही विवाह कर लिया और सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे।

डिंगल के धुरंधर कवि ऊमरदान लालस का तो पूरा साहित्य क्रांतिचेतना का साहित्य है। आम से लेकर खास हर किसी पर इस जनकवि की कलम चली और अपने ही तेवर में चली। धर्म-कर्म के नाम पर पापाचार में आकंठ डूबे मठों में रहने वाले संतों के मन की मैली भावनाओं को बारीकी से समझा। कवि की अंधश्रद्धा का मोहभंग होने पर मठों व मठाधीशों की काली करतूतों का खरा-खरा खुलासा करती कलम रुकी नहीं। जनता की गरीबी, लाचारी एवं बेबसी राजसत्ता के अनदेखे, स्वार्थी तत्वों के षड्यंत्र, क्षत्रियोचित आचरणों के अध:पतन, तरह-तरह के नशों की गिरफ्त में फंसती राजसत्ता एवं प्रजा को ऊमरदान ने हर तरह से जगाने का कार्य किया। वस्तुत: कवि ऊमरदान लालस जी आधुनिक राजस्थानी प्रगतिशील कविता के अग्रणी कवियों में से एक हैं, जिन्हें प्रगतिशीलता का सशक्त संवाहक कहा जा सकता है। उन्होंने देशवासियों की दुर्व्यसन-ग्रस्त दुर्दशा देखी और विदेशी सत्ता की कूटनीति भी देखी थी। इसलिए जनता को जागृत करने का भरपूर प्रयास किया और आर्यावर्त के विगत गौरव की स्मृति कराते हुए तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति पर तीक्ष्ण कटाक्ष किये थे।

ऊमरदान जी के साहित्य की भाँति संगीत के मर्मज्ञ थे। स्वयं संगीतज्ञ होने के कारण ही उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों में अनेक पद रचे हैं, जिनमें दयानन्द दर्शन, धर्म-कसौटी, ओलंभा, 'वैराग्य वचन', 'हमार री हाल' रचनाएं प्रमुख हैं। कहते हैं कि एक बार संगीत के प्रभाव का प्रसंग छिड़ने के साथ ही झेरावा गाने पर (करूण रागिनी) प्रस्तुति की गई। ऊमरदानजी ने कहा कि झेरावा गाने पर भी श्रोताओं की पलकें गीली न हुई तो वह रागिनी है ही नहीं। अन्य गवैये जब इस कसौटी पर खड़े नहीं उतरे तब ऊमरदानजी ने ऐसी करूण-रागिनी गाई कि श्रोतागण भाव-विभोर होकर बरबस ही अपने आंसुओं को रोक नहीं पाये। संगीत में भी उन्हे पारंगतता प्राप्त थी।

कविवर ऊमरदान जी विषय में लिखी गई टिप्पणी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं-

उनकी मुख मुद्रा से यह झलक आता था कि वे सदा प्रसन्नचित रहते थे। अतएव 'डेली-डिलाईटफुल' कथन सार्थक है। ऐसे सहृदय कवि से वार्तालाप करने तथा उनकी मनोहारिणी कविता सुनने में मुझे बड़ा आनन्द आता था, जिससे उनके साथ मेरा स्नेह बढ़ता ही गया।

****

कमलेश कंवर
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय दिल्ली (दक्षिण)

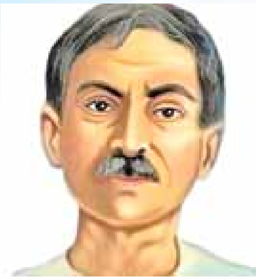

मुंशी प्रेमचंद

(1880-1936)

राष्ट्रीयता केवल व्यक्तिगत ही नहीं अपितु सामाजिक भावना भी है। मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास एवं काहनियों में मौजूद राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना, सामुदायिक विकास, जन समानता को समेटे हुए स्वतंत्रता की भावना जनमानस को आंदोलित कर उनके अंतर्मन में नैतिक व राष्ट्रीय मूल्यों को स्थापित करने का साहस भरती हैं। वे बीसवीं सदी में अपनी रचनाओं के माध्यम से आजादी का स्वप्न दिखाने एवं आजाद भारत में प्रेम, भाईचारा, बंधुत्व, सद्भावना, शांति और सौहार्द्र से परिपूर्ण देश की कल्पना करते हैं, जहाँ हिंसा, घृणा, विश्वासघात की कोई जगह न हो। वे जनता के अंदर व्याप्त देशप्रेम को उजागर करने एवं ब्रिटिश शासक के खिलाफ विरोधी स्वर को ऊँचा करने के लिए लगातार रचना कर रहे थे। प्रेमाश्रम और उसके बाद के उपन्यासों में पराधीनता के यथार्थ को वास्तविक रूप में व्यापक आयामों एवं जटिलताओं के साथ प्रस्तुत किया गया। उनके लिए देश की स्वतंत्रता आर्थिक शोषण से मुक्ति एवं दमन से भी आगे भावनात्मक एवं राष्ट्र प्रेम से जुड़ा था। औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ उन्होंने कई कलमें तोड़ी। ब्रिटिश शासन की शोषण-नीति से पैदा हुई, किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय जीवन स्थिति तथा अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण उन्होंने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'गोदान' इत्यादि उपन्यासों में किया है। 'सोजे वतन' नाम से प्रकाशित उनकी पहली कहानी संग्रह में संकलित पाँच कहानियाँ 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', 'शेख मखमूर', 'यही मेरा वतन है', 'शोक का पुरस्कार', 'सांसारिक प्रेम' और 'देश प्रेम' है। इन कहानियों ने जनमानस के हृदय में राष्ट्रीय भावना जागृत करने में अपनी विशेष भूमिका निभाई। प्रेमचंद ग्रामीण जीवन से अधिक संबद्ध थे। अतः उनकी अधिकतर कहानियों का विषय गाँव के जीवन से निःसृत है। इसके अतिरिक्त उनकी कहानियों में स्वतंत्रता पूर्व का कस्बाई जीवन, सत्याग्रह आंदोलन, जमींदारों, साहूकारों से संबंधित समस्याओं के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना विशेष रूप से मुखर हुई है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं-**"प्रेमचंद का हृदय संकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था, वे जानते थे कि इंसाफ और नई जिंदगी के लिए तमाम दुनिया की आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिंदुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन उसी का हिस्सा है। वे हिंदुस्तान के लोगों में एक नया भाव देख रहे थे कि दुनिया के तमाम मेहनत करने वाले लोग भाई-भाई हैं।"**

प्रेमचंद का राष्ट्र प्रेम एवं स्वतंत्रता की तीव्र भावना उनके 'सोजे वतन' में संकलित सभी कहानियों में स्पष्ट देखी जा सकती है। ''दुनिया का सबसे अनमोल रतन" कहानी में एक वीर सैनिक के पराक्रम को प्रदर्शित किया गया है जो मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने से भी पीछे नहीं हटता। उसके रक्तरंजित शरीर से निकलती

रक्त की बूंदे ही दुनिया का सबसे अनमोल रतन है। प्रेमिका द्वारा मंगाई गई रत्नजड़ित मंजूषा से निकली तख्ती पर स्वर्णाक्षरों में लिखा है-**"खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।"**

'शेख मखमूर' कहानी का पात्र मसऊद एक ऐसा सिपाही है जो अपने एकनिष्ठ व कठिन प्रयासों से देश को आजाद करने में सफल होता है, अन्य लोगों के लिए प्रेरणा बनता है जिससे उनमें भी देशभक्ति की भावना का संचार होता है। ''मेरा वतन" कहानी में एक प्रवासी व्यक्ति का अपने देश के प्रति प्रेम दर्शाया गया है। **''सांसारिक प्रेम और देश प्रेम"** कहानी का मुख्य पात्र 'मैजिनी' अपने देश से अत्यंत प्रेम करता है। मैग्डलीन एक खूबसूरत महिला है जो मैजिनी से बहुत प्रेम करती है। मैजिनी देश प्रेम के लिए अपने प्रेम को स्वीकार नहीं करता। उसने व्यक्तिगत प्रेम को देश प्रेम पर न्यौछावर कर दिया।

प्रेमचन्द की **''जुलूस"** कहानी में ''देश के युवक, वृद्ध व बालक हाथों में तिरंगा लिए जुलूस में सम्मिलित होते हैं। देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इनकी आलोचना करते हैं, लेकिन जुलूस वंदेमातरम् गाता हुआ स्वाधीनता के नशे में चूर चौराहे पर पहुँचता है, जिसे दरोगा बीरबल सिंह और उसके सिपाही रोक देते हैं और अंग्रेजी हुकूमत का हिमायती दरोगा बीरबल सिंह जुलूस का दमन करता है, तो आलोचक भी सामने आ जाते और देश की आजादी की आग निरंतर धधकती रहती है। इसके लिए वे अपनी लेखनी का शस्त्र की भांति सफल प्रयोग करते हैं।

प्रेमचंद राष्ट्रीयता के विकास में जातिगत भेदभाव को बड़ी रुकावट मानते थे। इसीलिए वे कहते हैं-**''राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच का भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है।"** प्रेमचंद ने तत्कालीन विदेशी नीतियों के विरुद्ध एक आजादी की लड़ाई का मानचित्र तैयार किया और उसमें शामिल सभी वर्ग के लोगों की भलाई का ध्यान भी रखा। वे जानते थे कि मजदूर, किसान, मध्यवर्ग व अन्य सभी अपने सरोकारों से ही राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े हैं इसीलिए उनकी रचनाओं में इसकी विशद व्याख्या परिलक्षित होती है। प्रेमचंद कहते हैं **''असहयोग स्वराज्य के लिए है। स्वराज्य अर्थात् किसान मजदूर जनता का राज।"** दरअसल वे एक ऐसे भारत का स्वप्न देख रहे थे जहाँ मनुष्य मनुष्य में भेद न हो। कोई भी किसी का शोषण न कर सके।

प्रेमचंद राष्ट्रीय आन्दोलन के निर्भीक व अविचल योद्धा थे। विदेशी सत्ता के साम्राज्यवादी चक्र में दबा-पिसा भारत उनकी रचनाओं में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रतिबिम्बित हुआ है। प्रेमचंद युग स्वाधीनता के लिए समर्पित रहा, देश में स्वाधीनता के विचारों का प्रचार-प्रसार करने में जो कार्य राजनीतिक माध्यम से महात्मा गांधी ने किया वही काम साहित्यिक माध्यम से प्रेमचंद ने किया। जनता के संस्कारी मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उसमें कला अंतर्निहित रहती है। प्रेमचंद इस तथ्य को अच्छी तरह समझते थे। पराधीनता की श्रृंखलाएँ तोड़ने के लिए भारतीयों में नवीन चेतना, साहस और शक्ति का संचार प्रेमचंद ने साहित्य के द्वारा किया। उन्होंने भारत को

झकझोर कर जगाया ही नहीं, उसे उसकी दयनीय दशा से ही परिचित नहीं कराया, वरन् उसे क्राँति के लिए स्वाधीनता हेतु संगठित अभियान के लिए तैयार भी किया। प्रेमचंद जी के साहित्य में भारत की आत्मा बोलती है।

प्रेमचंद रंगभूमि, कर्मभूमि व कायाकल्प इत्यादि जैसे उपन्यासों के माध्यम से देश भर में स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना का बिगुल फूँक रहे थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से यह दिखलाया है कि किस तरह देश का प्रत्येक नागरिक हिंदुस्तान को आजादी दिलाने की होड़ में लगा है। आजादी की चाह के लिए कैसे देश का वातावरण बम, गोलों, आन्दोलनों तथा सत्याग्रहों से युक्त था। सकल देश में प्रबल राष्ट्रीय चेतना का संचार हो रहा था। राष्ट्र की इस स्वाधीनता संग्राम से वे केवल वाकिफ ही नहीं थे, वरन् एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में इसमें प्रतिभागिता भी कर रहे थे। वे नमक कानून के विरोध में सपत्नीक जेल भी गए।

प्रेमचंद "रंगभूमि" में केवल आजादी को ही सर्वोपरि नहीं मानते बल्कि तत्पश्चात् देश में सुशासन की भी आवश्यकता पर जोर देते हैं। वे दिखलाते हैं कि केवल अंग्रेजों को देश से निकाल देने से ही आजादी की प्राप्ति नहीं हो जाएगी। जब तक सुशासन और स्वशासन की भावना देशवासियों में नहीं आयेगी, तब तक सामूहिक हित की भावना नहीं आयेगी, तब तक देश को संपूर्ण आजादी भी नहीं प्राप्त होगी। इतना ही नहीं उन्होंने देवीदीन खटिक जैसे व्यक्ति को प्रस्तुत किया जो जवान बेटों को अपने वतन के लिए बलिदान कर रहे थे।

इस उपन्यास में दिखलाते हैं कि देशवासियों को आखिरकार अंग्रेजों की सच्चाई का पता चल जाता है कि उनका मकसद केवल देश को लूटना है न कि समृद्ध बनाना है। वे एक पात्र द्वारा इसका खुलासा भी करते हैं- **"अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमको अंतकाल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।"**

"कर्मभूमि" उपन्यास में सन् 1930-1932 तक भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का सच्चा इतिहास है। देश का बच्चा-बच्चा ब्रिटिश सरकार को नेस्तनाबूद करने के मंसूबे बाँध रहा है। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए भी अनेक सुधारक सामने आ रहे थे। समाज का हर वर्ग स्वतंत्रता के इस महासंग्राम में आगे बढ़ रहा था। प्रेमंचद ने इस बात पर बल दिया कि हिंदुओं एवं मुसलमानों की समस्याएँ एक है और इन्हें मिलकर ही हल करना चाहिए। जनता ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों से इतनी त्रस्त थी कि वह शासन को मुहँतोड़ जवाब देने के लिए तत्पर थी।

प्रेमचंद ने अपने "प्रेमाश्रम" एवं "गबन" उपन्यास में भी न केवल बाहरी ताकतों के अत्याचार से बल्कि देश के आंतरिक अत्याचार, दुराचार व कुरीतियों से भी सीधे-सीधे मुठभेड़ किया है।

इस तरह प्रेमचंद के साहित्य में जनता की विभिन्न समस्याओं को उजागर करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन की प्राथमिकता देखने को मिलती है। प्रेमचंद के लिए साम्राज्यवादी गुलामी से देश की मुक्ति सबसे अहम समस्या थी। उनमें आजादी की तड़प थी और

उसको पाने के लिए वे कोई भी बलिदान करने को तत्पर थे। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी धुरियों पर बराबर काम किया। वे हिंदी के ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने राजनीति को साहित्य व गतिशील विचारों से जोड़ा तथा उसे देश भक्ति व मानवीय मूल्यों से पूरित मशाल बनाकर जनता का पथ प्रदर्शन किया। प्रेमचंद जी ने राष्ट्रीय जीवन व राष्ट्रीय संबंधों पर महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखकर स्वाधीनता आंदोलन के लिए न केवल दर्पण अपितु दीपक का भी महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया।

प्रेमचंद स्वाधीनता को जीवन और पराधीनता को मृत्यु समझते थे। उनकी दृष्टि में पराधीनता सबसे बड़ा पाप और सारे अत्याचारों की मूल थी। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के समस्त स्तरों को पहचाना और राजनीतिक दासता से मुक्ति को आर्थिक स्वतंत्रता से जोड़ दिया। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शोषणपूर्ण नीति, अंग्रेजी नौकरशाही का आंतकपूर्ण शासन, उसके साम्राज्यवादी स्वार्थ, अन्याय व अत्याचार, अंग्रेजों के पक्षधर जमींदार और पूँजीपति वर्ग के उत्पीड़न और अनाचार, भारतीय ईसाइयों की अंग्रेजों के अंधानुकरण की मनोवृत्ति तथा भारतीय शिक्षित वर्ग का अंग्रेजी शिक्षा व संस्कृति के प्रति लगाव आदि सभी का पर्दाफाश करके प्रतिरोध किया। साथ ही उन्होंने स्वदेशी का प्रचार, सांप्रदायिक एकता का प्रसार, अस्पृश्यता निवारण व दलितोद्धार, नारी जागरण, किसानों और मजदूरों की शक्ति स्थापना के आदर्श आदि सभी मोर्चों का चित्रण करते हुए जनमानस को उद्वेलित कर राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को गति प्रदान की।

प्रेमचंद जी ने 1930 के आरंभ में बनारसदास चतुर्वेदी को लिखे गए पत्र में कहा कि-**"मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है।"**

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. दुनिया का सबसे अनमोल रतन, गुप्त धन, भाग 1
2. जुलूस, मानसरोवर भाग 2
3. अमृत राय, विविध प्रसंग
4. रंगभूमि
5. कर्मभूमि
6. चिट्ठी पत्री, भाग 2

****

राजा साव
सहायक प्रबंधक(राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, अमृतसर

असमिया रचनाकार चन्द्र कुमार अग्रवाल

वैदिक काल से ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग होता रहा है। राष्ट्र की परिभाषायें समय-समय पर बदलती रही हैं। किन्तु राष्ट्र और राष्ट्रीयता का भाव गुलामी के दौरान अधिक पनपा जो साहित्य के माध्यम से हमारे समक्ष आया जिसके द्वारा राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। राष्ट्र के प्रति अपनत्व तथा अगाध प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता कहलाती है। राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति और प्रभावशाली प्रेरणा है। राष्ट्रीयता का संबंध केवल जड़ भूमि से न होकर आंतरिक होता है। अपने देश के अगाध प्रेम में अपनी संस्कृति, सभ्यता एंव धर्म के प्रति गौरव में अपने देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दशाओं में सुधार के प्रयत्न आदि में वह राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है। राष्ट्रीयता की भावना व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्च कोटि का शौर्य तथा बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना की एक ऐसी उच्चतम अभिव्यक्ति है जिसका इतिहास निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है। राष्ट्रीयता की भावना मानसिक अनुभूति अथवा मन की एक स्थिति है।

स्वतंत्रता संग्राम की धूम एवं देश में मच रही हलचल ने कवियों को राष्ट्रवादी काव्य की गंगा बहाने के लिये प्रेरित किया। स्वदेश व स्वधर्म की रक्षा के लिए कवि व साहित्यकार राष्ट्रीय भावों के द्वारा राष्ट्रीय चेतना का संचार कर रहे थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय भावधारा लिये हुये कविताओं के गर्भ में राष्ट्रीय चेतना का विकास होता रहा। स्वतंत्रता आंदोलन की गूंज सिर्फ भारत के एक भाग में नहीं बल्कि समूचे भारत में गूंज रही थी। स्वतंत्रता संग्राम चाहे किसी भी देश का रहा हो, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रेरणा के बिना स्वतंत्रता के संघर्ष में सफलता प्राप्त नहीं होती है।

1857 से लेकर जो मुक्ति संग्राम चला, उसमें कवियों और शायरों ने अपनी कविताओं, गीतों और गजलों के माध्यम से राष्ट्र को जागृति का संदेश दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में यह बात नवजागरण की भूमिका से स्पष्ट होती है। अनेक प्रांतीय भाषाओं के साहित्य के समान असमिया में भी आधुनिक काल का प्रारम्भ अंग्रेजी शासन के साथ जोड़ा जाता है। 1826 ई. असम में अंग्रेजी शासन के प्रारंभ की तिथि है। इस युग में स्वदेशी भावनाओं के दमन तथा सामाजिक विषमता ने मुख्य रूप से लेखकों को प्रेरणा दी। इधर 1838 ई. से ही विदेशी मिशनरियों ने भी अपना कार्य प्रारंभ किया और जनता में धर्म प्रचार का माध्यम असमिया को ही बनाया। फलत: असमिया भाषा के विकास में इन मिशनरियों द्वारा परिचालित व्यवस्थित ढंग के मुद्रण तथा प्रकाशन से भी एक स्तर पर सहायता मिली। अंग्रेजी शासन के युग में अंग्रेजी और यूरोपीय साहित्य के अध्ययन

मनन से असमिया के लेखक प्रभावित हुए। असमिया साहित्य का मूल रूप प्रमुखत: तीन लेखकों द्वारा निर्मित हुआ। ये लेखक थे, चंद्रकुमार अग्रवाल (1858-1938), लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ (1858-1938) तथा हेमचंद्र गोस्वामी (1872-1928)। कलकत्ता में रहकर अध्ययन करते समय इन तीन मित्रों ने 1889 में "जोनाकी" (जुगुनू) नामक मासिक पत्र की स्थापना की। इस पत्रिका को केंद्र बनाकर धीरे-धीरे एक साहित्यिक समुदाय उठ खड़ा हुआ जिसे बाद में जोनाकी समूह कहा गया।

चन्द्र कुमार अग्रवाल असमिया के प्रसिद्ध लेखक, कवि और पत्रकार थे। वे 'जोनाकी' काल के अग्रदूत थे। असमिया साहित्य में उन्हें प्रतिमार खोनिकोर कहा जाता है। वे असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा के संस्थापक भी थे। चन्द्र कुमार अग्रवाल को हम उनकी पहली असमिया कविता 'बांकुवारी' के लेखक के रूप में जानते हैं, असमिया राष्ट्र में उनका और भी महत्वपूर्ण योगदान साहित्यिक पत्रिका 'जोनाकी' की स्थापना था। वह एक छात्र थे और कलकत्ता से 'जोनाकी' पत्रिका प्रकाशित करने में उनका साहस आज भी असमिया भाषा प्रेमी उद्यमियों के लिए एक चमकदार उदाहरण है। यदि उन्होंने यह निर्णय समय पर नहीं लिया होता तो असमिया साहित्य आज दशकों पीछे रह जाता।

जीवन परिचय

चन्द्र कुमार अग्रवाल का जन्म 27 नवंबर 1867 को वर्तमान विश्वनाथ जिले के कलंगपार मौजा के ब्राह्मजन में हुआ था। उनके पिता का नाम हरिविलास अग्रवाल और माता का नाम मालमा था।

शैक्षिक जीवन

असम में प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, चंद्र कुमार अग्रवाल उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता वापस चले गए और प्रसिद्ध प्रेसीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता में दाखिला लिया, जहाँ उनकी मुलाकात लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ से हुई। शंकर और माधव के गहनों के मिलन की तरह, उनका मिलन असमिया भाषा और संस्कृति में एक नया चलन लेकर आया। इस संपर्क के बारे में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ लिखते हैं कि यह अँग्रेजी साहित्य चर्चा, संस्कृत साहित्य चर्चा और विशेष रूप से असमिया भाषा और साहित्य को बढ़ावा देने की इच्छा है जो हमारे बीच दोस्ती की शुरुआत करती है। इसके बाद ही मासिक समाचार पत्र जोनाकी का जन्म और विकास हुआ। जिस समय लक्ष्मीनाथ, चन्द्र कुमार और हेमचन्द्र बरुआ इन तीन महान असमिया पुरुषों ने 1889 में जोनाकी पत्रिका को जन्म दिया और असमिया भाषा और साहित्य को समृद्ध किया। उस समय चंद्र कुमार अग्रवाल केवल 21 वर्ष के थे। स्नातकोत्तर परीक्षा पास करने के बाद अग्रवाल ने इंग्लैंड जाने का फैसला किया। उनका सपना इंग्लैंड जाकर वहां से बैरिस्टर की डिग्री पास करना और कलकत्ता में असमिया भाषा और साहित्य के विकास के लिए काम करना था। हालाँकि, उनके पिता ने उन्हें इंग्लैंड जाने की अनुमति नहीं दी और असम लौट आए।

साहित्यकार चंद्र कुमार अग्रवाल

चंद्र कुमार अग्रवाल एक प्रमुख असमिया लेखक थे। और असमिया साहित्य के वर्तमान रूप में चंद्रकुमार अग्रवाल का महत्वपूर्ण योगदान है। चंद्र कुमार अग्रवाल ने

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और हेमचंद्र बरुआ के साथ मिलकर असमिया साहित्य में एक लहर पैदा की। इस लहर ने असमिया साहित्य को एक नए रूप में स्थापित किया। डिम्बेश्वर निओग लिखते हैं: ओरुनोदोई और जोनाकी व्यावहारिक रूप से दो आंदोलनों के अंग थे, पहला बंगाली (भाषा) द्वारा हड़पने के खिलाफ और बाद में उसकी बहाली के बाद असमिया के पुनर्निर्माण के लिए।। जोनाकी के संस्करणों के माध्यम से चंद्रकुमार ने असमिया काव्य लेखन में अपनी महारत साबित की। चंद्र कुमार अग्रवाल ने अपने शैक्षिक जीवन की शुरुआत तेजपुर में की और अपनी साहित्यिक प्रतिभा का विकास किया। चंद्र कुमार अग्रवाल लंबोद बोरा, आनंद चंद्र अग्रवाल और अन्य से प्रेरित थे। हालाँकि, साहित्य चर्चा के क्षेत्र में वह अपने पिता हरिबिलास अग्रवाल से अधिक प्रेरित थे।

चंद्र कुमार अग्रवाल की कविता

चंद्र कुमार अग्रवाल ने असमिया काव्य लेखन में रूमानियत पैदा की। वह असमिया रूमानियत के प्रणेता थे। जोनाकी पत्रिका के पन्नों में ही चंद्र कुमार अग्रवाल ने अपनी काव्य प्रतिभा का विकास किया। 1889 में जोनाकी के पहले खंड में प्रदर्शित होने वाली उनकी पहली कुछ कविताओं में बांकुवारी (द वुड निम्फ) नाम दिया गया था। "बांकुवारी" पहली असमिया रोमांटिक कविता है। "बांकुवारी" ने असमिया साहित्य की दुनिया में रूमानियत की लहर पैदा की। जल-कुंवारी (मत्स्यांगना), नियार (द ओस-बूंदें) में उनकी आध्यात्मिकता और प्रकृति की पूजा स्पष्ट है। उनकी कविता प्रकृति में प्रकृति का बौद्धिककरण मिलता है। शैली की तरह, चंद्रकुमार भी सुंदरता के उपासक थे, जिसका प्रमाण सुंदर (सुंदर), सौंदर्य (सौंदर्य) जैसी कविताओं से मिलता है, जहां वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि "सुंदर की पूजा जीवन का खेल है।" उन्होंने माधुरी (स्वीटनेस) और किशोरी (द मेडेन) जैसी बेहतरीन कविताओं में कीट्स की बुतपरस्ती को भी दिखाया। चंद्रकुमार में मानवीय नोट उनकी कविता मानव वंदना (मानव-पूजा) के माध्यम से प्रमुख हो जाता है। उनकी क्रांतिकारी भावना उनकी कविताओं बिन-बैरागी और प्रतिमा में खुद को बहुत स्पष्ट रूप से दिखाती है। उन्होंने विश्व भवरिया (ब्रह्मांड के रंगमंच में खिलाड़ी), मोई (स्वयं), प्रतिमा और गरीबों और दलितों के लिए उनके प्रेम जैसे आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों पर बड़ी संख्या में अत्यधिक चिंतनशील कविताएँ भी लिखीं।

चंद्र कुमार अग्रवाल ने कविताओं की दो पुस्तकें लिखीं और वे हैं-प्रतिमा और बीन-बरगी। इन दोनों पुस्तकों में प्रकाशित अधिकांश कविताएँ जोनाकी और बनही पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। कविताओं की पुस्तक प्रतिमा 1913 में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अपनी पहली कविता का नाम अपनी बेटी प्रतिमा के नाम पर रखा, जिनकी समय से पहले मृत्यु हो गई। जोनाकी पत्रिका में प्रकाशित कविताएं प्रतिमा पोएट्री बुक में शामिल हैं। प्रतिमा में पच्चीस (25) कविताएँ हैं। यह पहली बार है कि चंद्र कुमार अग्रवाल को उनकी कविताओं की आसानी से पढ़ी जाने वाली पुस्तक के लिए "मूर्तियों का खान" कहा गया है। प्रतिमा के बाद चंद्र कुमार अग्रवाल ने बीन-बरगी नामक

कविताओं की एक पुस्तक लिखी। 1923 में, उन्होंने "बीन-बरगी" कविताओं की पुस्तक प्रकाशित की। बनही पत्रिका में प्रकाशित चंद्र कुमार अग्रवाल की कविताएं "बीन बरगी" में शामिल हैं। इसमें कुल बारह (12) कविताएँ हैं। 1967 में चंद्र कुमार अग्रवाल की जन्म शताब्दी के अवसर पर चंद्रमृत शीर्षक से उनकी अप्रकाशित कविताओं का एक संग्रह तैयार किया गया था। चंद्र कुमार अग्रवाल की कविताओं में तीन मुख्य भाव हैं। वे हैं- 1) मानव प्रेमी, 2) प्रकृति प्रेमी और 3) विश्व प्रेमी। चंद्र कुमार अग्रवाल की कविताओं में और भी कई विचार हैं।

संपादक चंद्र कुमार अग्रवाल

चंद्र कुमार अग्रवाल असमिया लैंग्वेज प्रमोशन सोसाइटी (ABSU) के मुखपत्र जोनाकी के संपादक थे। और उन्होंने जोनाकी पत्रिका के प्रकाशन के लिए अधिकांश धनराशि प्रदान की। चंद्र कुमार अग्रवाल बाद में व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता से असम चले गए लेकिन उन्होंने जोनाकी के प्रकाशन के लिए जितना हो सके उतना धन देना जारी रखा। चंद्र कुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और हेमचंद्र गोस्वामी के साथ, जोनाकी युग की त्रिमूर्ति के तीसरे अंग थे। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता से संबलपुर गए और बनही पत्रिका का प्रकाशन नहीं कर पाए। चंद्र कुमार अग्रवाल ने आगे आकर खुद गुवाहाटी से बनही पत्रिका के प्रकाशन की जिम्मेदारी संभाली।

निधन

19वीं सदी के उत्तरार्ध से 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक असम के साहित्यिक जगत पर राज करते हुए चंद्र कुमार अग्रवाल का 2 मार्च 1938 को निधन हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु 70 वर्ष थी। उनका निधन गुवाहाटी के उजान बाजार में उनके निजी आवास पर हुआ। चंद्र कुमार अग्रवाल असमिया साहित्य के पुजारी थे। वे व्यवसाय में व्यस्त थे लेकिन साथ ही उन्होंने असम और असमिया साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे राष्ट्रवादी भी थे। 1921 में जब असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी डिब्रूगढ़ गए, तो चंद्र कुमार अग्रवाल ने उन्हें डिब्रूगढ़ के खलिहारी में अपने आवास पर ठहराया। चंद्र कुमार अग्रवाल गांधी जी की विचारधारा और दर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे। गांधी जी का दर्शन उन्हें इतना प्रभावित किया कि उन्होंने पश्चिमी जीवन शैली को त्याग दिया और हाथ से बुनी हुई खद्दर पोशाक पहनना शुरू कर दिया। असमिया साहित्यकार या राष्ट्रवादी चंद्र कुमार अग्रवाल हम सभी के लिए एक आदर्श हैं।

****

राहुल साव
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल प्रबंधक सिलीगुड़ी

पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय

खड़ी बोली हिंदी के विकास में जिन साहित्य मनीषियों ने अपना सर्वस्व अर्पित किया था, उनके बीच साहित्य वाचस्पति, राष्ट्रवादी साहित्यकार, **पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय** का नाम अत्यंत श्रद्धापूर्वक लिया जाता है। पाण्डेय जी का जन्म 4 जनवरी 1887 को छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले के **बालपुर** नामक ग्राम में हुआ था। उनकी आर्थिक स्थिति भी मजबूत थी। उनके पिता पांच गांव के मालगुजार थे। उनके पिता पाण्डेय जी को स्वयं कई महत्वपूर्ण साहित्य संस्थानों, उत्सवों से जोड़ने को प्रयत्नशील रहते थे। बचपन में बनारस, कलकत्ता जैसे शहरों में साहित्यिकारों के बीच उनके किशोर मन में काव्य के सुंदर संस्कार पड़े।

पाण्डेय जी ने अपने युवावस्था में सैकड़ों कवितायें लिखी थी, जो सरस्वती, इन्दु, कमला, आनंद कादम्बिनी, हिन्दी प्रदीप, भारत मित्र, प्रभासुधा श्री शारदा, हितकारिणी, विशाल भारत, माधुरी जैसे प्राय: सभी श्रेष्ठ पत्र पत्रिकाओं में छपती थी। उनकी प्रमुख काव्य कृतियों में काफी प्रसिद्ध हुई **प्रवासी, नीति कविता, बाल विनोद (1909 के पूर्व प्रकाशित) कविता कुसुम माला (सम्पादित 1910), माधव मंजरी, मेवाड़ गाथा (1914) पद्मपुष्पांजलि (1915), व विनोद, शोकोच्छवास, सम्राट स्वागत, कृषक बाल सखा आदि। भृर्तहरि शतक, रघुवंश सार संस्कृत से अनूदित, कविता कुसुम, रोगी रोदन और महानदी उड़िया रचनाएं हैं।** महानदी खण्ड काव्य पर **वामण्डा नरेश राजा सच्चिदानंद त्रिभुवनदेव** ने उन्हें सन 1912 में **काव्य विनोद** की उपाधि से अलंकृत किया था। महानदी अत्यंत सरस व प्रवाहमयी काव्य है और साहित्य में उसका यथेष्ट सम्मान है। उड़िया के अतिरिक्त पाण्डेय जी ने संस्कृत और छत्तीसगढ़ी में भी कवितायें लिखी हैं। पुष्पांजलि उनका संस्कृत काव्य है। इसके अतिरिक्त पाण्डेय जी ने अंग्रेजी बंगला और उड़िया के प्रसिद्ध कविताओं का सरल अनुवाद कर खड़ी बोली को मधुर एवं मर्मस्पर्शी बनाया। पाण्डेय जी की पहली पद्य रचना बालकृष्ण भट्ट के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका हिन्दी प्रदीप में सन् 1904 के लगभग प्रकाशित हुई थी, जिसका सम्पादन राय देवीप्रसाद पूर्ण ने किया था। पाण्डेय जी शुरू से ही प्रयोगधर्मी साहित्यकार थे। वे अंग्रेजी, बंगला और उड़िया से प्रभावित थे।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने म.प्र. की काव्य प्रवृत्तियां शीर्षक लेख में उनकी महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है- **"श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय हिन्दी काव्य में उसी प्रकार समादृत हैं, जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में मैथिलीशरण गुप्त और उनके छोटे भाई सियारामशरण गुप्त"।**

पाण्डेयजी का काव्य मूल्यांकन खड़ी बोली काव्य आंदोलन के संदर्भ में ही करना

चाहिए। **खड़ी बोली का यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का महत्वपूर्ण हिस्सा है।**

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में खड़ी बोली और ब्रज का संघर्ष जोरों पर था। लोचनप्रसाद पाण्डेय जी की बोली में कहीं-कहीं ब्रज और छत्तीसगढ़ी का माधुर्य मिलता है। पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय ने जिस समय काव्य रचना शुरू की, उस समय छत्तीसगढ़ में साहित्य सृजन के लिए सुंदर वातावरण तैयार हो चुका था।

लोचन प्रसाद पाण्डेय जी की साहित्य साधना में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूपः-

पाण्डेय जी का पारिवारिक वातावरण भी साहित्य के लिए कम उपजाऊ नहीं था। पितामह श्री शालिग्राम पाण्डेय और पिता श्री चिन्तामणि पाण्डेय साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। उनके पुस्तकालय में संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, उड़िया और हिन्दी की महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध थीं। पाण्डेय जी को अपने देश से अत्यंत अनुराग था इसलिए उन्होंने अपने देश के प्राकृतिक वातावरण का भी आकर्षक चित्रण अपनी कविता में किया है-

बहत सरित इक ओर चरण तुअ पलकि पखारत
इक दिसि सुन्दर ताल धोई मुख छबि पर सारत
रम्य पहाड़ी सुखद, मुकुट सम इक दिसी सोहत
निज छवि छटा पसारि, दर्शकन को मन मोहत

पाण्डेय जी ने अपने काव्य में जिस कौशल का परिचय दिया था उसे देखते हुये **आचार्य नंददुलारे वाजपेयी** ने उन्हें **'पंडित कवि'** कहा है। हिन्दी में **'प्रगीति'** शब्द के प्रथम प्रयोगकर्ता के रूप में पांडेय जी जाने जाते हैं। सन् 1909 में उन्होंने कविता कुसुम माला की विस्तृत भूमिका लिखी थी, जिसमें अंग्रेजी के लिरिक के पर्याय के रूप में प्रगीति का प्रयोग किया था। इसी प्रकार पाण्डेय जी ने खड़ी बोली में पहली बार' सॉनेट' का प्रयोग किया था।

घर कविता के माध्यम से उन्होंने अपने देश रूपी घर के प्रति प्रेम को भी व्यक्त किया है। इस कविता में उन्होंने स्वदेश के गुणों का गुणगान किया है। उनके अनुसार निवास करने हेतु अपने देश से बेहतर कोई स्थान नहीं है यहीं हमें शांति एवं कुटुंब सुख प्राप्त होता है जो स्वर्ग के तुल्य है। दूसरे शब्दों में वे देश के जन साधारण को देश के प्रति अनुराग, लगाव रखने को प्रेरित कर रहे हैं।

जननी जनक भ्रात भगनी रहती जहा
पुण्य भूमि उसके समान जग में कहा
सुखदायिनी वह भूमि शान्ति की मूल है
शान्ति, प्रेम, सुख का घर वास स्थान है
मर्त्यलोक में घर वैकुण्ठ समान है'

पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय की कविता का विषय क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उनकी रचनाओं को प्रार्थनापरक गीतों, शिक्षा एवं उपदेश परक पद्य रचनाओं, देश भक्ति से ओत-प्रोत वीर गाथाओं, प्रकृति सौंदर्य के मुक्तकों और मानवीय व्यापारों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है।

प्रवासी पद्य पुष्पांजलि और मेवाड़ गाथा **देश भक्ति** से अनुस्यूत ओजस्वी रचनाओं के संग्रह है, प्रवासी में ग्राम्य जीवन और गृहस्थ जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण है। पद्य पुष्पांजलि की भूमिका राय देवीप्रसाद पूर्ण ने लिखी थी इसमें स्तुतिपरक रचनाएं अधिक हैं। एक स्थल देखिए-

सजला सफला शुचि शस्य श्यामला तू है
अबला, सबला, सद्धर्म निश्चला तू है
तू अन्नपूर्णा, अन्न शाक का घर है
तू स्वर्ण रत्न मुक्तामणि का आकर है
(भारत स्तुति से उद्धृत)

पाण्डेय जी **कट्टर राष्ट्रवादी** थे। यद्यपि उन्होंने प्रारंभ में सम्राट स्वागत जैसी राजभक्ति से युक्त कृति का सृजन किया, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने इस प्रवृत्ति का त्याग कर दिया। यहां तक कि एक बार उन्होंने अपने अनुज पं. मुकुटधर पाण्डेय को नटकाव्य करते हुए देख लिया, इस पर उन्होंने कड़ी फटकार दी, और उन्हें आगे भावात्मक कविता लिखने की प्रेरणा दी। जिससे उत्प्रेरित होकर पं. मुकुटधर पाण्डेय ने नई कविता धारा 'छायावाद' का युगान्तरकारी परिवर्तन किया।

पाण्डेय जी के हृदय में **स्वजाति, स्वभाषा** और स्वदेश प्रेम का सागर लहराता था। मेवाड़ गाथा उनका अनूठा काव्य है। इसमें सिसोदियों की **देश भक्ति, प्रेम, त्याग, शौर्य बलिदान और स्वातंत्र्य प्रेम की गौरव गाथा** अंकित है। मेवाड़ गाथा मंगलदेव शास्त्री के अनुसार हजारों युवकों के धर्म की पोथी बन गयी थी। महाकवि हरिऔध ने इस कृति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। उनके शब्दों में 'मेवाड़ गाथा की रचना बड़ी ही ओजस्विनी और हृदयोल्लासिनी है, इसके भाव बड़े ही अनूठे और विमोहक हैं। आपने इसकी रचना करके भाषा को गौरवमयी बनाया है, यह बात मैं मुक्त कंठ से कह सकता हूं।' (13-10-1914) इस कृति में चित्तौड़ के भीमसिंह के अपूर्व त्याग की गाथा, रास पंचाध्यायी की शैली पर तथा महाराणा प्रताप की वेदना स्रग्धरा छंद में वर्णित है। वेदना और आत्मग्लानि का एक करुण चित्र देखिये -

ऐसा है जो नहीं तो, पल पल दुख क्यों, भोगता है प्रताप क्या मैंने जो बेची निज कुल गरिमा तो किया घोर पाप लेकिन प्रताप का उज्ज्वल चरित्र पुनः स्वाभिमान से दृढ़ संकल्पित होकर उठ खड़ा होता है- हो जावे क्यों न मेरी तन मन धन की और सर्वस्व हानि रखूंगा मैं प्रतिज्ञा स्वपितरगण की छोड़ के आत्मग्लानि

पाण्डेय जी **राष्ट्र प्रेमी** एवं **क्रांतिकारी विचारधारा के युवक** थे, वे छद्म नामों से ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ भी लिखते थे, क्रांतिकारियों की प्रतिबन्धित पुस्तकें उनकी पेटियों में सुरक्षित रहती थी। उन्होंने सत्यदेव परिव्राजक को सन 1907 में निम्न कविता अमेरिका भेजी थी-

मचा दो गुल हिन्द में यह घर -घर
स्वराज्य लेंगे स्वराज्य लेंगे

पाण्डेय जी देश की तत्कालीन अवस्था से अत्यंत क्षुब्ध और दुखी रहते थे। वे परतंत्रता का एकमात्र कारण हमारी अज्ञानता को मानते थे। एक उद्‌गार देखिए-

"देखो तो हो गया है, पतन यह महा, आज कैसा हमारा विद्या बुद्धि प्रतिष्ठा, धन बल न रहे, खो गया सर्व सारा आर्यों की आर्यता का सुभग अब नहीं, चिन्ह कोई"

(लखाता से उद्धृत)

पाण्डेय जी इतना होते हुए भी निराश नहीं थे। वे एक दृष्टाकवि थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था, देश आजाद होगा और खुशहाली आयेगी और यह सौभाग्य उनके जीते जी आया। तब राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी ने सन् 1913 की प्रभा में प्रकाशित उन्हीं की 'कविता' बधाई देते हुए उन्हें अर्पित की-

देवों के हस्त द्वारा हम पर भी पुष्प की वृष्टि होगी
हे भाई, है न देरी, भरत वसुमति सौख्य की सृष्टि होगी

पाण्डेय जी **पूर्ण स्वातंत्र्यचेता- पुरुष** थे। पाण्डेय जी ने **इन्दु** जैसी श्रेष्ठ पत्रिका में ओज और माधुर्य से समन्वित **देश प्रेम की श्रेष्ठ** रचनायें प्रकाशित कराई थी, जिनमें **स्वदेश, भारत वर्ष नम्र निवेदन, जय हिन्दुस्तान** आदि उल्लेखनीय नीति रचनाएं हैं। इन्दु में प्रकाशित एक अंश देखिए-

जय स्वदेश जय स्वदेश जय स्वदेश प्यारा
जीवन धन तू अमूल्य, प्राण तू हमारा
तू है स्वातंत्र्य रूप सुख का तू कारा
विद्या बल शिल्प कला वैभव तू सारा

(स्वदेश इन्दु, दिसम्बर 1914)
(कविता- कुसुम माला)

पाण्डेय जी के काव्य का मूल स्वर तो **राष्ट्रीय चेतना का ही है,** साथ ही अपने देश की प्रकृति और ग्राम्य जीवन का भी उन्होंने सुंदर चित्रण किया है। सम्पूर्ण रूप से देखें तो राष्ट्रवादी कवि पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय उदात्त भावों के कवि थे, उनका जीवन मानवीय मूल्यों एवं राष्ट्र की आजादी की चिन्ता करते बीता है। उन्होंने अपने काव्य में **राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ,** मानव जीवन की सार्थकता, जीवन चिन्ता, सर्वग्रासी काल जीवन संगीत जैसा कविताओं में जीवन की नश्वरता और उदात्त भावनाओं का चित्रण किया है।

****

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सतना

सोहनलाल द्विवेदी

परिचयः सोहनलाल द्विवेदी जी का जन्म सन् 1906 में उत्तर-प्रदेश के फतेहपुर जिले के बिंदकी नामक कस्बे में हुआ। द्विवेदी जी की हाईस्कूल तक की पढ़ाई फतेहपुर में और उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस में हुई। महामना मालवीय जी की प्रेरणा से द्विवेदी जी के मन में राष्ट्रीयता का अंकुर फूटा। वे राष्ट्रकवि के साथ-साथ बालकवि भी थे।

द्विवेदी जी सन् 1938 से 1942 तक राष्ट्रीय पत्र "दैनिक अधिकार" के संपादक रहे। द्विवेदी जी ने न केवल हिन्दी के बाल साहित्य को अपनी लेखनी के माध्यम से सम्पन्न किया वरन कई वर्षों तक वे बाल पत्रिका "बाल-सखा" के अवैतनिक संपादक भी रहे। सोहनलाल द्विवेदी जी को सन् 1969 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। 1 मार्च 1988 में द्विवेदी जी का असमय देहावसान हो गया।

राष्ट्रीय चेतनाः द्विवेदी जी का काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। उनकी हर कविता युवाओं में राष्ट्र प्रेम का संचार करती है। वे गांधी जी से बहुत प्रभावित थे। अपनी कविता युगावतार में वे लिखते हैं-

हे युग-दृष्टा, हे युग-स्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष-मंत्र?
इस राजतंत्र के खंडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र

द्विवेदी जी स्वतंत्र भारत के दुष्कर कार्य के प्रति युवाओं को प्रेरित करते और उनमें जोश भरते हुए कहते-

"लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती
नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती"

स्वदेशी को अपनाकर आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनका लिखा "खादी गीत" इतना चर्चित हुआ कि उसे 'पार्षद' जी के झण्डा गीत के साथ गाया जाता था-

"खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे-रेशे में अपने भाई का प्यार भरा,
मां-बहनों का सत्कार भरा, बच्चों का मधुर दुलार भरा।"

अपनी 'बढ़े चलो-बढ़ो चलो ' कविता में उनका मुखरित स्वर देखते ही बनता है-

"न हाथ एक शस्त्र हो, न हाथ एक अस्त्र हो, न अन्न नीर वस्त्र हो
हटो नहीं, डटो वहीं, बढ़े चलो-बढ़े चलो
रहे समक्ष हिम शिखर, तुम्हारा प्रण उठे निखर, भले ही जाए तन बिखर,
रुको नहीं, झुको नहीं, बढ़े चलो-बढ़े चलो"

'नववर्ष' कविता में वे नव-जीवन, नव-तंत्र और महाजागरण का नव-भोर चाहते हैं-

"स्वागत"! जीवन के नवल वर्ष
आओ, नूतन-निर्माण लिए
इस महाजागरण के युग में
जाग्रत जीवन अभिमान लिए
दीनों दुखियों का त्राण लिए
मानवता का कल्याण लिए
स्वागत! नवयुग के नवल वर्ष!

प्रकृति का कण-कण उन्हें प्रेरित करता है, चाहे वह अथाह सागर हो या नगाधिराज हिमालय-

खड़ा हिमालय बता रहा है
डरो न आंधी पानी में
खड़े रहो तुम अविचल होकर
सब संकट तूफानी में
डिगो न अपने प्रण से तो तुम
सब कुछ पा सकते हो प्यारे
तुम भी ऊंचे उठ सकते हो
छू सकते हो नभ के तारे

परतंत्रता द्विवेदी जी को अस्वीकार्य थी। वे आजादी को अवश्यम्भावी मानते थे। अपनी कविता **"मुक्ता"** में वे लिखते हैं-

जंजीरों से चले बांधने
आजादी की चाह
घी से आग बुझाने की
सोची है सीधी राह!
हाथ-पाँव जकड़ो जो चाहो
है अधिकार तुम्हारा।
जंजीरों से कैद नहीं
हो सकता हृदय हमारा!

भारत पर भारतीयों का ही एकाधिकार है, उनका ऐसा अटल विश्वास था–

यह भारतवर्ष हमारा है!
हमको प्राणों से प्यारा है!!
है यहाँ हिमालय खड़ा हुआ,
संतरी सरीखा अड़ा हुआ,
गंगा की निर्मल धारा है!
यह भारतवर्ष हमारा है!
यमुना का श्याम किनारा है!
यह भारतवर्ष हमारा है!
तन मन धन प्राण चढ़ाएँगे,
हम इसका मान बढ़ाएँगे!
जग का सौभाग्य सितारा है!
यह भारतवर्ष हमारा है!

द्विवेदी जी ने अपना सर्वस्व अपनी मातृभूमि को समर्पित कर दिया था! अपनी "मातृभूमि" नामक कविता में वे अपनी मातृभूमि को कुछ इस प्रकार वर्णित करते हैं–

ऊँचा खड़ा हिमालय, आकाश चूमता है
वह जन्मभूमि मेरी, वह मातृभूमि मेरी।
गौतम ने जन्म लेकर, जिसका सुयश बढ़ाया,
जग को दया सिखाई, जग को दिया दिखाया।
वह युद्ध-भूमि मेरी, वह बुद्ध-भूमि मेरी।
वह मातृभूमि मेरी, वह जन्मभूमि मेरी।

द्विवेदी जी के कविता संग्रह में भैरवी, वासवदत्ता, पूजागीत, विषपान, जय गांधी, सेवा ग्राम प्रतिनिधि रचनाएं हैं। द्विवेदी जी पर लिखे गए एक लेख में **आचार्य अच्युतानन्द मिश्र** जी लिखते हैं कि सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीय नवजागरण के उत्प्रेरक कवि श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी थे। उनकी बहुचर्चित एवं लोकप्रिय रचनाओं 'भैरवी' एवं 'युगावतार' के संबंध में **डॉ. हरिवंशराय बच्चन** का कथन है कि "जहाँ तक मेरी स्मृति है, जिस कवि को राष्ट्रकवि के नाम से सर्वप्रथम अभिहित किया गया, वे सोहनलाल द्विवेदी थे।. .." आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके लिए लिखा है कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी समाज में उनकी कविताओं का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था।

****

कुलवेन्द्र सिंह
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, आगरा

साली रामचंद्रराव

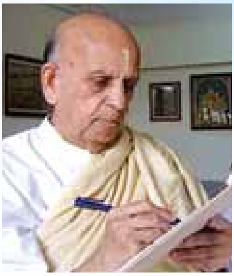

भारत को ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से आजाद करवाने के लिए किए गए आंदोलनों में देश के हर कोने से हर भारतीयों द्वारा योगदान दिया गया। हर क्षेत्र व भाषा के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। कर्नाटक प्रांत के कलम के सिपाहियों ने भी इस कार्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। कन्नड़ भाषा के ऐसे ही साहित्यकार, श्री साली रामचंद्रराव जी हैं।

श्री साली रामचंद्रराव जी ने स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी युग में अपनी काव्य रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का कार्य किया। वे अपनी कविताओं में स्वाधीनता की तुलना सूर्य से करते हैं। वे कहते हैं कि स्वाधीनता का सूर्य उदय हो रहा है और दासता का अंधकार इससे दूर हो रहा है। वर्ष 1916 में प्रकाशित हुई उनकी कविता 'हम्बलु' (चाह) की कुछ पंक्तियां निम्नवत हैं-

नहीं चाहिए मुझे गौ माता का दूध
नहीं चाहिए मुझे अमृत स्वर्ग का
भगवती जानता हूं कितना मीठा नाम तुम्हारा
पावन माता, भगवान की कृपा है ऐसी
मैं कर सकता हूं सेवा तुम्हारी चरणों पर।
नहीं चाहिए मुझे कुछ और।

स्वाधीनता की चेतना इस युग के साहित्यकारों की देन थी। इनके साहित्य में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम झलकता है और मातृभूमि को मुक्त करने के लिए स्वाधीनता की लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लेने का आह्वान स्पष्ट दिखाई देता है। साहित्यकार का मातृभूमि के प्रति स्नेह निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से वर्णित किया गया है-

जन्म लूं यदि ब्राह्मण होकर
जन्म लूं यदि अंतेवासी,
नहीं मिलेगी तृप्ति मुझे, जानता नहीं मैं,
मां यह कृपा अपार है
जन्म लिया है बनकर संतान तुम्हारी।
भाग्य हो ऐसा कि जन्म ले सकूं मैं होकर तुम्हारा पुत्र
जन्म जन्म।

उस युग के साहित्य में एवं साहित्यकारों के हृदय में अपने देश, अपनी मातृभूमि की दुखद स्थिति पर करुणा का भाव था और वे अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य करते थे और जन्मभूमि पर प्राण न्यौछावर करने को भी तत्पर दिखाई देते थे, जो निम्न पंक्तियों में स्पष्ट दिखाई देता है-

नहीं चाहता धन सम्पत्ति हे भगवान
नहीं चाहिए मुझको कुछ सम्मान
विद्वानों में विख्यातों में, हे दयालु भगवान,
दया कर इतनी कि मैं स्मरण कर सकूं मातृभूमि को
सोते जागते, और नष्ट हो यह शरीर
सेवा करते अपनी मातृभूमि की ॥

****

प्रवीण कुमार
प्रबंधक (राजभाषा)
अंचल कार्यालय, बेंगलुरू

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हमारा देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ, किंतु इसे स्वतंत्र कराने के लिए 1857 से लेकर 1947 तक क्रांतिकारियों व आंदोलनकारियों के साथ-साथ लेखकों, कवियों व पत्रकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता आंदोलन को अहिंसक बनाए रखने के गांधी के संकल्प के कारण भारत में आजादी की अधिकतर लड़ाई कलम से लड़ी गई। यह कलम ही थी जिसने जनमानस को सचेत किया।

खड़ी बोली में रचे गए पहले महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' के रचयिता अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को दुनिया कवि सम्राट के रूप में जानती है। उपाध्याय सिंह 'हरिऔध' का जन्म जिला मुख्यालय से 15 किमी दूर निजामाबाद कस्बे में पंडित भोलानाथ उपाध्याय के घर सन 1865 में हुआ था। सिख धर्म अपना कर उन्होंने अपना नाम भोला सिंह रख लिया था। वर्ष 1898 में हरिऔध जी को सरकारी नौकरी मिल गई। वे कानूनगो हो गए। इस पद से 1932 में अवकाश ग्रहण करने के बाद हरिऔध जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अवैतनिक शिक्षक के रूप से कई वर्षो तक अध्यापन कार्य किया। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में हिदी कवियों के ओजस्वी उद्गारों तथा उनसे मिली प्रेरणा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसे कतई विस्मृत नहीं किया जा सकता। 1857 में देश एक नयी चेतना की ओर अग्रसर हो रहा था। ऐसे समय में भारतीय जनमानस के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और साहित्यिक आदि क्षेत्रों में नव्य चेतना से देश के लोग झंकृत हो रहे थे।

इसी समय आजमगढ़ की उर्वरक जमीन पर हिंदी साहित्य के क्रांतिवीर बनकर दीपक की लौ जलाने वाले अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने साहित्य जगत में प्रवेश किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ उन्होंने जो साहित्य की रचना शुरू की वह अगले पांच दशकों तक निरंतर ऊँचाइया छूती रही। इस अवधि में उन्होंने कविता, उपन्यास, आलोचना, निबन्ध, और अनेक विधाओं में रचना की। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं जैसे-काव्य, उपन्यास, आलोचना, ललित निबन्ध, नाटक और संपादन आदि में उल्लेखनीय कार्य किया।

प्रस्तुत हैं उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ जिन्हें पढ़कर किसी के भी मन में देश के लिए कुछ कर गुजरने की भावना जागृत हो जाए-

अब अपने घर में आग हम लगाते हैं
क्या रहे और अब क्या बनते जाते हैं
थी विजय-पताका देश देश लहराती

हरिऔध जी ने कृष्ण को ईश्वर रूप में न दिखा कर आदर्श मानव और लोक-सेवक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने स्वयं कृष्ण के मुख से कहलवाया है-

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का,
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भारतीय स्वाधीनता हेतु अपनी तलवार रूपी कलम को पैना किया। इन्होंने आम जनता में राष्ट्र प्रेम की भावना जगाने तथा उन्हें स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बनने हेतु प्रेरित किया। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन में लेखकों ने आजादी की चेतना फैलाई, तो यह आंदोलन उनकी लेखनी में निखार भी ले आया और अनुपम कृतियों की रचनाएं हुई। वे लेखक जनता की आवाज बने। वर्ष 1947 में उनका निधन हो गया।

****

रंजना चौहान
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, हैदराबाद

गोपबंधु दास

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व उड़ीसा देश का एक अत्यंत पिछड़ा हुआ। इलाका था। प्राय: हर साल बाढ़, दुर्भिक्ष और तूफान के कारण हजारों लोग काल के ग्रास बन जाते थे। शिक्षा का प्रचार नहीं के बराबर था। गांवों में तो क्या, बड़े शहरों में भी स्कूल-कॉलेज न थे। लोगों के विचार भी बड़े दकियानूसी थे। इन सबके कारण वहां भारी गरीबी छाई हुई थी। बहुत से उड़िया लोग कलकत्ता जाकर मजदूरी करते थे। अकाल पड़ने पर वे भीख मांगने को मजबूर हो जाते। ऐसे समय में गोपबंधु दास ने उड़ीसा को सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ाया। वास्तव में वह आधुनिक उड़ीसा के पिता थे। इसी कारण उन्हें "उत्कल मणि" कहा जाता है।

गोपबंधु दास का जन्म सन् 1877 ई. में पुरी जिले के सत्यवादी थाना के अंतर्गत "सुआंडो" नामक एक क्षुद्र पल्ली (गाँव) में हुआ था। इनके पिता का नाम दैतारि दास तथा माता का नाम स्वर्णमयी देवी था। इनका संबंध एक गरीब ब्राह्मण परिवार से था। उनकी माँ अपने दुबले-पतले कमजोर शिशु के जन्म के कुछ दिनों बाद ही स्वर्ग सिधार गई। बाद में भी गोपबंधु का शरीर कमजोर और रोगी ही रहा। पर इस कमजोर शरीर के दिल में फौलाद की सी ताकत और क्षमता थी। जिसने उड़ीसा की कायापलट कर दी।

गोपबंधु दास की शिक्षा

गांव में प्रारंभिक शिक्षा पाने के बाद गोपबंधु ने 1899 में पुरी जिला स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की और फिर तेईस वर्ष की अवस्था में, रेवनशा कॉलेज कटक में प्रवेश किया। कॉलेज में दाखिल हुए उन्हें कुछ ही दिन हुए थे, कि उनके पिता का देहांत हो गया। पर परिवार की जिम्मेदारी उनके बड़े सौतेले भाई ने संभाली और गोपबंधु की शिक्षा में कोई बाधा नहीं पड़ी। गोपबंधु को विद्यार्थी जीवन से ही गीता आदि धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन का शौक था। साथ ही वह सभा-सोसाइटियों में भी भाग लिया करते थे यही उनके सार्वजनिक जीवन की शुरूआत थी।

कर्तव्य बोधिनी समिति का संगठन

कटक पहुंचने के कुछ समय बाद ही गोपबंधु ने "कर्तव्य बोधिनी समिति" का संगठन किया। इस समिति की बैठकों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर नियमित रूप से वाद-विवाद होता था, इसी दौरान गोपबंधु और उनके साथियों ने बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए एक स्वयं-सेवक दल का भी गठन किया। देश की समस्याओं की तरफ अधिक श्रम और समय लगाने के कारण गोपबंधु 1903 की बी.ए. परीक्षा में पास न हुए। बी. ए. की असफलता और अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार उन्हें साथ ही मिले। सन् 1904 में बी.ए. पास करने के बाद वह कानून और एम.ए. की कक्षाओं में भर्ती होने के लिए कलकत्ता चले गए। उस समय की "बी.ए. हुए, नौकर

हुए, पेंशन मिली और मर गए" की परिपाटी के विरुद्ध, गोपबंधु शिक्षा-प्राप्ति को नौकरी पाने का पासपोर्ट नहीं मानते थे, बल्कि समाज सेवा का एक साधन मानते थे। कलकत्ते में भी उन्होंने अपने आपको केवल किताबी पढ़ाई तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने देखा कि कलकत्ता आए हुए अधिकतर उड़िया लोग खाना बनाने और कुलीगीरी जैसे मामूली कामों में लगे हुए थे।

गोपबंधु नाइट स्कूल की स्थापना

गोपबंधु ने उनको ऊंचा उठाने का बीड़ा उठाया इस उद्देश्य से उन्होंने अनेक सभा-समितियों का संगठन किया। रात्रिकालीन पाठशालाएं भी चलाई। "गोपबंधु नाइट स्कूल" नामक विद्यालय आज भी कलकता में है जो कि कलकत्तावासी उड़ियाजनों के सामूहिक जीवन का आज भी केंद्र है। कानून की पढ़ाई के दौरान ही गोपबंधु प्रसिद्ध क्रांतिकारियों, जैसे खुदीराम बोस तथा शशिभूषण के संपर्क में भी आए और उनसे देशभक्ति और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का पाठ भी सीखा। गोपबंधु इस निश्चय पर पहुंचे कि लोगों में देशभक्ति की लौ जगाने के लिए समाज सेवा ही एकमात्र उपाय है।

गोपबंधु दास का पारिवारिक विवरण:

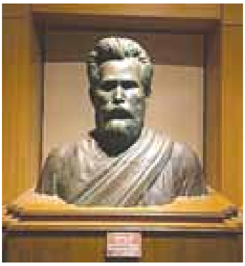

गोपबंधु ने 1906 में एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की, परन्तु कानून की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के समाचार के साथ ही उन्हें अपनी पत्नी के निधन का संदेश भी प्राप्त हुआ। पत्नी की मृत्यु के समय गोपबंधु केवल 28 वर्ष के थे। अपने बारह वर्ष के गृहस्थ जीवन में उनकी दो पुत्रियां और तीन पुत्र पैदा हुए। तीनों बेटे तो उनकी पत्नी के मरने से पहले ही मर गए। शेष केवल दो पुत्रियां ही रह गई। उनके माता-पिता, पत्नी, और सभी बेटों की मृत्यु ने उन्हें जीवन पथ में अकेला बना दिया था। दोनों पुत्रियों को अपने बड़े भाई की देख-रेख में छोड़कर उन्होंने अपना सारा जीवन समाज की सेवा में लगा दिया।

गोपबंधु दास की सामाजिक सेवा

गोपबंधु 1906 में कटक चले गए और वहां वकालत शुरू कर दी। उसी वर्ष अगस्त महीने में अनेक स्थानों में भारी बाढ़ आ गई। ब्राह्मणी, वैतरणी आदि नदियों ने भारी तबाही मचा दी। बाढ़ पीढ़ितों को तत्काल तो राहत पहुंचा दी जाती पर ये उपाय हर साल आने वाली तबाहियों के लिए स्थायी उपचार नहीं थे। इसलिए गोपबंधु ने "केंद्रीय उत्कल एसोसिएशन" नाम की संस्था बनाई जिसके अधिकतर सदस्य विद्यार्थी थे। इस संस्था में युवकों को शारीरिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं साहित्यिक शिक्षा दी जाती थी। बाढ़, रोग, अकाल आदि विपदाओं के समय यह संस्था राहत कार्यों में जुट जाती थी। उड़ीसा के विभिन्न भागों में हाई-स्कूलों में संस्था की सक्रिय शाखाएं स्थापित की गईं। यह संस्था अनेक वर्षो तक विद्यार्थियों की हलचलों व कार्यकलापों का केंद्र बनी रही। इस तरह गोपबंधु उड़िया युवकों के हृदय-सम्राट बन गए। सन् 1909 में गोपबंधु मयूरभंज रियासत के सरकारी वकील बनकर रियासत की राजधानी बारीपाड़ चले गए थे, वह वकालत से खूब पैसा कमा सकते थे, परंतु वह वादी-प्रतिवादियों

को समझा-बुझाकर उनमें मेल करा देते और मुकदमा लंबा न चलने देते। अदालतों से भ्रष्टाचार दूर करने की भी उन्होंने कोशिश की। इसी समय अपनी सामाजिक सेवाओं के कारण वह म्युनिसिपल कौंसिलर मनोनीत कर दिए गए। शिक्षा के क्षेत्र में भी गोपबंधु दास का योगदान उल्लेखनीय है। गोपबंधु ने घोषणा की, "हर एक व्यक्ति को शिक्षा-प्राप्ति के समान अधिकार हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश का लाभ उठाने का अधिकार सभी को समान रूप से है। केवल भवन और मेज-कुर्सियों को जमा कर देने से ही स्कूल नहीं बन जाता। उसके लिए सुरक्षित, सच्चे और लगन के पक्के, आदर्श अध्यापक भी चाहिए। आधुनिक शिक्षा पद्धति देश के नवयुवकों को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करने में असफल रही है। उन्हें उचित कला-कौशल और जीविकोपार्जन योग्य बना सकने वाली शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है उन्हें उद्योग और कृषि के साथ-साथ धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी दी जानी जरूरी है।"

यूनिवर्सल एजुकेशन लीग की स्थापना

उन्होंने यूनिवर्सल एजुकेशन लीग नामक संस्था का संगठन किया और सखी गोपाल में सत्यवादी विद्यालय की स्थापना की। रवि बाबू के "शांति निकेतन" के समान ही सत्यवादी विद्यालय भी समय पाकर एक महान और प्रसिद्ध शिक्षण केंद्र बन गया। कई एम.ए. पास प्रतिभाशाली व्यक्ति केवल 30 रु. मासिक लेकर यहां पढ़ाया करते थे। दुर्भाग्यवश राष्ट्रीय आंदोलन की बाढ़ इस संस्था को भी अपने साथ बहा ले गई परंतु इसका नाम उड़ीसा में अमर हो गया है। सन् 1917 में गोपबंधु बिहार-उड़ीसा लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गए। अब उन्होंने वकालत का काम छोड़ दिया। कौंसिल में उनके तर्कपूर्ण भाषणों का तथा उनकी लगन और सच्चाई का काफी प्रभाव पड़ता था। इसीलिए वह शिक्षा और समाज सेवा के कार्य में भी काफी सफल रहे। सरकार व अधिकारियों की सहायता और सहयोग भी उन्हें मिला।

गोपबंधु दास का राजनीतिक जीवन

गोपबंधु दास उड़ीसा में राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत थे। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने अनेक बार जेल की यात्राएँ कीं। 1920 की नागपुर कांग्रेस में उनके प्रस्ताव पर ही कांग्रेस ने भाषावार प्रांत बनाने की नीति को स्वीकार किया था। उड़ीसा राष्ट्रवाद के वे श्रेष्ठ पादरी बन गए थे तथा 1921 में उन्होंने उड़ीसा में 'असहयोग आंदोलन' की अगुवाई की। गोपबंधु 1921 में भारतीय कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में कूद पड़े और तब से वह पक्के कांग्रेसी हो गए। उन्हें दो वर्ष की कैद हुई। कांग्रेस ने, लाला लाजपत राय के सभापतित्व में 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में सरकार से पूर्ण असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया था। अतः उन्होंने भी उड़ीसा लेजिस्लेटिव कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया और उड़ीसा में पूरी तरह कांग्रेस के प्रचार में लग गए। उन्होंने उड़ीसा के हर जिले में कांग्रेस कमेटी का संगठन किया। उनके प्रचार और प्रयत्नों से हर जिले की हर तहसील थाने और कस्बे में कांग्रेस कमेटियां बन गई। गोपबंधु ने अपने सत्यवादी स्कूल को राष्ट्रीय स्कूल में बदल दिया जो बाद में स्वराज्य आंदोलन का गढ़ बन गया। गोपबंधु दास लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित 'सर्वेन्ट ऑफ दी पीपल्स सोसायटी' के भी सदस्य बने थे।

समाज पत्र का सम्पादन

गोपबंधु ने देखा कि उड़ीसा में कोई समाचारपत्र प्रकाशित नहीं होता है इसलिए उन्होंने "समाज" नामक पत्र का प्रारंभ किया। वह पत्र सारे उड़ीसा में बहुत ही लोकप्रिय हो गया साप्ताहिक रूप में यह चलाया गया था। लेकिन आज यह दैनिक बन चुका है। इस प्रकार गोपबंधु उड़ीसा में पत्रकारिता के भी जनक थे। 1930 में यह दैनिक अख़बार बन गया। अब गोपबन्धु सामाजिक सेवाओं के प्रति समर्पित हो गये।

लेख:

गोपबन्धु एक प्रसिद्ध लेखक और साहित्यकार भी थे। उन्होंने कुछ कविताएँ तथा गद्य लिखे, उनमें से निम्न थे-

* 'बन्दीर आत्मकथा'-एक कैदी की आत्मकथा
* 'अवकाश चिन्ता'-लेजर टाइम थोट्स
* 'कारा कविता'-जेल में लिखी कविताएँ
* 'नचिकेता उपाख्यान'-नचिकेता की कहानी
* धर्मपद
* गो माहात्मय

बचपन से ही गोपबंधु में कवित्व का लक्षण स्पष्ट भाव से देखा गया था। स्कूल में पढ़ते समय ही ये सुंदर कविताएँ लिखा करते थे। सरल और मर्मस्पर्शी भाषा में कविता लिखने की शैली उनसे ही आंरभ हुई। उड़िया सहित्य में वे एक नए युग के सृष्टा हुए, उसी युग का नाम "सत्यवादी" युग है। सरलता और राष्ट्रीयता इस युग की विशेषताएँ हैं। "अवकाश चिंता", "बंदीर आत्मकथा" और "धर्मपद" प्रभृति पुस्तकों में से प्रत्येक ग्रंथ एक एक उज्वल मणि है। "बंदीर आत्मकथा" जिस भाषा और शैली में लिखी गई है, उड़ियाभाषी उसे पढ़ते ही राष्ट्रीयता के भाव से अनुप्राणित हो उठते हैं। "धर्मपद" पुस्तक में "कोणार्क" मंदिर के निर्माण पर लिखे गए वर्णन को पढ़कर उड़िया लोग विशेष गौरव का अनुभव करते हैं। यद्यपि ये सब छोटी छोटी पुस्तकें हैं, तथापि इनका प्रभाव अनेक बृहत् काव्यों से भी अधिक है।

1913 या 1914 में, दास ने अपने स्कूल के परिसर से सत्यवादी नामक एक अल्पकालिक मासिक साहित्यिक पत्रिका के लिए संपादक के रूप में काम किया। इसके माध्यम से वे एक कवि बनने की अपनी बचपन की आकांक्षाओं को पूरा करने में सक्षम थे, जबकि नीलकंठ दास और गोदावरीश मिश्रा सहित स्कूल के कर्मचारियों के अन्य सदस्यों से भी योगदान मिला। दास ने निरक्षर होने के बावजूद पत्रकारिता को जनता को शिक्षित करने के साधन के रूप में देखा। उन्होंने शुरुआत में बेरहामपुर में प्रकाशित एक समाचार पत्र आशा, एक भूमिका संपादन स्वीकार किया, लेकिन इसे बहुत विवश पाया। इस प्रकार, 1919 में, उन्होंने स्कूल परिसर में द समाज नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र शुरू किया। यह साहित्यिक पत्रिका की तुलना में अधिक सफल रहा और 1927 में दैनिक प्रकाशन बन गया और अंतत: भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए एक महत्वपूर्ण मीडिया उपस्थिति बन गया। लेखन शैली जानबूझकर सरलीकृत थी। 1920 में कांग्रेस के एक सत्र में लाला लाजपत राय से मिलने के कुछ समय बाद दास को लोक सेवक मंडल

(जन समाज के सेवक) में शामिल होने के लिए राजी किया गया था और अखबार इसे बढ़ावा देने का एक साधन बन गया, हालांकि स्वतंत्र रूप से संचालित किया गया था। उन्होंने अपनी मृत्यु तक संपादक के रूप में कार्य किया, जिस समय उन्होंने इसे सोसाइटी को वसीयत दी।

बन्दीर आत्मकथा कविता की रचना

सत्याग्रह के सिलसिले में 26 जून 1922 को मद्रक में धारा 144 की अवज्ञा के कारण वह पकड़े गए और उन्हें दो वर्ष की कैद की सजा सुना दी गई। "बन्दीर आत्मकथा" नामक कविता इन्हीं कारावास के दिनों में लिखी गई। जेल में रहने के इन दो वर्षों में गोपबंधु द्वारा चालित बहुत से कार्य शिथिल पड़ गए थे। उनके प्रिय सत्यवादी स्कूल की मान्यता रद्द हो गई और अनेक विद्यार्थी और अध्यापक स्कूल छोड़कर चले गए और अंत में धन के अभाव में इसे 1926 में बंद कर देना पड़ा। सन् 1925 की वर्षा ऋतु में, जून से अगस्त तीन माह तक पुरी जिले में भीषण बाढ़ आई। गोपबंधु बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए गांवों में दौड़ते फिरे। उन्होंने महात्मा गांधी को उड़ीसा के इन पीड़ितों की सहायता के लिए लिखा। श्री सी. एफ. एंड्रुज भी इसी दौरान बाढ़-पीड़ितों की दशा का निरीक्षण करने उड़ीसा आए।

सन् 1926 में कौंसिल के फिर चुनाव हुए और बहुमत के विचारों का आदर करते हुए, स्वयं कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध होने पर भी उन्हें इस चुनाव का संचालन करना पड़ा। चुनाव समाप्त भी न हो पाए थे कि अगस्त में फिर बाढ़ ने कटक, पुरी और बालेश्वर जिलों में आतंक और विपदा खड़ी कर दी। गोपबंधु उन दिनों अस्वस्थ रहने लगे थे। इस सबके बावजूद भी वह जी-जान से बाढ़-पीड़ितों की सेवा में लग गए। 1927 में वैतरणी की बाढ़ से त्रस्त लोगों की सहायता के लिए भी स्वयंसेवकों का एक जत्था भेजा। इसी बीच उनके बड़े भाई का स्वर्गवास हो गया जिन्होंने गोपबंधु को पुत्र समान पाला था। इस घटना से उन्हें बड़ा धक्का लगा। परंतु जन-सेवा के कार्य में वह जी-जान से लगे रहे। अप्रैल, 1928 में वह सर्वेन्ट आफ दि पीपल्स सोसाइटी की वार्षिक बैठक में भाग लेने लाहौर गए। वहीं उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। उन्हें टाइफायड हो गया। पलंग पर पड़े बीमारी की हालत में ही उन्हें समाचार मिला कि "समाज" पत्रिका के संपादक की हैसियत से उनके विरुद्ध मानहानि का एक मुकदमा चलाया गया है।

गोपबंधु दास की मृत्यु

गोपबंधु ने अपना सारा जीवन, स्वास्थ्य, संपत्ति और समय, जनता की सेवा में लगा दिया था, फिर भी उनके विरोधी उन पर अनेक बेबुनियाद आरोप लगाने से नहीं हिचके थे। यहां तक कि उन पर सार्वजनिक धन के गबन का आरोप लगाया गया। इस निर्दय आघात के केवल चार माह पश्चात् 17 जून 1928 गोपबंधु का प्राणांत हो गया।

****

राजकुमार दास
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, भुवनेश्वर

कविराज बाँकीदास आसिया

"आयो इंगरेज मूलक रै ऊपर, आहँस लीधा खैंचि उरा।
धनियाँ मरै न दिधी धरती, धणीयां ऊभा गई धरा।"

कविराज बाँकीदास आसिया का जन्म 1771 ई. में जोधपुर राज्य के पंचपद्रा परगने के भड़ियावास गाँव में आसिया वंश के एक चारण परिवार में हुआ। रामपुर के ठाकुर अर्जुनसिंह ने बांकीदास की शिक्षा का प्रबन्ध जोधपुर में किया। यहाँ बांकीदास जोधपुर के महाराजा मानसिंह के संपर्क में आए, मानसिंह ने इनकी विद्वता से प्रसन्न होकर इन्हे अपने दरबार में रख लिया। यह महाराजा मानसिंह के राजकवि और काव्य गुरु थे। बांकीदास डिंगल, पिंगल, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे तथा डिंगल भाषा के श्रेष्ठतम कवि थे। आशु कवि के रूप में इनकी प्रसिद्धि पूरे राजपुताना में थी। वे इतिहास को वार्ता द्वारा व्यक्त करने में प्रवीण थे।

"अंग्रेज नामक शैतान हमारे देश पर चढ़ आया है। देश रूपी शरीर की सारी चेतना को उसने अपने खूनी अधरों से सोख लिया है। इसके पहले धरती के स्वामियों ने मर कर भी धरती को दुश्मन के हवाले नहीं किया था और आज यह स्थिति आ गई है कि धरती के स्वामी जिंदा है और धरती उनके हाथ से चली गई।"

इन्होंने 36 ग्रंथों की रचना की जिनमें से "बांकीदास री ख्यात" सर्वप्रमुख रचना तथा जिनमें सूर छतीसी, गंगालहरी, वीर विनोद आदि प्रमुख है। "बांकीदास री ख्यात" ख्यात लेखन परंपरा से हटकर लिखा गया है। यह राजस्थान के इतिहास से संबंधित घटनाओं पर लिखा गया 2000 फुटकर टिप्पणियों का संग्रह है तथा राजस्थान के इतिहास लेखन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। नागरी प्रचारणी काशी ने बांकीदास ग्रंथावली का प्रकाशन किया है।

उनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

मोहा मर्दाना, अन्योक्ति पञ्चाशिका, कृपण दर्पण, मवादिया मिजाज, चुगल मिखा, चपेतिका, वैश वार्ता, विदुर बतीसी, दुहा अयासजी महाराज देवनाथ रा, झमला ठाकुरन, रूपसिंह जी, सन्तोष बावनी, धवल पचीसी, नीति मंजरी, गंगालहरी, कविराज बांकीदास को डिंगल परंपरा के अंतिम महान, पारंपरिक कवियों में से एक माना जाता है और पहले 'आधुनिक' कवियों में से एक माना जाता है जिन्होंने ब्रिटिश शासन विरोधी भावनाओं को व्यक्त करने के लिय मध्ययुगीन मार्शल आदर्शो को नियोजित करते हुए राष्ट्रवादी भावनाओं को आवाज दी थी। बांकीदास ने मुगल शासन के पतन और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सैन्य और राजनीतिक महत्वकांक्षाओं की प्रगति देखी, जिसका उद्देश्य राजपूताना के बड़े हिस्से पर शासन करना था। राज्याश्रय में होते हुए भी इन्होंने अपने काव्य को सिर्फ यशोगान तक ही समिति नहीं रखा, अपितु समय समय पर पथ प्रदर्शन का भी कार्य किया।

"उतन विलायत किलकता कांनपुर आविया,
ममोई लंक मदरास मेला।
यलम धुर वहण अंगरेज दारण यला।
भरतपुर ऊपरा हुआ भेला।"

कवि 'गीत भरतपुर रौ' में कहते हैं कि अंग्रेज जिनकी जन्म भूमि विलायत है, उन्होंने कलकत्ता और कानपुर में आकर अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया है। बंबई, मद्रास और ठेठ दक्षिण तक उनका जाल फैल गया है। उनके पास बहुत तेज दिमाग एवं भारी हुनर है जिससे वो संपूर्ण पृथ्वी पर कब्जा करने की नियत रखते हैं।

1857 ई. के विद्रोह के 52 साल पहले यानि 1805 ई. में कविराज ने 'चेतावनी रो गीत' (चेतावनी का गीत) लिखा और राजस्थान के राजाओं से अंग्रेजों के षड्यंत्रों से बचने का आह्वान किया था। जोधपुर के कविराज होने के बावजूद भरतपुर के जाट शासकों के अदम्य साहस और बेजोड़ वीरता की उनके द्वारा निष्पक्ष और निडरता से प्रशंसा की गई।

1805 में कविराज बांकीदास ने अपनी बहुत लोकप्रिय कविता "आयो अंगरेज मुल्क रे ऊपर" में अंग्रेजों के खिलाफ बहादुरी का प्रदर्शन करने के लिए हिंदुओं और मुसलमानों को एक होने को कहा। स्वतंत्र्य भाव से ओतप्रोत कवि की वाणी ने विदेशी दासता से लोहा लेने वालों का उत्साहवर्धन करते हुए मुक्त कंठ से उनके यश का गान किया।

बांकीदास जी के काव्य प्रयासों को भारतीय साहित्य में विदेशी दासता के विरुद्ध प्रथम साहित्यिक विद्रोह कहा जा सकता है। कवि ने राजा महाराजाओं एवं आमजन में स्वातंत्र्य चेतना भरने एवं जाग्रत करने हेतु अपने दायित्व का निर्वाह क्रमशः अपने तीन गीतों के माध्यम से किया पहला गीत 'गीत चेतावणी रौ' में कवि ने चेतवानी देते हुए सावधान होने का आह्वान किया है कि किस प्रकार व्यापार के लिए आए अंग्रेज यहाँ के शासक बन रहे हैं। दूसरे गीत 'गीत भरतपुर रौ' में अंग्रेजों से लड़ने एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले राज्य एवं राजाओं का मनोबल बढ़ाते हुए उनकी प्रशंसा की है, साथ ही उन राज्यों से प्रेरणा लेने का आह्वान किया है। तीसरे गीत 'गीत निंबावता रै महंत रौ' में राष्ट्र से विश्वासघात करने वालों के दोगले चरित्र को सबके सामने लाते हुए कठोर शब्दों में उनके इस देशद्रोही कृत्य की निंदा की है।

कविराज बांकीदासजी, एक क्रांतिदृष्टा एवं सिद्ध हस्त कवि थे। उनकी उपरोक्त भविष्यवाणी को सत्य होने में 142 वर्ष लगे, जब भारतवर्ष अंततः 15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश सत्ता की पराधीनता से पूर्ण स्वतंत्र हुआ। 19 जुलाई 1833 को जोधपुर में बांकीदास की मृत्यु हो गई। भारतीय इतिहास में कवि बांकीदास ने विदेशी दासता के विरुद्ध सर्वप्रथम साहित्य विद्रोह कर अपने काव्यधर्म का निर्वाह किया और जो परंपरा स्थापित की वह अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने तक अनवरत चलती रही। कवि की ओजस्वी वाणी ने ही देश के नागरिकों को जाग्रत कर अंग्रेजों से लोहा लेने को प्रेरित किया। कवि बांकीदास जी का राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत साहित्यिक अवदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

****

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, जयपुर

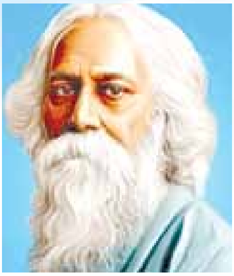

रवीन्द्रनाथ टैगोर

जब शब्दों की सीमा सीमित हो और उन सीमित शब्दों में आपको एक ऐसे अद्‌भुत व्यक्ति का जिक्र करना हो, जिसका व्यक्तित्व असीमित गुणों से भरा हो, तो यह अपने आप में एक बड़ी चुनौती बन जाती है। आज हम ऐसे ही एक महामानव की बात करने वाले हैं। उनका व्यक्तित्व ऐसे अनंत गुणों से पूर्ण था, जिसे दीर्घकालीन तपस्या के बाद मनुष्य प्राप्त करता है। हम बात कर रहे हैं- 'भारत और बांग्लादेश जैसे दो देशों के राष्ट्रगान के रचयिता, बांग्ला साहित्याकाश के शक्तिपुंज, नोबल पुरस्कार विजेता 'रवीन्द्रनाथ टैगोर जी की।'

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 07 मई 1861 को कोलकाता के चितपुर रोड के जोड़ासांको नामक मोहल्ले में हुआ था। रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और माता का नाम शारदा देवी था। रवींद्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्रनाथ जी के चौदहवें पुत्र थे। रवीन्द्रनाथ जी एक अति समृद्ध परिवार से आते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के दादा का नाम द्वारकानाथ ठाकुर था। लोग उनके ठाठ-बाट और दिल खोलकर दान देने की प्रवृत्ति के कारण उन्हें प्रिंस कहकर संबोधित करते थे। उन्होंने भारत की राजधानी में पहले आधुनिक बैंक की स्थापना की थी, जिसे 'द यूनियन बैंक' के नाम से जाना जाता था। एक ओर जहाँ रवीन्द्रनाथ जी के पितामह समाज में प्रिंस के नाम से विख्यात थे, वहीं दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ जी के पिता देवेन्द्रनाथ जी लोगों के बीच एक 'महर्षि' के रूप में प्रसिद्ध थे। रवीन्द्रनाथ जी के पिता राजा राममोहन रॉय के नैतिक विचारों से अत्यंत प्रभावित थे तथा उन्हीं के मार्ग पर चलते हुए, लोक कल्याण एवं समाज सुधार के कार्यों को आगे बढ़ाने में लगे हुए थे। उनके व्यक्तित्व का रवीन्द्रनाथ जी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

यद्यपि रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ था, परन्तु उनके घर का जीवन स्तर अत्यंत सरल और सामान्य था। बालक रवीन्द्र के खाने-पीने, कपड़ों आदि की व्यवस्था लगभग एक सामान्य मध्यम वर्गीय बालक के सादृश्य की जाती थी। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि उनके पिता महर्षि सादे जीवन में विश्वास करते थे। वे मानते थे कि 'बने बनाए खिलौनों से बच्चों की कल्पना शक्ति विकसित नहीं हो पाती बल्कि कुंठित हो जाती है।' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने बाल्यकाल को याद करते हुए अपनी आत्मकथा में बताया है कि "हमारे बाल्यकाल के समय प्रायः बहुतेरों को शान-शौकत नहीं मालूम थी। आज की अपेक्षा उस समय का रहन-सहन प्रायः बहुत सादा था।.... हमारे भोजन में प्रायः पकवान बिलकुल नहीं होते थे और हमारे कपड़ों की सूची यदि देखी जाए तो आजकल के बच्चे नाक-भौंह सिकोड़े बिना न रहेंगे। दस वर्ष की उम्र होने के पहले किसी भी कारण से हमने मोजे और बूट नहीं पहने।"

परिवार में चौदह संतानों की माँ होने के कारण उनकी माँ का अपने छोटे बेटे

रवीन्द्र पर बहुत अधिक ध्यान देना संभव नहीं था। चार या पाँच वर्ष की आयु में ही उन्हें उनके माँ के आवास से निकालकर नौकरों की देख-रेख में छोड़ दिया गया था। बालक रवीन्द्र का नौकरों के साथ रहने का जीवन अनुभव अत्यंत कड़वा रहा। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने संस्मरणों में कई जगह इसका वर्णन किया है। उन्होंने स्वयं अपना अनुभव साझा करते हुए कहा है कि "हमें नौकरों की सत्ता में रहना पड़ता था। अपना कष्ट बचाने के लिए उन लोगों ने हमारा नैसर्गिक स्वेच्छाचार का अधिकार प्रायः अपनी मुट्ठी में ले रखा था।.... यह एक स्थान नियत कर वहाँ मुझे बैठा देता था और मेरे आस-पास खड़िया से रेखा खींचकर बड़े गंम्भीर स्वर में उंगली दिखाकर धमकाता था कि खबरदार इस लकीर से बाहर मत जाना।"

कवि को जब उनके नौकरों द्वारा उनके ही घर में एक कैदी की तरह रखा जाता था तब बालक रवीन्द्र अपने कमरे की खिड़की से घंटों बाहर के तालाब पर पड़ती पेड़ों की परछाइयों, झाड़ियों, आकाश में उड़ते पक्षियों आदि को एक टक देखते रहते थे। इस प्रकार बचपन से प्रकृति के साथ रवीन्द्रनाथ का एक गहरा रिश्ता जुड़ने लगा था, जिसकी अभिव्यक्ति आगे चलकर उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। कवि वर्षों बाद अपने बचपन के सहचर, उस प्रकृति को याद करते हुए लिखते हैं:

"तुम्हारी शाखाओं से झूलती तुम्हारी उलझी जटाएं
ओ प्राचीन वट वृक्ष
दिन रात इस तरह खड़े रहते थे तुम
जैसे कोई समाधीस्थ ऋषि
क्या तुम्हें उस बालक की याद है
जिसकी कल्पना तुम्हारी परछाई के साथ खेला करती थी।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। इसका कारण था कि उनके पिता ने घर का वातावरण ही विद्यालय के समान बनाकर रखा हुआ था। बालक रवीन्द्र जब बचपन में बच्चों को बग्घी पर बैठकर स्कूल जाते देखते तो उनका भी स्कूल जाने का बहुत मन करता। स्कूल जाने के लिए एक बार बहुत जिद करने पर उनके शिक्षक ने उन्हें एक थप्पड़ लगाते हुए कहा था कि 'आज तुम स्कूल जाने के लिए हंगामा मचा रहे हो, बाद में स्कूल छोड़ने के लिए तुम्हें आसमान सर पर उठाना पडेगा।' पर बालक रवीन्द्र अपने जिद पर अड़े रहे, लेकिन बाद में उन्होंने पाया कि यह उनके जीवन की सबसे सत्य भविष्यवाणी थी। स्कूल में रवीन्द्र ने जिद करके दाखिला तो ले लिया था पर अब स्कूल उन्हें जेल से कम नहीं लगता था। उनमें हमेशा स्कूल से निकल भागने की धुन सवार रहती थी। तीन-तीन स्कूल आजमाने के बाद रवीन्द्र ने स्कूल की पढ़ाई को तिलांजलि दे दी। घरवालों ने बहुत खीजकर कहा "यह लड़का दुनिया में कुछ नहीं कर पाएगा।" इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के स्कूली अनुभव कुछ खास नहीं रहे। स्कूल के बंद कमरे में जबरदस्ती पढ़ाई करना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था, लेकिन रवीन्द्र का मन पढ़ाई में बहुत रमता था। वैसे भी उनके घर का वातावरण विश्वविद्यालय की तरह ही था, जहाँ दिन भर पढ़ाई-लिखाई चलता रहता था। आगे चलकर रवीन्द्रनाथ टैगोर

1878 में अपने बड़े भाई सत्येंद्र नाथ टैगोर के साथ इंग्लैंड कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गए, लेकिन 1880 में वो बिना डिग्री प्राप्त किये ही वापस आ गए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर को बचपन से ही कविता और कहानियां लिखने का शौक था। उन्होंने मात्र आठ वर्ष की उम्र में अपनी पहली कविता लिखी थी, जिसे पढ़कर उनके चचेरे भाई किशोर ने यह सलाह दी कि वे कविताएं ही लिखा करें। उनके संगी साथियों ने पहले इसे शिशु सुलभ चमत्कार का प्रदर्शन कहा, किन्तु जब उन्होंने उनकी कविताओं का पाठ किया तो उनके उम्र से बड़े साथियों ने भी कहा कि सचमुच इस लडके में लिखने की प्रतिभा है। इस प्रकार कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने सृजन कर्म में आगे बढ़ने लगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित विपुल साहित्य भण्डार की बात करें तो केवल कविता विधा में ही उन्होंने एक हजार से अधिक कविताएँ लिखी हैं तथा इसी के साथ ही दो हजार से भी अधिक गीतों की रचना की है। कविता और गीत की ही तरह रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गद्य साहित्य में भी अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है। उनकी कहानियों ने भारतीय कथा साहित्य के लिए नए मापदंड निर्मित किए हैं। आज भी रवीन्द्रनाथ जी की कहानियाँ नवीन, प्रकाशमय एवं पूर्ण रूप से जीवंत दिखाई देती है। हाल ही में अनुराग बासु ने "स्टोरीज ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर" नामक प्रोग्राम के माध्यम से उनकी कहानियों का फिल्मांकन किया था, जो यह दर्शाता है कि आज भी रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित कहानियाँ उतनी ही सार्थक और ज्ञानवर्धक है। कहानी के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कई उपन्यास भी लिखें, जिसमें अपने समय के ज्वलंत समस्याओं का चित्रात्मक चित्रण किया है। टैगोर के उल्लेखनीय उपन्यासों में शेषेर कविता, घोरे बायरे, चतुरंग, चार ओध्याय, नौका डूबी और गौरा विशेष चर्चित है। गौरा उपन्यास तो आज भी उपन्यास विद्या का अनूठा उदहारण माना जाता है। रवीन्द्रनाथ जी के अनेक कहानियों एवं उपन्यासों पर फिल्में बनाई गई हैं। रवीन्द्रनाथ के कहानियों एवं उपन्यासों पर निर्मित फिल्मों की संख्यां 220 से अधिक है। मूक फिल्मों के दौरान भी उनकी कहानियों पर कई मूक फिल्में बनी, जिनके नाम है श्मानभंजोन, बोलिदान, बिचारोक, डालिया, गिरीबाला और नौका डूबी। उनकी कहानियों पर निर्मित सवाक् फिल्मों के नाम हैं-चिरकुमार सभा, नोटिर पूजा, चोखेर बाली, गोरा, शेषेर कविता, तीन कन्या, अथिति, विसर्जन, नौका डूबी, मेलंचा, रविवार, दीदी आदि। 1932 में बनी नोटिर पूजा की कथा और पटकथा लिखने के साथ-साथ उसका निर्देशन भी गुरुदेव ने ही किया था। इसमें शांतिनिकेतन के छात्र-छात्राओं ने अभिनय किया था और इसका संगीत निर्देशन किया था-धीरेन्द्रनाथ टैगोर ने। इसके अलावा विभिन्न भाषाओं में निर्मित सैकड़ों ऐसी फिल्में भी हैं जिनमें रवीन्द्रनाथ जी द्वारा निर्मित गीतों की धुनों से प्रेरणा लेकर इन फिल्मों का संगीत तैयार किया गया है। सलिल चौधरी, एस डी बर्मन, आर डी बर्मन आदि ने रवीन्द्रनाथ से प्रेरणा लेकर अपनी कई संगीतों का सृजन किया है। हिंदी फिल्मों की बात करें तो 'अमर प्रेम', 'अभिमान', 'आनंद', 1942 ए लव स्टोरी आदि नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। अभिमान फिल्म का प्रसिद्ध गीत 'तेरे मेरे मिलन की ये रैना' रवीन्द्रनाथ जी के 'ज्योति तारे नाई चिन्हीं' पर आधारित है। इसी प्रकार याराना फिल्म का 'छूकर मेरे मन को किया तूने क्या इशारा' गीत "तुम्हार भेलो शुरू आमार

भीलो सारा" पर आधारित है। इस प्रकार कविता, कहानी, उपन्यास, गीत लिखने एवं संगीत सृजित करने तक ही रवीन्द्रनाथ की बहुआयामी प्रतिभा सीमित नहीं रही। नाटकों की रचना और मंचन में भी वे अग्रणी रहें तथा अपने जीवन काल में अनेक सुप्रसिद्ध नाटकों की रचना की जिसमें विसर्जन, डाकघर, चंडालिका, रक्तकरबी, राजा आदि को टैगोर की महान रचनाएँ मानी जाती हैं। इतना ही नहीं टैगोर ने आध्यात्म, इतिहास, साहित्य, संस्कृति, समाज, राष्ट्र और वैश्विक संबंध जैसे अनेक विषयों पर गंभीर निबंध लिखे। उनके यात्रा संस्मरण, निबंध एवं व्याख्यान यूरोप यात्रिर पत्र, मानुषेर धर्म आदि पुस्तकों में संकलित है।

टैगोर की प्रतिभा का परिचय हमें केवल उनके साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त नहीं होता बल्कि इसके साथ ही संगीत और चित्रकला में भी उन्होंने अपनी बहुआयामी प्रतिभा का दिग्दर्शन करवाया है। संगीत के क्षेत्र में उनकी उपलब्धि का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि संगीत के क्षेत्र में उनके नाम से एक अलग संगीत शैली प्रचलित हो गई, जिसे रवीन्द्र संगीत के नाम जाना जाता है। आज भी बंगाल के घर-घर में इस रवीन्द्र संगीत को बड़े ही प्रेम और आदर के साथ सूना और सिखाया जाता है। इन सब उपलब्धियों के उपरांत भी टैगोर जैसे अप्रतिम प्रतिभा के धनि व्यक्ति केवल इतने में ही कहाँ रुकने वाले थे, अपने 67 वर्ष की आयु में उन्होंने पूर्ण रूप से चित्र जगत में कदम रखा और इसमें नवीन प्रयोग करते हुए चित्रकला की स्वतंत्र शैली विकसित कर डाली। उन्होंने इतने कम समय में ही ढाई हजार चित्राकृतियों को चित्रित कर चित्र जगत को प्रकाशमय कर दिया। टैगोर को भारतीय आधुनिक कला के अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। टैगोर की प्रतिभा साहित्य और कला जगत तक ही सीमित नहीं रही और आगे चलकर उन्होंने शिक्षा जगत में नतून प्रयोग करते हुए 1901 में शांतिनिकेतन नामक शैक्षणिक संस्थान की स्थापना की। इस शैक्षणिक संस्थान में लोगों को किसी कक्षा में बंद रहकर नहीं, बल्कि उन्मुक्त प्राकृतिक वातावरण में पेड़ों के नीचे स्वच्छंद रूप से सोचने एवं पढ़ने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। आज भी 'विश्व भारती' (शांतिनिकेतन) में इसी प्रकार प्राचीन भारतीय मूल्यों एवं परम्पराओं के अनुरूप स्वच्छंद प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा प्रदान की जाती है।

इस प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर की बहुआयामी प्रतिभा हमें कदम-कदम पर बार-बार आश्चर्यचकित करती है। किसी एक ही व्यक्ति में इतने सारे गुणों का एक साथ होना और प्रत्येक क्षेत्र में खुद को श्रेष्ठ साबित करके दिखाना, किसी आम इंसान की बात नहीं है। यही कारण था कि हमने प्रारम्भ में ही उन्हें महामानव कहकर सम्बोधित किया था। रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत के एक ऐसे अमूल्य रत्न है, जिन पर माँ सरस्वती की विशेष कृपा रही है।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में ही कहा था कि जब शब्दों की सीमा सीमित हो और उन सीमित शब्दों में आपको एक ऐसे अद्‌भुत व्यक्ति का जिक्र करना हो, जिसका व्यक्तित्व असीमिति गुणों से भरा हो, तो चाहे हम कितना भी प्रयास करें, बहुत कुछ अधूरा रह ही जाता है। रवीन्द्रनाथ जी के व्यक्तित्व के समान ही उनका जीवन वृत्तांत भी अत्यंत वृहद् एवं अभूतपूर्व है। यही कारण है कि इस अंश में रवीन्द्रनाथ जी के जीवन परिचय

एवं रचनाओं के संक्षिप्त परिचय से ही हमें संतोष करना पड़ रहा है। कवि रवीन्द्रनाथ जी का विवाह, उनके बच्चे, उनकी पत्नी मृणालिनी देवी राय चौधरी का आकस्मिक निधन, रवीन्द्रनाथ द्वारा पत्नी के निधन के उपरांत बच्चों को माँ और बाप बनकर उनका पालन पोषण करना, अपने परिजनों एवं आत्मीय लोगों की मृत्यु और यहाँ तक की अपने बच्चों तक की मृत्यु होते अपनी आँखों से देखना और आगे चलकर इस पीड़ा का विरेचन अपनी रचनाओं के माध्यम से करना, गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद का गुम हो जाना और इस कृति को नोबल पुरस्कार मिलने तक सफर, भारत के राष्ट्रगान 'जन गण मन' और बांग्लादेश के राष्ट्रगान 'आमार सोनार बांग्ला' का लिखा जाना तथा श्रीलंका का राष्ट्रगीत 'श्रीलंका मथा' का भी टैगोर की कविताओं की प्रेरित होना, शांतिनिकेतन के स्थापना के स्वप्न को साकार करना, स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान, चित्रकार के रूप में रवीन्द्रनाथ जी की कहानी और ना जाने ऐसे कितने ही रवीन्द्रनाथ के जीवन के पहलू हैं जो अनछुए ही रह गए हैं। शायद रवीन्द्रनाथ टैगोर के व्यक्तित्व की यही विशालता उन्हें "रवीन्द्रनाथ टैगोर" बनाता है।

75 वर्ष की आयु में रवीन्द्रनाथ जी तबियत धीरे-धीरे बिगड़ने लगी। वे कभी-कभी कहते थे- अब संसार से विदा लेने का समय निकट आ गया है। अत: अब उनकी इच्छा होती थी कि वह जमींदारी से जुड़े मित्रों से अंतिम बार मिलें। चार दिन पाटीसर में अपनी प्रजा, किसानों के साथ रहकर रवीन्द्र भरे कण्ठ से वापस शांतिनिकेतन लौट आये। यही उनके साथ उनका अंतिम मिलन था। एक दिन शाम को लोगों से बात करते हुए वे बेहोश हो गए। कलकत्ता से कई विख्यात चिकित्सक आए और काफी प्रयासों के पश्चात दो दिन बाद उनको होश आया। इसके बाद वृद्धावस्था के कारण उनका स्वास्थ दिन-प्रतिदिन गिरता गया। रक्षाबंधन की पूर्णिमा को पूरे दिन वे बेहोश रहे। दूसरे दिन आँखे खोली, अपने आस पास बैठे सभी जनों की ओर एक बार देखा, मानो वे अंतिम विदा लेना चाह रहे हों। स्वच्छ धवल धारण किए रवीन्द्रनाथ शय्या पर लेटे थे, ब्रह्म पद्धति के अनुसार ब्रह्म संगीत के गीत गाये जाने लगे। एक भक्त महिला ने उनके प्रिय पुष्प हरसिंगार की अंजलि अर्पित की। महामहोपाध्याय विधुशेखर शास्त्री मंत्रोच्चार करने लगे। इसके बाद रवीन्द्रनाथ जी की बंद आँखे फिर नहीं खुली। उस समय उनके मुख पर जो प्रकाशित आभा थी, जो प्रसन्नता था, वह वर्णनातीत है। चारो तरफ अपार शांति फैल चुकी थी। वे अब अपार शान्ति के सागर की नौका विहार पर निकल चुके थे। गुरूवार 07 अगस्त को उनकी आत्मा शांति के महासागर में विलीन हो गई। इस प्रकार एक उज्जवल नक्षत्र इस संसार को बिलखता छोड़कर असीम आकाश में पहुँच गया।

****

सूरज प्रसाद साव
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, कोलकाता (उत्तर)

अंबिकागिरी रायचौधरी

(1885-1967)

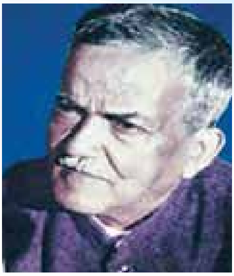

एक असमिया कवि, गीतकार, गायक, उम्दा गद्य लेखक, समाचार कार्यकर्ता, पत्रिका संपादक, देशभक्त, सामाजिक कार्यकर्ता और भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्हें 'असम केसरी' के नाम से जाना जाता है। वे 1950 में असम साहित्य सभा के अध्यक्ष चुने गए थे। रायचौधरी जी का जन्म 1885 में बारपेटा के प्रसिद्ध रायचौधरी परिवार में हुआ था। उनके पिता कृष्णराम रायचौधरी और माता देविका देवी थीं। बारपेटा में अपनी प्राथमिक शिक्षा के बाद, उन्होंने गुवाहाटी के हाई इंग्लिश स्कूल की आठवीं कक्षा में पढ़ाई की। फिर वे 1904-05 में स्वदेशी आंदोलन और सामाजिक विकास कार्य में शामिल हुए। इस अवधि के दौरान एक ब्रिटिश विपक्षी अराजकतावादी टीम का गठन किया। नतीजतन, ब्रिटिश सरकार ने 1908 से 1915 तक बारपेटा में अंबिकागिरी पर कब्जा कर लिया।

रायचौधरी जी एक कवि और नाटककार थे। वे **'असम सोंगरोखिनी शोभा'** (असम संरक्षण परिषद) और **'अक्षम जातियो मोहशोभा'** के संस्थापक थे। 1915 में रायचौधरी डिब्रूगढ़ गए और रेलवे विभाग के एक टाइपिस्ट, संगीत शिक्षक आदि के साथ- साथ हरेकृष्ण दास के साथ साहित्यिक पत्रिका **"असम बांधवा"** के साहित्यिक संपादक के रूप में काम किया। बाद के दिनों में, उनकी अधिकांश सामाजिक और राजनीतिक सोच **"चेतना"** में एक संपादकीय के रूप में प्रकाशित हुई, जिसे उन्होंने स्वयं प्रकाशित किया था। 1930 के आंदोलन में रायचौधरी को जेल में डाल दिया गया। उन्हें उस समय कांग्रेस के संगठनात्मक कार्यों के लिए 'डिटेक्टर' नियुक्त किया गया था। राजनीतिक पक्ष में, वह महात्मा गांधी के एक बहुत ही देशभक्त अनुयायी बन गए। असहयोग आंदोलन के दौरान जेल में दी गई सजा के अपने अनुभव में, उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के बारे में ऐसे गीतों की रचना की, जिससे अन्य सेनानियों को बहुत समर्थन मिला। स्वतंत्रता संग्राम के वे गीत है-

तोई भंगिबो लागिबो शिल
धार झारू धर भाई
की देखेबी भाई करगर
अर्थात
आपको चट्टान को तोड़ना होगा
झाड़ू पकड़ो भाई
जेल का डर क्या दिखाओगे

रायचौधरी जी ने स्वयं **'स्वदेशी किनोक संघ'** खोलकर और **'मायाबिनी केमिकल वर्क्स'** नामक एक व्यावसायिक कंपनी की स्थापना करके असमिया समाज को आर्थिक रूप से आत्म-स्थापना का मार्ग दिखाने का कार्य किया। उन्होंने **'देका देकारिर वेद', 'आहुति'** जैसी पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। इसके अलावा उनकी कई कविताएं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

रायचौधरी जी ने 1915 में **'तुमी'** और 1916 में **'बीना'** नामक काव्य पुस्तकें प्रकाशित की। 1918 में, चंद्रनाथ शर्मा के सहयोग से, उन्होंने 'चेतना' नामक एक मासिक पत्रिका निकाली। उन्होंने 'चेतना' के लेखन में स्वतंत्रता आंदोलन की चर्चा की। उन्होंने "बंदिनी भारत" नाम का एक देशभक्ति नाटक लिखा, जिसकी स्क्रिप्ट को अंग्रेजों ने इंटरसेप्ट किया था। जिसके बाद रायचौधरी जी को 1915 तक लगभग 8 वर्षों तक पुलिस की निगरानी में रखा गया। 1921 के असहयोग आंदोलन के दौरान, उन्होंने जेल में रहते हुए कई राष्ट्रवादी गीतों की रचना की। अंग्रेजी अनुवाद को 'सॉन्‍स ऑफ द सेल' के रूप में वापस प्रकट किया गया था। रायचौधरी जी की कविता में दो मुख्य स्वर सुनाई देते हैं। एक है दृश्य राष्ट्रवाद की आवाज और दूसरी है 'तुमी' और 'बीना' में रहस्य का कोमल स्वर। 'तुमी' कविता प्रिय शारीरिक आकर्षक सुंदरता से शुरू होती है और अंत में विश्व की वैश्विक सुंदरता और अदम्य सुंदरता के साथ समाप्त होती है। उनकी राष्ट्रवादी कविताओं में अत्याचारों का तीखा विरोध है और जीवन की लड़ाई के साथ आगे बढ़ने के लिए बड़े आह्वान हैं। कवि एक ऐसे जीवन की कामना करता है जिसमें मनुष्य सभी पाखंड और नीचता को दूर करके अपना विकास कर सके। वह 'डेका असोम' के संपादक भी थे, जो असमिया पत्रिका थी।

रायचौधरी जी को उनके तेजतर्रार राष्ट्रवादी चरित्र के कारण **'असम केसर'** (असम का शेर) के रूप में जाना जाता है। वह 1950 में असम साहित्य सभा के अध्यक्ष थे। 1965 में उन्होंने **साहित्य अकादमी पुरस्कार** से समानित किया गया। असम साहित्य सभा द्वारा प्रस्तुत 'अम्बिकागिरी रायचौधरी पुरस्कार' उन्हीं के नाम पर रखा गया है। असम केसरी

अंबिकागिरी का 82 वर्ष की आयु में 2 जनवरी 1957 को निधन हो गया।

****

चेतना शर्मा
प्रबंधक (राजभाषा)
अंचल कार्यालय आसनसोल

विनायक दमोदार सावरकर

देश को ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से आजाद करवाने के लिए किए गए आंदोलनों में भारत के हर कोने से हर भारतीय द्वारा योगदान दिया गया। राष्ट्र के लिए कुछ करने के जज्बे को अग्नि 1857 के विद्रोह से मिली, जिसमें उत्तर और पश्चिम भारत के नागरिकों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। अंग्रेजों के विरुद्ध हुए विद्रोह की अमर कहानी को जन साधारण तक पहुंचाना अति आवश्यक था, ताकि सभी में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ सके। लेखन कौशल द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन को गति प्रदान करने वालों में विनायक दामोदर सावरकर एक किरदार बनकर सामने आए।

विनायक दामोदर सावरकर भारत के महान क्रांतिकारी, स्वतंत्रता सेनानी, समाजसुधारक, इतिहासकार, राष्ट्रवादी नेता तथा विचारक थे। हिन्दू राष्ट्रवाद की राजनीतिक विचारधारा को विकसित करने का बहुत बड़ा श्रेय सावरकर को जाता है। वे एक वकील, राजनीतिज्ञ, कवि, लेखक और नाटककार भी थे। वीर सावरकर जी का जन्म सन् 28 मई 1883 को महाराष्ट्र में नासिक के निकट भगूर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम दामोदर पन्त सावरकर और माता का नाम राधाबाई था। विनायक ने शिवाजी हाईस्कूल नासिक से सन् 1901 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। बचपन से ही वे पढ़ाकू तो थे ही अपितु उन दिनों उन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। सन् 1901 में रामचन्द्र त्रयम्बक चिपलूणकर की पुत्री यमुनाबाई के साथ उनका विवाह हुआ।

स्वतंत्र वीर विनायक दामोदर सावरकर का संपूर्ण जीवन राष्ट्र सेवा को समर्पित रहा। उनका व्यक्तित्व त्याग और समर्पण की कहानी कहता है। वे एक ऐसे स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने सबसे पहले सन् 1857 के महान स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को लिखकर पूरे ब्रिटिश शासन को चौंका दिया था। उन्होंने देश की आजादी के लिए **"मित्र मेला"** नामक एक गुप्त सोसाईटी बनाई। सन् 1905 के बंग-भंग आंदोलन में भी वे सक्रिय रूप से शामिल हुए और उस आंदोलन के दौरान पुणे में विदेशी वस्त्रों की होलिका जलाई।

इसके अतिरिक्त उन्होंने सोसायटी (फ्री इंडिया सोसायटी) का गठन किया था, जिसके माध्यम से वे इंग्लैंड में रहने वाले भारतीय छात्रों को आंदोलन के लिए जोड़ते थे। सोसायटी के एक कार्यक्रम के दौरान अपने संबोधन में सावरकर ने कहा था, **"हमें अंग्रेजी अफसर और अंग्रेजी कानून का विरोध करने से कुछ लाभ नहीं होगा, बल्कि हमें ऐसी व्यवस्था हासिल करनी होगी, जिससे कानून बनाने का अधिकार हमारे पास आ जाए।"** सन् 1910 में उन्हें नासिक के कलेक्टर की हत्या में संलिप्त

होने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। सेलूलर जेल में रहते हुए वह अपनी मातृभूमि के प्रति समर्पण को नहीं भूले और अपनी लेखनी के माध्यम से देश और समाज के प्रति समर्पित रहें। उन्होंने सागर को माध्यम बानकर अपने देशप्रेम की भावना को गीत के रूप में प्रकट किया-

"हे सागर, मुझे मेरी मातृभूमि में वापस ले चलो; मेरी आत्मा तड़प रही है।
मेरी मातृभूमि के पांव धोते हुए मैंने तुम्हें हमेशा देखा था।
आपने मुझे दुसरे देश मे चलने के लिए कहा,
वहां सृष्टि की विविधता का अनुभव करने के लिए
यह जानकर मेरी भारत माँ को विरह की शंका हुई और उसका हृदय वेदना से भरा, तो तुमने उससे वादा किया कि तुम मुझे वापस ले आओगे।
यह सुनकर मैं भी निश्चिंत हो गया। मुझे विश्वास था कि दुनिया का मेरा अनुभव, मुझे उसकी बेहतर सेवा करने में मदद करेगा।
यह कहते हुए कि मैं जल्दी लौटूंगा, मैंने उससे विदा ले ली।
ओह, महासागर, मैं अब अपनी मातृभूमि के लिए तरस रहा हूं।"

जनवरी 1924 को सावरकर को जेल से मुक्ति मिली, लेकिन 10 मई, 1937 तक उन्हें रत्नागिरी में नजरबंद रखा गया। उनका समाज सुधार जीवनपर्यन्त चला। उनके सामाजिक उत्थान कार्यक्रम न केवल हिन्दुओं के लिए बल्कि राष्ट्र को समर्पित थे। उन्होंने संगीत उ:शाप, संगीत संन्यस्त खड्ग, संगीत उत्तरक्रिया, बोधिसत्व-(अपूर्ण) जैसे अनेक नाट्य गीत भी लिखे जो उस समय के युवकों के हृदय में देशप्रेम के प्रति प्रेरणा का स्त्रोत था। देशप्रेरणा की भावना से प्रेरित उनकी प्रसिद्ध नाट्यगीत है-

"गीत-दिव्य स्वातंत्र्यरवि आत्मतेजोबलें
प्रगटतां अवनितलिं कोण त्या लोपवीं"

उन्होंने स्फूर्तिगीत भी लिखा है, जो देश प्रेम की भावना से प्रेरित है-

"जयोस्तु ते श्रीमहन्मंगले। शिवास्पदे शुभदे
स्वतंत्रते भगवति। त्वामहं यशोयुतां वंदे॥
राष्ट्राचे चौतन्य मूर्त तूं, नीति संपदांची
स्वतंत्रते भगवति। श्रीमती राज्ञी तू त्यांची
परवशतेच्या नभांत तूंची आकाशी होशी
स्वतंत्रते भगवती। चांदणी चमचम लखलखशी॥"

सावरकर जी ने 'द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस' नामक पुस्तक लिखा, जिसमें उन्होंने सनसनीखोज व खोजपूर्ण इतिहास लिखा। उन्होंने जेल में रहने के दौरान "हिन्दुत्व" पर शोध ग्रंथ लिखा। वे हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए भी प्रयत्नशील रहे।

लन्दन स्थित भारत भवन (इंडिया हाउस) में संस्था 'अभिनव भारत' के कार्यकर्ता रात्रि को सोने के पहले स्वतंत्रता के चार सूत्रीय संकल्पों को दोहराते थे। उसमें चौथा सूत्र होता था 'हिन्दी को राष्ट्रभाषा व देवनागरी को राष्ट्रलिपि घोषित करना'।

अंडमान की सेल्यूलर जेल में रहते हुए उन्होंने बन्दियों को शिक्षित करने का काम किया। उन्होंने वहां हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु काफी प्रयास किया। वे सभी राजबंदियों को हिंदी का शिक्षण लेने के लिए आग्रह किया। उनके प्रयास से अण्डमान की भयावह कारावास में ज्ञान का दीप जल उठा और वहां हिंदी पुस्तकों का ग्रंथालय बन गया। कारावास में तब भाषा सीखने की होड़-सी लग गई। राजबंदियों का पत्र-व्यवहार हिन्दी भाषा में ही होने लगा। अंग्रेजों को पत्रों की जांच के लिए हिंदीभाषी मुंशी रखना पड़ा।

26 फरवरी 1966 को भारत के इस महान क्रांतिकारी का निधन हो गया। अतः हम कह सकते हैं कि वी.डी. सावरकर एक ऐसे महान व्यक्ति थे, जिनहोने अपना सम्पूर्ण जीवन देश और समाज के प्रति समर्पित कर दिया।

****

पूनम साव
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मुंबई (दक्षिण)

सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी की सुप्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका थीं। "झाँसी की रानी" (कविता) उनकी प्रसिद्ध कविता है। वे राष्ट्रीय चेतना की एक सजग, प्रभावी व प्रसिद्ध कवयित्री रही हैं। अगर कहा जाए कि उनकी कविताएँ ऐसी हैं मानो पुतले में भी जान फूँक दें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। सुभद्रा जी ने स्वाधीनता संग्राम में अनेक बार जेल यातनाएँ सहने के पश्चात अपनी अनुभूतियों को कहानी में भी व्यक्त किया। उनका जन्म 16 अगस्त, 1904 को इलाहाबाद के निकट निहालपुर नामक गाँव में रामनाथ सिंह जी के जमींदार परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही वे कविताएँ रचने लगीं थी। उनकी रचनाएँ राष्ट्रीयता से परिपूर्ण हैं। 1921 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली वह प्रथम महिला थी। सुभद्रा जी का नाम मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन की यशस्वी परंपरा में आदर के साथ लिया जाता है। वह बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक यशस्वी और प्रसिद्ध कवयित्रियों में अग्रणी हैं। 1913 में नौ वर्ष की आयु में सुभद्रा जी की पहली कविता प्रयाग से निकलने वाली पत्रिका "मर्यादा" में प्रकाशित हुई थी।

उनके द्वारा लिखी "झाँसी की रानी" कविता उनकी अत्यंत प्रसिद्ध रचना है। कविता का विषय 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लड़ने वाली, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनके द्वारा अंग्रेजों के साथ लड़ा गया युद्ध है। वीर रस की यह कविता स्वतंत्रता आंदोलन में प्रेरणास्रोत बनी और मंच से पाठ किए जाने, प्रभात-फेरियों में गाये जाने इत्यादि के अलावा अब भी विभिन्न राज्यों के विद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल है। यह कविता तत्कालीन बुंदेली लोकगीत को आधार बनाकर लिखी गयी थी और इसे भारतीय राष्ट्रवाद की हिंदी साहित्य में सबल अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह कविता कवयित्री द्वारा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के प्रति एक श्रद्धांजलि के रूप में रची गई। ओज-गुण से भरपूर इस कविता को अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया था, लेकिन यह कविता उनकी कीर्ति का प्रतिमान है। इसे सुभद्रा जी की बाल कविता भी कहा जाता है। प्रस्तुत है इस अद्वितीय कविता की कुछ पंक्तियाँ–

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।

चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी
जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी
होवे मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी
तेरा स्मारक तू ही होगी, तूँ खुद अमिट निशानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी

वीर रस से ओत-प्रोत इन पंक्तियों की रचयिता सुभद्रा कुमारी चौहान को "राष्ट्रीय वसंत की प्रथम कोकिला" का खिताब दिया गया था। यह वह कविता है जो जन-जन का कंठहार बनी। कविता में भाषा का ऐसा ऋजु प्रवाह मिलता है कि वह बालकों-किशोरों को सहज़ ही कंठस्थ हो जाती है। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में राष्ट्र चेतना और ओज कूट-कूट कर भरा हुआ है। उनकी कथनी करनी की समानता उनके व्यक्तित्व का प्रमुख अंग थी। सुभद्रा जी की रचनाओं में सरलता, रचनात्मकता और गंभीरता एक साथ देखने को मिलती है।

बिखरे मोती, उन्मादिनी, सीधे-साधे चित्र आदि उनकी कहानी संग्रह हैं। कविता संग्रह की बात करूँ तो **मुकुल, त्रिधारा, झांसी की रानी, कदंब का पेड़, सभा का खेल** आदि उनके द्वारा रचित कविताएं हैं।

सुभद्रा जी ने बहुत पहले अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति के प्राणतत्वों, धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण और सांप्रदायिक सद्भाव का वातावरण बनाने के प्रयत्नों को रेखांकित कर दिया था। आज वह हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन हिंदी साहित्य तथा देश की आज़ादी के लिए योगदान के निमित्त उन्हें आज भी याद किया जाता है।

सुभद्रा जी की कविताएं बच्चों, युवाओं व वृद्धों के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत करने में अहम भूमिका निभाती हैं। आज भी उनकी कविताओं का पठन-पाठन पूरे उत्साह व जोश के साथ किया जाता है।

****

निपुण जैन
वरिष्ठ प्रबंधक, राजभाषा
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, भोपाल

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 3 अगस्त 1886 को चिरगांव झांसी उत्तरप्रदेश में हुआ था। वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उन्हें साहित्य जगत में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था। उनकी कृति "भारत-भारती" (1912) भारत के स्वतंत्रता संग्राम के समय में काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई थी और और महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की पदवी दी। उनकी जयन्ती 3 अगस्त को हर वर्ष 'कवि दिवस' के रूप में मनाया जाता है। सन 1954 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रमुख रचनाएं है-महाकाव्य-साकेत (1931), यशोधरा (1932)। खण्डकाव्य-जयद्रथ-वध (1910), भारत भारती (1912), पंचवटी (1925), द्वापर (1936), सिद्धराज, नहुष, अंजलि और अर्घ्य, अजित, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, किसान (1917), कुणाल गीत, गुरु तेग बहादुर, गुरुकुल (1929), जय भारत (1952), युद्ध, झंकार (1929), पृथ्वीपुत्र, वक संहार, शकुंतला, विश्व वेदना, राजा प्रजा, विष्णुप्रिया, उर्मिला, लीला, प्रदक्षिणा, दिवोदास। नाटक-रंग में भंग (1909), राजाप्रजा, वन वैभव, विकट भट, विरहिणी, वैतालिक, शक्ति, सैरन्ध्री, स्वदेश संगीत, हिड़िम्बा, हिन्दू, चंद्रहास। फुटकर रचनाएँ-केशों की कथा, स्वर्गसहोदर। अनूदित (मधूप नाम से)-संस्कृत-स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिमा, अभिषेक, अविमारक; बंगाली-मेघनाथ वध, विहरिणी वज्रांगना, पलासी का युद्ध; फारसी-रुबाइयात उमर खय्याम। काव्य संग्रह-उच्छवास।

गुप्त जी का काव्य एक ओर वैष्णव भावना से परिपोषित था, तो दूसरी तरफ जागरण व सुधार युग की राष्ट्रीय नैतिक चेतना से अनुप्राणित भी था। महात्मा गांधी के भारतीय राजनीतिक जीवन में आने से पूर्व ही गुप्त जी का युवा मन गरम दल और तत्कालीन क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित हो चुका था। 'अनघ' से पूर्व की रचनाओं में, विशेषकर 'जयद्रथ-वध' और 'भारत भारती' में कवि का क्रान्तिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, और विनोबा भावे के सम्पर्क में आने के कारण वह गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष और सुधारवादी आन्दोलनों के समर्थक बने। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात विजय का जश्न मना रहे अंग्रेजों को संबोधित करते हुए अपनी कविता 'बंगाल का अकाल' में गुप्त जी ने लिखा है-

"शिशु जहां शुष्क स्तनी माँ को अधीर पुकारते हैं

एक मुट्ठी अन्न पर उनको बुभुक्षित करते हैं
आँसुओं के रूप में जीवन जहाँ राज गारते हैं
एक पर दूसरों के अन्तरंग उघारते हैं
रक्त रंजित हो यहाँ तो साँझ हो चाहे सवेरा
क्या यही संसार मेरा"।

मैथिलीशरण गुप्त के जीवन में राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूट कर भरे थे। उनकी सभी रचनाएं राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत है। वे भारतीय संस्कृति की नवीनतम रूप की कामना करते हैं तथा छुआछूत जैसी विकृतियों का पूरजोर विरोध करते हैं, जो उनकी कविताओं में परिलक्षित होता है-

"मंदिर का द्वार जो खुलेगा सबके लिए
होगी तभी मेरी वहाँ विश्वंभर भावना"

गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की प्रधानता है। 'भारत भारती' में देश की वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट करते हुए कवि ने देश के अतीत का अत्यंत गौरव और श्रद्धा के साथ गुणगान किया। भारत श्रेष्ठ था, है और सदैव रहेगा-का भाव इन पंक्तियों में गुंजायमान है-

"भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन, भारतवर्ष है।"

एक समुन्नत, सुगठित और सशक्त राष्ट्रीय नैतिकता से युक्त आदर्श समाज, मर्यादित एवं स्नेहासिक्त परिवार और उदात्त चरित्र वाले नर-नारी के निर्माण की दिशा में उन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर उनके सभी पात्रों को एक नया अभिप्राय दिया है-

"इस देश को हे दीनबन्धों! आप फिर अपनाइए,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्यभूमि बनाइए"।

गुप्त जी का मानना था कि भारत की प्राचीन सभ्यता ही जनता को यह संदेश और प्रेरणा दे सकती है जिससे राष्ट्रीय भावना का निर्माण हो सकता है-

"ज्यों ज्यों प्रचुर प्राचीनता की खोज बढ़ती जायेगी।
त्यों त्यों हमारी उच्चता पर ओप चढ़ती जायेगी।"

उन्होंने अपने काव्य में पारिवारिक जीवन को भी यथोचित महत्ता प्रदान की है और नारी मात्र को विशेष महत्व प्रदान किया है। नारियों की दशा को व्यक्त करती उनकी ये पंक्तियां पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करती है-

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।"

ब्रिटिश शासन द्वारा किए जा रहे देश के आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक ह्रास के प्रति गुप्त जी अत्यधिक चिंतित थे, यह चिंता उनके इस पंक्ति में व्यक्त होती है।

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएं सभी।"

वे अपनी कविताओं के माध्यम से केवल राष्ट्रीय चेतना की बात ही नहीं करते, अपितु वे संपूर्ण विश्व को एक पटल पर लेकर चलने की बात करते हैं। इन्हीं चेतनाओं को उजागर करते हुए वे लिखते हैं-

"किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर, भू-सागर
एक नगर सा बने विश्व, हम उसके नागर"

राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार की आकांक्षा गुप्त जी के काव्य का प्रमुख स्वर था जिसकी अभिव्यक्ति उनकी प्रत्येक काव्य रचना में हुई है। राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय चेतना का प्रसार उनके जीवन का उद्देश्य था। उनका सम्पूर्ण लेखन देश की स्वतंत्रता, देश की प्रगति और देश के विकास के लिए ही प्रेरित करता है।

****

डॉ. अंजनी कुमार पाण्डेय
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सीतापुर

सर चौधरी छोटूराम

सर छोटूराम (24 नवंबर 1881-9 जनवरी 1945) ब्रिटिश भारत के पंजाब प्रांत के एक प्रमुख राजनेता एवं विचारक थे। उन्होने भारतीय उपमहाद्वीप के गरीबों के हित में काम किया। इस उपलब्धि के लिए, उन्हें 1937 में 'नाइट' की उपाधि दी गई।

वकालत जैसे व्यवसाय में भी चौधरी साहब ने नए ऐतिहासिक आयाम जोड़े। उन्होंने झूठे मुकदमे न लेना, छल-कपट से दूर रहना, गरीबों को निःशुल्क कानूनी सलाह देना, मुवक्किल के साथ सद्व्यवहार करना, अपने वकालती जीवन का आदर्श बनाया।

उन्होंने 1915 में 'जाट गजट' नाम का क्रांतिकारी अखबार शुरू किया जो हरियाणा का सबसे पुराना अखबार है, जो आज भी छपता है और जिसके माध्यम से छोटूराम जी ने ग्रामीण जनजीवन का उत्थान और साहूकारों द्वारा गरीब किसानों के शोषण पर एक सारगर्भित दर्शन दिया। किसान के शोषण के विरुद्ध उन्होंने डटकर प्रचार किया।

स्वाधीनता संग्राम

चौधरी छोटूराम ने राष्ट्र के स्वाधीनता संग्राम में डटकर भाग लिया। 1996 में पहली बार रोहतक में कांग्रेस कमेटी का गठन हुआ जिसमें चौ. छोटूराम रोहतक कांग्रेस कमेटी के प्रथम प्रधान बने। सारे जिले में चौधरी छोटूराम का आह्वान अंग्रेजी हुकूमत को कंपकपा देता था। चौधरी साहब के लेखों और कार्य को अंग्रेजों ने बहुत 'भयानक' करार दिया। फलस्वरूप रोहतक के डिप्टी कमिश्नर ने तत्कालीन अंग्रेजी सरकार से चौधरी छोटूराम को देश-निकाले की सिफारिश कर दी, पर अंग्रेजों के हाथ कांप गए और कमिश्नर की सिफारिश को रद्द कर दिया गया।

अगस्त 1920 में चौ. छोटूराम ने कांग्रेस छोड़ दी। उनका विचार था कि इस आंदोलन से किसानों का हित नहीं होगा। सन् 1934 में राजस्थान के सीकर शहर में किराया कानून के विरोध में एक अभूतपूर्व रैली का आयोजन किया गया, जिसमें 10000 जाट किसान शामिल हुए।

पंजाब में रौलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन को दबाने के लिए मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप देश की राजनीति में एक अजीबोगरीब मोड़ आ गया। भारत सरकार अधिनियम 1919 के तहत 1920 में आम चुनाव कराए गए। चौ. छोटूराम व लालसिंह जमींदरा पार्टी से विजयी हुए।

चौधरी छोटूराम की लेखनी जब लिखती थी तो आग उगलती थी। 'ठग बाजार की सैर' और 'बेचारा किसान' के लेखों में से 17 लेख जाट गजट में छपे।

महत्वपूर्ण योगदान

साहूकार पंजीकरण एक्ट–1938 (1934):

यह कानून 2 सितंबर 1938 को प्रभावी हुआ था। इसके अनुसार कोई भी साहूकार बिना पंजीकरण के किसी को कर्ज नहीं दे पाएगा और न ही किसानों पर अदालत में मुकदमा कर पायेगा। इस अधिनियम के कारण साहूकारों की फौज पर अंकुश लग गया।

गिरवी जमीनों की मुफ्त वापसी एक्ट–1938:

यह कानून 9 सितंबर 1938 को प्रभावी हुआ। इस अधिनियम के जरिए जो जमीनें 8 जून 1901 के बाद कुर्की से बेची गई थी तथा 37 सालों से गिरवी चली आ रही थीं, वो सारी जमीनें किसानों को वापिस दिलवाई गईं।

कृषि उत्पाद मंडी अधिनियम–1938:

यह अधिनियम 5 मई 1939 से प्रभावी माना गया। इसके तहत नोटिफाइड एरिया में मार्किट कमेटियों का गठन किया गया।

व्यवसाय श्रमिक अधिनियम–1940:

यह अधिनियम 11 जून 1940 को लागू हुआ। बंधुआ मजदूरी पर रोक लगाए जाने वाले इस कानून ने मजदूरों को शोषण से निजात दिलाई। सप्ताह में एक दिन की छुटी वेतन सहित और दिन में 8 घंटे काम करने के नियत किये गए। 14 साल से कम उम्र के बच्चों से मजदूरी नहीं कराई जाएगी।

कर्जा माफी अधिनियम–1934:

यह क्रान्तिकारी ऐतिहासिक अधिनियम दीनबंधु चौधरी छोटूराम ने 8 अप्रैल 1935 में किसान व मजदूर को सूदखोरों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए बनवाया।

मोर के शिकार पर पाबंदी:

चौ. छोटूराम ने भ्रष्ट सरकारी अफसरों और सूदखोर महाजनों के शोषण के खिलाफ अनेक लेख लिखे। कोर्ट मे उनके विरुद्ध मुकदमें लड़े व जीते। 'मोर बचाओ' 'ठग्गी के बाजार की सैर', 'बेचारे जमींदार, 'जाट नौजवानों के लिए जिन्दगी के नुस्खे' और 'पाकिस्तान' आदि लेखों द्वारा किसानों में राजनैतिक चेतना, स्वाभिमानी भावना तथा देशभक्ति की भावना पैदा करने का प्रयास किया।

इन लेखों द्वारा किसान को धूल से उठाकर उनकी शान बढ़ाई। महाजन और साहूकार ही नहीं, अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध भी चौ. छोटूराम जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाते थे।

स्वतंत्रता के करीब:

सर छोटूराम अब्दुल कलाम आजाद की नीतियों के समर्थक थे। उन्होंने ही भाखड़ा

बांध का प्रस्ताव रखा था। झज्जर के महान सपूत ने बिलासपुर के राजा के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए।

सर छोटू राम गुदडी के लाल हैं, थे और रहेंगे।

गिरवी जमीनों की मुफ्त वापसी एक्ट के तहत सभी किसानो की 37 वर्षो से फंसी जमीनों को साहूकारो के चंगुल से आजाद कराया। कृषि उत्पाद मंडी अधिनियम द्वारा किसानों के लिए अनाज बेचने के लिए एक मंच प्रदान किया। इस समय एक कवि की एक पंक्ति याद आ रही है-

दुःख क्या तुम्हें तोड़ेगा
तुम दुख को तोड़ दो
बस अपने सपने को
औरो के सपनों से
जोड़ दो----

एक बार एक पत्रकार ने सर छोटूराम जी पूछा, "आपका वंश कैसे चलेगा"। उनका उत्तर था, "सारे किसान मेरे ही भाई हैं, अब आप समझ गए होंगे मेरा वंश कैसे चलेगा"।

एक कहानी किसान के नाम:

साहूकारों द्वारा स्थापित एक गजब की प्रथा थी। साहूकार कर्ज के साथ साथ तीन से चार महीने की बछिया खरीद कर किसानों को दे देता था। जब किसान उसे पाल पोश कर बड़ा कर लेता था, गाय को बछिया होते ही किसान से करार के अनुसार बछिया लेने साहूकार आ जाता था। अब किसान की पत्नी बछिया को गले लगा कर रोने लगती थी। दृश्य की कल्पना कीजिए एक ओर पूरा परिवार रो रहा था, किसान की पत्नि मानो बेटी की विदाई कर रही थी। बेजुबान गाय और बछिया के आंसू किसान की पत्नी के आंसू एक गंगा यमुनी की तरह बह रही थी, साहूकार जिद पर अड़ा था। आखिर सारी सम्वेदना हार गई, साहूकार जीत गया। जिन आंखो से दुख का नीर बह रही थी आज खुशियो की नीर बहती है। इस व्यवस्था को समाप्त करने का श्रेय सर छोटू राम को जाता है।

सर छोटु राम हरियाणा के कण कण में बसे हुए।

****

बिंदेश्वरी प्रसाद
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
अंचल कार्यालय, करनाल

बहादुर शाह जफर

(1775-1862)

मुगल साम्राज्य के अन्तिम शासक बहादुर शाह जफर शासक के साथ-साथ उर्दू के कवि भी थे। इनका जन्म 24 अक्टूबर, 1775 में शाहजहानाबाद, मुगल साम्राज्य (वर्तमान पुरानी दिल्ली) में हुआ था। ये मुगल सम्राट अकबर द्वितीय एवं हिन्दू राजपूत रानी लाल बाई के पुत्र थे। इनका पूरा नाम मिर्जा अबू जफर सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुर शाह जफर है। मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने उर्दू, फारसी एवं अरबी में शिक्षा ग्रहण की तथा घुड़सवारी, तलवारबाजी, धनुष तीर चलाना एवं गोली चलाने जैसी कला में पारंगत थे। मुगल सम्राट अकबर द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् 28 सितंबर, 1837 को बहादुर शाह जफर 17वें मुगल सम्राट के रूप में सिंहासन संभाला इस समय तक अंग्रेजी हुकुमत ने भारत पर राजनैतिक कब्जा कर लिया था। अतएव, इनका साम्राज्य का अधिक विस्तार नहीं रहा। हालांकि ये आक्रामक शासक के स्थान पर सूफीवादी शासक रहे और इस कारण अंग्रेजों को इनसे खतरा नहीं था।

बहादुर शाह जफर हिन्दुस्तान से बेहद प्रेम करते थे। 1857 में जब ब्रिटिश शासकों ने अपनी दमनकारी नीतियों से भारतीयों की नाक में दम कर दिया था, तब अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचारों के खिलफ और भारत से खदेड़ने के लिए कुछ महान क्रांतिकारियों, विद्रोहियों और राजा-महाराजाओं ने उनके खिलाफ विद्रोह शुरु कर दिया था।

उस समय राजा-महाराजाओं ने अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को अपना सम्राट माना और उन्हें क्रांति का नेता घोषित किया था, क्योंकि उस दौरान एक ऐसे केन्द्रीय नेतृत्व वाले शासक की जरूरत थी, जो हिन्दू-मुस्लिमों को एकजुट कर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ सके और ऐसे शासक सिर्फ बहादुर शाह जफर ही थे। जब उन्हें रंगून निर्वासित कर दिया गया तो उन्होंने अपने दर्द को लिखा -

गई यक-बयक जो हवा पलट,
नहीं दिल को मेरे करार है।
करू उस सितम का मैं क्या बयां
मेरे गम से सीना फिगार है।।

इस दौरान बहादुर शाह जफर ने क्रान्ति के नेता की तरह क्रांतिकारियों का पूरा सहयोग दिया एवं अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया तथा बेटे मिर्जा मुगल को कमांडर इन चीफ भी बनाया, किन्तु युद्ध के मामले में अनुभवहीन होने के कारण वे सेना का नेतृत्व संभाल नहीं पाये और अंग्रेजों ने सन् 1857 की क्रान्ति को अपनी शक्ति और

छल से दबा दिया। जिससे बहादुर शाह जफर को हार का सामना करना पडा। उनके बेटों को मौत के घाट उतार दिया गया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार कर उन्हें परिवार सहित देश से निर्वासित कर रंगून के जेल में कैदी के रूप में कैद कर दिया गया। जहां उन्होंने बहुत सी गजलें लिखी। उनकी अन्तिम चाहत थी कि वे अपनी अन्तिम सांस अपने वतन हिन्दुस्तान में ले और वहीं दफनाया जाएं, किन्तु ऐसा हो नहीं पाया और 07 नवम्बर, 1862 में उन्होंने रंगून में अपनी अन्तिम सांस ली। अन्तिम सांस के समय भी उनके मुख पर वतन से दूर होने की कसक थी, जिसे उन्होंने इस अन्दाज में बयां किया-

लगता नहीं है, जी मेरा उज़डे दयार में,
किस की बनी है आलम-ए- नापायदार में।
कितना है बदनसीब 'जफर' दफ्न के लिए,
दो गज जमीन भी न मिली कू-ए-यार में।।

उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शव को रंगून में ही दफनाया गया और बाद में उसे दरगाह बना दिया गया। बहादूर शाह जफर भले ही प्रभावशाली शासक नहीं रहे, किन्तु सन् 1857 की क्रान्ति का नेतृत्व कर उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ जो बगावत की, उसके लिए उन्हें याद किया जाता है। अंग्रेजों के विरूद्ध उनका आक्रोश उनकी गजलों और उर्दू कविताओं में झलकता है, किन्तु सन् 1857 की क्रान्ति के दौरान अंग्रेजों ने उनकी रचनाओं को नष्ट कर दिया। इसके बाद उन्होंने रंगून की जेल की दीवारों पर अपनी गजलें उकेरी।

इतिहास के पन्नों में बहादुर शाह जफर एक दयालु, धर्म सहिष्णु तथा मुगल साम्राज्य के अन्तिम शासक के साथ-साथ उर्दू कवि के रूप में जाने जाते हैं, जिनकी गजलों के लोग आज भी मुरीद हैं।

****

निशा चोरेटिया
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मेरठ

द्विजेन्द्रलाल राय

(19.07.1863-17.05.1913)

बंगला साहित्य भारत मुक्ति का आख्यान है। राष्ट्रीय चेतना को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर बंगला साहित्य पर विचार विमर्श किया जाय तो बंगला साहित्य की समृद्धता, संपन्नता परिलक्षित होती है। अंग्रेजी शासन में लंबे समय तक भारतीयों का शोषण हुआ। भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने अंग्रेजों के अत्याचार से मुक्त होने का स्वप्न देखने वाले भारतीय जनमानस को अनुप्रेरित किया। वास्तव में बंगाल और बंगला साहित्य राष्ट्रीय चेतना का उत्स रहा है। बंगाल और बंगला साहित्य से भारतीयों को मिली संघर्ष की उर्जा ने हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को निरंतर गतिशील बनाये रखा। सांस्कृतिक गौरव की अनुभूति राष्ट्र के इतिहास के प्रति एकता का भाव जाग्रत करती है और समसामयिक राष्ट्रीय एकता का कारक बनती है। साहित्यकारों ने अंग्रेजों के अमानवीय सच को चित्रित करते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से साम्राज्यवादी शक्तियों से टकराने का न केवल अद्‌भुत साहस पैदा किया अपितु विराट राष्ट्रीय चेतना का भावबोध जगाते हुए राष्ट्रीय जागरण का अलख जगाया और सांस्कृतिक गौरवबोध के मान को बढ़ाया। निश्चय ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम में आजादी की लड़ाई का प्रस्थान बिन्दु 1857 की क्रांति रहा जिसमें पहली बार सांगठनिक विरोध क्रांति के रूप में दर्ज हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद बंगाल के पुनर्जागरण ने साहित्यिक क्रांति और उसके जरिए राष्ट्रवादी चिंतन के युग में प्रवेश किया। द्विजेन्द्रलाल राय (19.07.1863-17.05.1913) सामाजिक पिछड़ापन, अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन के साथ-साथ बंगाल में नवजागरण भी समानांतर रूप से चल रहा था।

द्विजेन्द्रलाल राय (19.07.1863-17.05.1913)

एक विशिष्ट बंगाली कवि, नाटककार, गीतकार व संगीतकार, शांत व भावुक प्रकृति के व्यक्तित्व, विलक्षण स्मरणशक्ति, प्रकृति-प्रेमी, मृदुभाषी सूरमयी व्यक्ति के रूप में सुप्रसिद्ध द्विजेन्द्रलाल राय का जन्म पश्चिम बंगाल के नदिया जिले के कृष्णनगर के राजबाड़ी में हुआ। पिता कार्तिकेय चंद्र और माता प्रसन्नदेवी थी। 5 वर्ष की अवस्था में ही श्री द्विजेन्द्र जी हारमोनियम बजाकर गीत गाने लगे थे एवं 9 वर्ष की आयु से ही विधिवत रूप से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1882 ई. में हुगली शहर के मोहसिन कॉलेज से स्नातक एवं 1884 में कोलकाता प्रेसीडेंसी कॉलेज से अंग्रेजी से एम.ए. की डिग्री हासिल की। तत्पश्चात कृषि विद्या पढ़ने के लिए विदेश भी गए। विदेश से लौटने पर जीवन की शुरूआत करते हुए सेटलमेंट ऑफिसर, डिप्टी मजिस्ट्रेट, इंस्पेक्टर एवं कृषि निदेशक के पद पर भी आसीन रहे। समानान्तर साहित्यिक लेखन कार्य भी अनवरत चलता रहा। वे डी.एल.राय नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने लगभग 500 गीतों की

रचना की। ये समस्त गीत बंगला संगीत में 'द्विजेन्द्र गीत' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके विख्यात गीत 'धनधान्य पुष्प भरा', बंग आमार! जननी आमार, आमार देश इत्यादि आज भी विख्यात एवं जनप्रिय है।

द्विजेन्द्रलाल राय द्वारा रचित देशप्रेम गीत सदैव बंगालियों के कर्णप्रिय रही हैं और उनके मानस पटल पर खूबसूरत चलचित्र की भांति रेखांकित रहता है। इतना ही नहीं मातृभूमि के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा के गीत बंगाल में मनाये जाने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में विद्यालय के छात्र-छात्राओं द्वारा अभिनीत किये जाते हैं।

यथा-धन-धान्य पुष्पभरा
आमादेरई बसुन्धरा,
ताहार माझे आछे देश एक
सकल देशेर सेरा।

उनकी यह 'जन्मभूमि' कविता से उद्धृत उक्त अंश न केवल राष्ट्रप्रेम का गौरवगान है अपितु अपना मातृभूमि के प्रति अगाध लगाव, स्नेह और अभिमान है। 'जन्मभूमि' कविता समसामयिक राष्ट्रीय चेतना से आगे निकलकर शाश्वत राष्ट्रीयता का दीप जलाता है जो सदैव देशभक्ति के समर्पित मार्ग को आलोकित करता है। तत्कालीन पीढ़ी को न केवल अंग्रेजी शासन के साम्राज्यवाद से मुक्त होने के संकल्प को साधनारत बनाने हेतु अनुप्रेरित करता है अपितु राष्ट्रीय भावबोध को समसामयिक घेराबंदी से बाहर निकालकर वर्तमान युवा पीढ़ी को भी शाश्वत राष्ट्र प्रेम से आह्लादित करता है-

एमन देशटि कोथाउ खूँजे पाबे ना को तूमि
सकल देशेर सेरा से
जे आमार जन्मभूमि से
जे आमार जन्मभूमि।

उनकी कविता एवं प्रबंध रचना तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही। सन् 1903 ई. तक उनकी प्राय: 12 ग्रंथ प्रकाशित हो चुकी थी। पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक विषयों पर उन्होंने नाटक रचना की। उनके ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीय चेतना एवं स्वदेशप्रेम से परिपूर्ण रहा। उन्होंने कुल मिलाकर 16 नाटकों की रचना की। उल्लेखनीय रचनाएं-आषाढ़े, हासिर गान, मंत्र, आलेख्य इत्यादि। नाटक-साजाहान, चंद्रगुप्त, नूरजहाँ, मेवाड़पतन, दुर्गादास, प्रभासिंह व सीता इत्यादि हैं।

****

दीपक कुमार साव
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, देवघर

वल्लत्तोल नारायण मेनन

(1878-1958)

वल्लत्तोल नारायण मेनन, जिन्हें 'महाकवि' के नाम से जाना जाता है, मलयालम भाषा के एक प्रसिद्ध कवि थे। मेनन का जन्म केरल राज्य के मलप्पुरम जिले के तिरूर के पास चेनारा में हुआ था। वल्लत्तोल ने मुख्य रूप से संस्कृत और आयुर्वेद प्रणाली का अध्ययन किया था। उन्होंने छोटी उम्र से ही संस्कृत और मलयालम में कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। केरल कल्पद्रुमम नामक एक प्रकाशन गृह का प्रबंधक बनने के बाद, उन्होंने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया। 1921 में, वे महात्मा गांधी से मिले और उन्हें अपना शिक्षक मानने लगे। कथकली कला केंद्र स्थापित करने का उनका सपना 1930 में केरल कलामंडलम की स्थापना के साथ साकार हुआ।

मेनन "साहित्य मंजरी" के लेखक हैं। उन्होंने अपने महाकाव्यम "चित्रयोगम" के लिए महाकवि की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने भारतपुषा नदी के तट के पास चेरुतुरुथी में केरल कलामंडलम की स्थापना में एक प्रमुख भूमिका निभाई। **केरल कलामंडलम शास्त्रीय कलाओं का मंदिर है।** उन्होंने कथकली को एक कला के रूप में उस स्तर तक पहुँचाया जो आज है। मेनन ने मुख्य रूप से मलयालम में लिखा और कुमारन आशान, उल्लूर एस परमेश्वर अय्यर के साथ मलयालम साहित्य में एक रचनात्मक अवधि का हिस्सा रहा। रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और कार्ल मार्क्स के साथ-साथ संस्कृत क्लासिक्स से प्रभावित मेनन की कविता अपनी शास्त्रीय शुरुआत से राष्ट्रवादी और व्यापक रूप से समाजवादी भावना की बढ़ती अभिव्यक्ति तक विकसित हुई।

उन्होंने प्रकृति और आम लोगों के जीवन के विषयों के अलावा, जाति व्यवस्था के अपमान का विरोध और गरीबों के साथ अन्याय को अपनी कविताओं के विषय के रूप में चुना। अपनी कविता के अलावा, वल्लत्तोल ने संस्कृत ऋग्वेद और वाल्मीकि की रामायण का मलयालम कविता में अनुवाद किया, साथ ही पुराणों के गद्य अनुवाद का निर्माण किया। उनकी प्रमुख कृतियां अच्छनुम मकलुम, बधिरविलापम, बंधनस्थनाय अनिरुद्धन, बापुजी, चित्रयोगम, दंडकारण्यम, दिवास्वप्नम, एंटे गुरुनाथन, इंडियायुडे करच्चिल, काव्य मंजुषा, कोच्चुसीता, मग्दलन मरियम, राक्षसकृत्यम किलिप्पाटु, शिष्यनुम मकनुम, साहित्य मंजरीख्र11 खंड, वल्लत्तोल सुधा, वल्लत्तोलिंटे खंडकाव्यंगल, वल्लत्तोलिंटे पद्यकृतिकल, वल्लत्तोल कवितलकल है।

राष्ट्रवादी आंदोलन में भागीदारी: मेनन ने राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। उन्होंने 1922 और 1927 में भारतीय कांग्रेस के अखिल भारतीय सम्मेलनों में

भाग लिया और 1922 में अपनी भारत यात्रा के दौरान प्रिंस ऑफ वेल्स द्वारा उन्हें दिए गए शाही सम्मान को अस्वीकार कर दिया। मेनन महात्मा गांधी के बहुत बड़े प्रशंसक रहे और उनकी प्रशंसा में उन्होंने कविता "एंटे गुरुनाथन" ("माई ग्रेट टीचर") लिखी। उन्होंने भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन की प्रशंसा में कई देशभक्ति कविताएँ लिखीं।

वल्लत्तोल एक प्रमुख आधुनिक भारतीय कवि है, जो कुमारन आशान और उल्लूर के साथ आधुनिक मलयालम कविता की त्रिमूर्ति बनाते हैं, उन्होनें अपनी कविताओं में भारतीय राष्ट्रवाद को गाया। उनके सुंदर छंदों ने जनता से विभिन्न समुदायों के बीच एकता को प्रेरित करके स्वतंत्रता के कारण का समर्थन करने का आग्रह किया। अपने देश की प्रशंसा में उनके गीतों ने लाखों भारतीयों को अपनी मातृभूमि की महिमा को जगाने के लिए ब्रिटिश शासन के तहत विभिन्न उथल-पुथल को भी चित्रित किया।

वल्लत्तोल नारायण मेनन ने भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ-साथ केरल में सांस्कृतिक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। माना जाता है कि वल्लत्तोल की कविताओं ने मलयालम भाषी समुदाय के भीतर राष्ट्रवाद की भावना पैदा की है। उन्होंने केरल राज्य की भाषा, संस्कृति और कला रूपों के संरक्षण और उत्थान को भी बहुत महत्त्व दिया।

वल्लत्तोल की कविताएँ राष्ट्रवादी कल्पनाओं से भरी हैं, जिसमें भारतमाता और राष्ट्रीय ध्वज जैसे प्रतीकों के उपयोग से राष्ट्रवादी भावना का आह्वान किया गया है। राष्ट्र को हमारी माता के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके हम ऋणी हैं और रक्षा करने का कर्त्तव्य रखते हैं। 1917 में लिखा गया "मातृभूमियोडु" भारत को संबोधित करता है और सभी भारतीयों से अन्य देशों की मदद करने के लिए अपने कर्तव्य का एहसास करने का आग्रह करता है जो प्रथम विश्व युद्ध का हिस्सा हैं। भारत माता को अपनी बहनों के लिए शोक के रूप में चित्रित किया गया है जो विश्व के अन्य राष्ट्र युद्ध के कारण संघर्ष कर रहे हैं। यह एक एकालाप के रूप में आगे बढ़ता है कि बच्चे (भारत के लोग) अपनी मां (भारत) को संबोधित करते हैं। भारतीयों की गरीबी की स्थिति के बावजूद न केवल अपने देश, बल्कि दुनिया के अन्य देशों की मदद करने की इच्छा और मानसिकता पर प्रकाश डालता है। इसके साथ ही वह बलिदान के आदर्श को सभी भारतीयों में निहित होने के रूप में व्यक्त करते हैं।

राष्ट्रीय ध्वज कवि द्वारा आह्वान किया गया एक और निरंतर प्रतीक है। 1921 में लिखा गया "पोरा पोरा" में, वल्लत्तोल गांधी द्वारा परिकल्पित स्वराज ध्वज को चित्रित करते हैं। झंडा जनता को लामबंद करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले राष्ट्रवादी प्रतीकों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था।

"नम्मल नूट्टा नूलु कोंडु नम्मल नेय्ता वस्त्रम कोंडु
निर्मितम इतनीतिक्कोरंत्यावरणर्मी"

("हमने जो सूत काता है, जो कपड़ा हमने बुना है,
इससे बने हुए यह प्रचलित अन्याय का कफन है")

उनकी कविताएँ राष्ट्रवादी नेताओं और व्यापक राष्ट्रवादी आंदोलन की प्रशंसा करती हैं। इनके माध्यम से, उन्होंने केरल के लोगों से भारत की मुक्ति के संघर्ष में आगे आने और एकजुट होने का आग्रह किया। 1926 में लिखा गया **"नम्मुडे मरुपडी"** उन लोगों के जवाब के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो भारत की स्वतंत्रता को साकार करने में विभिन्न बाधाओं को उजागर करते हैं। भारत में मौजूद विभिन्न आंतरिक मुद्दों को स्वीकार करते हुए, उनका तर्क है कि देश की स्वतंत्रता की दिशा में काम करना सबसे महत्वपूर्ण है।

1931 में प्रकाशित, कविता **"एट्टुपाडुका"** लोगों के लिए विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए कार्रवाई का आह्वान है। यह विदेशी कपड़ों के उपयोग के खिलाफ जागरूकता पैदा करने के कर्तव्य के साथ सौंपे गए लोगों के समर्पण पर प्रकाश डालता है।

वल्लत्तोल न केवल मलयालम भाषी समुदाय के भीतर एक भारतीय होने की भावना का आह्वान करने में सफल रहे, बल्कि मलयाली उप-राष्ट्रीय पहचान के लिए एक ठोस आधार बनाने में भी सफल रहे। उनका आह्वान है कि वे अपने ज्ञान और शक्ति को भारत की प्रगति और मुक्ति के लिए समर्पित करने में अपने कर्तव्य का एहसास करें-

"भारतमेन्नु केट्टाल अभिमान पूरितमाकणमंतरंगम
केरलमेन्नु केट्टालो तिलक्कणम चोर नमुक्कु रम्बुकलिल"
("भारत का नाम सुनते ही हमारी आत्मा गर्व से भर उठनी चाहिए
और केरल का नाम सुनते ही हमारी नसों में खून खौलना चाहिए।")

वल्लत्तोल के कार्यों द्वारा चित्रित राष्ट्रवाद का उद्देश्य हमारे राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्त करने और उप-राष्ट्रीय सांस्कृतिक स्तर पर हमारी संप्रभुता के संरक्षण से संबंधित है। मद्रास सरकार ने उन्हें 1948 में 'कवि पुरस्कार विजेता' बनाया। उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। कोच्चि के महाराजा द्वारा उन्हें "कविसार्वभौमन" की उपाधि दी गई। सोवियतलैंड ने मरणोपरांत उन्हें "नेहरू शांति पुरस्कार" प्रदान किया।

****

डॉ. रम्या रामचंद्रन टी
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, एर्णाकुलम

राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज

महाराष्ट्र राज्य की धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत मजबूत रही है। महाराष्ट्र राज्य संतों की लंबी सूची के लिए भी लोकप्रिय है। इन संतों ने समय-समय पर मानवता, समानता, वीरता, भाईचारे और सद्भाव पर अपने प्रवचन से जनता को प्रबुद्ध किया है। महाराष्ट्र को अपने पूरे इतिहास में कई संत पैदा करने का गौरव प्राप्त है। जनता को जगाने और आध्यात्मिक शिक्षाओं के प्रसार में कोई न कोई संत निरंतर शामिल रहे हैं। सबसे सम्मानित भक्ति संतों की अंतहीन सूची में समर्थ रामदास, सवता माली, गोरा कुंभार, ज्ञानेश्वर, चोखमेला, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम शामिल हैं।

महाराष्ट्र राज्य के संतों ने सामान्य जनमानस के मन में न केवल भक्ति अपितु राष्ट्रप्रेम की भावना का निर्माण किया तथा सामान्य से सामान्य व्यक्ति को उसके भीतर छिपी आत्मशक्ति से अवगत कराया। राष्ट्रसंतों द्वारा रचित साहित्य से समाज में जन जागृति का निर्माण हुआ, जिससे लोग स्वतंत्रता का मोल समझ सके। राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतों में से एक हैं, उनका मूल नाम माणिक बंडोजी इंगले था। इनका जन्म 30 अप्रैल 1909 को अमरावती जिले के यावली ग्राम में हुआ था। तुकडोजी महाराज के गुरु का नाम आडकोजी महाराज था। उन्होंने अपना प्रारंभिक जीवन आध्यात्मिक और योगाभ्यास जैसे साधना मार्गों में बिताया। उनके प्रारंभिक जीवन का अधिकतम समय रामटेक, सालबर्डी, रामदिघी और गोंदोडा के जंगलों में बिताया।

उनकी खँजरी, एक पारंपरिक वाद्ययंत्र, बहुत ही अद्वितीय थी और उनके द्वारा उसे बजाया जाना अपने आप में अनूठा था। वह सम्पूर्ण जीवन अविवाहित रहे और अपना जीवन जाति, वर्ग, पंथ या धर्म से परे समाज की सेवा के लिए समर्पित किया। वह पूर्णरूप से आध्यात्मिक जीवन में लीन थे। इन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा यावली और वरखेड नामक स्थान में पूरी की। अपने प्रारंभिक जीवन में ही उनका संपर्क बहुत सारे महान संतों के साथ हो गया था। समर्थ आडकोजी महाराज (उनके गुरु) ने उनके ऊपर अपने स्नेह की वर्षा की और उन्हें योग शक्तियों से विभूषित किया। संत तुकडोजी महाराज ने सन 1935 में सालबर्डी नामक स्थान की पहाड़ियों पर महारूद्र यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ में लगभग तीन लाख से अधिक लोगों ने भाग लिया। यज्ञ के बाद वे बेहद प्रसिद्ध हो गए और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और वे पूरे मध्य प्रदेश में सम्माननीय हो गए। उनका साहित्यिक योगदान बहुत अधिक और उच्च श्रेणी का है। उन्होंने हिंदी और मराठी दोनों ही भाषाओं में तीन हजार भजन, दो हजार

अभंग, पाँच हजार ओवीस के अलावा धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा पर छह सौ से अधिक लेख लिखें।

महात्मा गाँधी द्वारा सन 1936 में राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज को सेवाग्राम आश्रम में निमंत्रित किया गया था, सेवाग्राम आश्रम में लगभग एक महीने रहने के बाद तुकडोजी महाराज सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रमों द्वारा समाज में जन जागृति का कार्य प्रारंभ कर दिया, जो सन 1942 के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में परिलक्षित हुआ। राष्ट्रसंत तुकडोजी के ही आह्वान का परिणाम था-आष्टि-चिमुर स्वतंत्रता संग्राम। इसके चलते अंग्रेजों द्वारा उन्हें चंद्रपुर में गिरफ्तार कर नागपुर और फिर रायपुर के जेल में 100 दिनों (28 अगस्त से 02 दिसंबर 1942 तक) के लिए डाल दिया गया। जेल से छूटने के उपरांत तुकडोजी महाराज ने समाज में व्याप्त बुराईयों के खिलाफ समाज सुधार के लिए आंदोलन चलाकर अंधविश्वास, अस्पृश्यता, मिथ्या धर्म, गोवध एवं अन्य सामाजिक बुराईयों और कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष किया।

तुकडोजी महाराज द्वारा नागपुर से लगभग 120 किमी के अंतर पर अमरावती रोड पर मोझरी नामक गाँव में "गुरुकुंज" आश्रम स्थापित किया, जहाँ पर आज भी उनके अनुयायियों द्वारा समाज सुधार से सम्बंधित विभिन्न कार्यक्रमों को चलाया जाता है। उनका आश्रम सर्वधर्म सम-भाव के सिद्धांतों पर कार्य करता है। गुरुकुंज आश्रम के प्रवेश द्वार पर ही उनके सिद्धांत को इस प्रकार अंकित किया गया हैं-"इस मन्दिर का द्वार सबके लिए खुला है", "हर धर्म और पंथ के व्यक्ति का यहाँ स्वागत है", "देश और विदेश के हर व्यक्ति का यहाँ स्वागत है" स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तुकडोजी ने अपना पूरा ध्यान ग्रामीण पुर्ननिर्माण कार्यों की ओर लगाया और रचनात्मक काम करने वालों के लिए कई प्रकार के शिविरों का आयोजन किया। उनके क्रियाकलाप अत्यधिक प्रभावकारी और राष्ट्रीय हित से जुड़े हुए थे। तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने गुरुकुंज आश्रम के एक विशाल समारोह में उनके ऊपर अपना स्नेह समर्पित करते हुए आदर के साथ "राष्ट्रसंत" के सम्मान से प्रतिष्ठित किया। उस समय से उन्हें लोग अत्यधिक आदर के साथ "राष्ट्रसंत" के उपनाम से बुलाने लगे।

11 अक्टूबर 1968 को राष्ट्रसंत तुकोडजी महाराज की 59 वर्ष की आयु में कैंसर जैसी घातक बीमारी से गुरुकुंज आश्रम में मृत्यु हो गई। गुरुकुंज आश्रम के ठीक सामने उनकी समाधि स्थल स्थित है।

****

विद्याधर रामभाऊ वासनिक
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, नागपुर

नानक सिंह

(4 जुलाई, 1897 - 28 दिसम्बर, 1971)

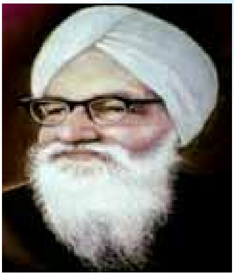

नानक सिंह का जन्म 4 जुलाई 1897 को गांव चक हमीद जिला जेहलम में श्री बहादुर चंद सूरी जी के घर हुआ। उनका मूल नाम हंस राज था। वह पेशावर के गुरुद्वारे के ग्रंथी बाग सिंह की प्रेरणा से हंसराज से नानक सिंह बन गए। पांचवी कक्षा तक गांव के ही स्कूल में से शिक्षा प्राप्त की। छठी कक्षा में पढ़ते हुए उनके पिताजी की मृत्यु हो गई और वह पढ़ाई अधूरी छोड़कर रोजी रोटी कमाने लग पड़े। उन्होंने हलवाई की दुकान पर बर्तन धोने और मेलों में कुल्फियां बेचने का भी काम किया। नानक सिंह जी ने 13 साल की छोटी उम्र में ही कविताएं लिखनी आरम्भ कर दी थीं।

नानक सिंह पंजाबी भाषा के कवि, गीतकार एवं उपन्यासकार थे। भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में लिखने के कारण अंग्रेजी सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। उन्होने कई उपन्यासों की रचना की।

13 अप्रैल 1919 को, ब्रिटिश सैनिकों ने अमृतसर में बैसाखी (पंजाब नववर्ष) के अवसर में जलियांवाला बाग में 379 शांतिपूर्ण रैली प्रतिभागियों की गोली मारकर हत्या कर दी, जिसे जलियांवाला बाग नरसंहार के रूप में भी जाना जाता है। नानक सिंह रैली में उपस्थित थे जिसमें उनके दो दोस्त मारे गए थे। इस घटना ने नानक सिंह को खूनी वैशाखी नाम से महाकाव्य लिखने के लिए प्रेरित किया, जिसमें कविताओं के जरिए ब्रिटिश शासन पर व्यंग्य किया गया। ब्रिटिश सरकार आपके उत्तेजक लेखन के बारे में बेहद चिंतित हो गई और पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया जिसकी कुछ पंक्तियां निम्न है:-

पंच वजे अप्रैल दी तेहरवीं नू ,
लोकीं बाग वल होए रवान चले।
मतां उके ही तुसां तों जाण चले।
नानक सिंह पर उन्हां नूं कौण रोके,
जिहड़े मुलक पर होण कुरबान चले।

रॉलेट एक्ट रॉलेट कमेटी की सिफारिशों पर पारित और इसके अध्यक्ष, सर सिडनी रॉलेट के नाम पर, अधिनियम ने औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार को प्रभावी रूप से दो साल तक के लिए ब्रिटिश भारत में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को बिना किसी कारण के पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने का अधिकार दिया। इस अधिनियम का उद्देश्य राष्ट्रवादी उभार को रोकना था। इस बिल के प्रति रोष नानक सिंह जी की कविता 'रॉलेट बिल दा रौला' में झलकता है:

रोलट बिल ने घतिया आन रौला,
सारे हिन्द दे लोक उदास होए।
फासी जमां दी गल पै गई यारो,
जिस नूं देख के बहुत निराश होए।

रॉलेट बिल से देशवासियों में अत्यंत रोष था। वे इस बिल को ज्ल्द से जल्द खारिज करवाना चाहते थे। इस दौरान आया मार्शल लॉ। मार्शल लॉ सभी सामान्य कानूनी संहिताओं का निलंबन था और सरकार द्वारा ही नागरिक समाज के सैन्य नियंत्रण को प्रत्यक्ष रूप से लागू करना था। इसे 18 मार्च को लगाया गया था। इसे राष्ट्रवादियों के विद्रोह को रोकने और रॉलेट एक्ट को रोकने के लिए पारित किया गया था। मार्शल लॉ के पास होने पर नानक सिंह जी ने **'जलसे ते मार्शल लॉ'** कविता लिखीं जिसकी कुछ पंक्तियां इस तरह हैं:

आखरकार हुण सब निराश हो के,
लिखे आपने नूं बहि के रोण लग पए।
सचमुच हो गिया यकीन सब नूं,
घरीं बैठ के खुशीं मनौण लग पए।
मिशन आपने विच कामयाब हो के,
वाजे खुशी दे खूब वजौण लग पए।

नानक सिंह ने अकाली आंदोलन से जुड़कर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लिया। जिसके बाद उन्होंने अकाली समाचारपत्र के संपादन का कार्य शुरू किया। ब्रिटिश सरकार ने उनकी गतिविधियों को संज्ञान में लेना शुरू किया और नानक सिंह पर गैर कानूनी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का आरोप लगाकर लाहौर जेल में भेज दिया गया। उन्होंने अपनी दूसरी किताब 'जख्मी दिल' में गुरु का बाग मोर्चा में शांतिपूर्ण प्रदर्शन के दौरान सिखों पर अंग्रेजों द्वारा उत्पीड़न का वर्णन किया और **'बुलबुल की फरियाद'** नामक कविता में अंग्रेज़ों से भारत छोडने की मांग की है:-

दे दे मुझे तू जालिम मेरा वो आशियाना।
आरामगाह मेरी मेरा बहिश्तखाना
सोजे निहां की बिजली सिर पर गिरेगी तेरे
जालिम तू मर मिटेगा बदलेगा ये जमाना

जेल में रहते हुए नानक सिंह ने उपन्यास लेखन का कार्य भी किया। उन्होंने कई उपन्यासों और कविताओं की रचना की, जिसमें स्वतंत्र भारत का एक स्वप्न देखा। **'प्यारा वतन'** उनकी ऐसी ही एक कविता है जिसमें गुलामी की जंजीरें कटने और स्वतंत्र भारत की है:-

जब अपना बागबां होगा चमन अपना चमन होगा।
तो फिर फसले बहार आएगी पहला सा चमन होगा।
अगर हम हुक्म गांधी पर रहे आए कमर बस्ता
रिहा सय्याद के पंजे से फिर प्यारा वतन होगा।

स्वतंत्रता पश्चात उन्हें 1960 में पंजाब के उच्चतम साहित्यिक पुरस्कार समेत कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। उनके महान ऐतिहासिक उपन्यास 'इक म्यान दो तलवारान' ने उन्हें 1962 में भारत के सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार दिलाया।

उन्होंने 1942 में उपन्यास 'पवित्र पापी' लिखा, यह उपन्यास बेहद लोकप्रिय हुआ। कई साहित्यकारों ने उनके इस उपन्यास की प्रशंसा की। इस उपन्यास का हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद किया गया। 1968 में प्रसिद्ध फिल्मकार बलराज साहनी ने इसी उपन्यास पर आधारित एक फिल्म 'पवित्र पापी' का निर्माण किया जिसने काफी सफलता हासिल की। ज्ञात हो कि बलराज साहनी उनके बड़े प्रशंसकों में गिने जाते थे। वर्तमान में इसी उपन्यास को पंजाबी भाषा में 28 बार मुद्रित किया जा चुका है। इससे इस उपन्यास की लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। उनके पोते, नवदीप सिंह सूरी ने पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद सेंटली सिनर के नाम से किया। उन्होंने उपन्यासों और लघु कथाओं के संग्रह सहित 50 से अधिक किताबें लिखीं। उन्होंने विभिन्न साहित्यिक शैलियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पंजाबी का सबसे बड़ा योगदान इसकी धर्मनिरपेक्षता है। 2011 में नानक सिंह के पोते ने 'चिट्टा लहू' का White Blood शीर्षक से अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने स्व जीवनी, लेख और नाटक भी लिखे। नानक सिंह के उपन्यासों में सामाजिक बुराईयां, आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार आदि हैं व अपनी कहानियां उन्होंने सामाजिक जीवन से ली हैं।

****

दीप्ति
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, चंडीगढ़

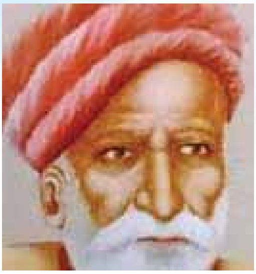

सूर्यमल्ल मिश्रण

राजस्थान के महान कवि सूर्यमल मिश्रण का जन्म बूंदी जिले के हरणा गाँव में 19 अक्टूबर 1815 में हुआ। सूर्यमल्ल मिश्रण बचपन से अद्‌भुत प्रतिभा संपन्न थे। अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल आदि कई भाषाओं में उन्हें दक्षता प्राप्त हो गई। उन्होंने योग, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक साहित्य आदि की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने व्याकरण, छंदशास्त्र, काव्य, ज्योतिष, अश्ववैधक, चाणक्य शास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की तथा एक यवन से उन्होंने वीणा-वादन सीखा। इस प्रकार सूर्यमल्ल मिश्रण को प्रारम्भ से ही शैक्षिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक वातावरण मिला, जिससे उनमें विद्या, विवेक एवं वीरता का अनोखा संगम प्रस्फुटित हुआ। कवित्वशक्ति की विलक्षणता के कारण अल्पकाल में ही इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। सूर्यमल्ल की प्रतिभा और विद्वता का पता तो इस बात से ही चल जाता है कि मात्र 10 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने 'रामरंजाट' नामक खंड-काव्य की रचना कर दी थी। सूर्यमल्ल मिश्रण का जन्म उस समय हुआ जब राजस्थान में राजपूत युग की आभा लगभग ढल चुकी थी। वीर दुर्गादास का समय बीत चुका था और शेष राजपूत राजा मराठा आक्रमणों से त्रस्त थे। यहाँ के राजाओं के आपसी वैमनस्य का फायदा उठाते हुए अंग्रेजों ने दो तीन साल में ही राजस्थान पर अधिकार कर लिया। सूर्यमल्ल मिश्रण उस समय बूँदी के हाड़ा शासक महाराव रामसिंह के दरबारी कवि थे।

वे वस्तुतः राष्ट्रीय विचारधारा तथा भारतीय संस्कृति के पुरोधा रचनाकार थे। उनको आधुनिक राजस्थानी काव्य के नवजागरण का पुरोधा कवि माना जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मातृभूमि के प्रति प्रेम, आज़ादी हेतु सर्वस्व लुटाने की भावना का विकास करने तथा राजपूतों में विस्मृत हो चुकी वीरता की भावना को पुनः जाग्रत करने का कार्य किया। जब 1857 का स्वाधीनता संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो उसमें तीव्रता व वीरता पोषित करने में इस कवि की रचनाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा। सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपनी कृतियों अथवा पत्रों के माध्यम से गुलामी करने वाले राजपूत शासकों को धिक्कारा है।

राजस्थान में वीरता पोषित करने के कारण सूर्यमल्ल मिश्रण के विचारों एवं रचनाओं को राजस्थान में राष्ट्रीयता की संवृद्धि का सर्वप्रथम प्रेरक कवि माना जाता है। वीरता के संपोषक इस वीररस के कवि को 'वीर रसावतर' भी कहा जाता है। सूर्यमल्ल मिश्रण के प्रमुख ग्रंथ 'वंश भास्कर' एवं 'वीर सतसई' सहित समस्त रचनाओं में चारण काव्य परंपरा की स्पष्ट छाप अंकित है। बूँदी नरेश रामसिंह के आदेशानुसार इन्होंने 'वंश-भास्कर' की रचना प्रारम्भ की थी। इस ग्रंथ में मुख्यतः बूँदी राज्य का इतिहास वर्णित है, किंतु यथाप्रसंग अन्य राजस्थानी रियासतों के व्यक्तियों और प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं की भी चर्चा की गई है। युद्ध-वर्णन में जैसी सजीवता इस ग्रंथ में है वैसी

अन्यत्र दुर्लभ है। राजस्थानी साहित्य में बहुचर्चित इस ग्रंथ की टीका कविवर बारहठ कृष्णसिंह ने की है। 'वंश-भास्कर' एक अनूठा काव्य-ग्रंथ है। सूर्यमल्ल मिश्रण के वीर-सतसई ग्रन्थ को भी राजस्थान में स्वाधीनता के लिए वीरता की उद्घोषणा करने वाला अपूर्व ग्रन्थ माना जाता है। यह रचना 1857 की क्रांति के समय जन जागरण के उद्देश्य से लिखी गई थी। यह संपूर्ण कृति वीरता का पोषण करने तथा मातृभूमि की रक्षा के लिए मर मिटने की प्रेरणा का संचार करती है। यह राजपूती शौर्य के चित्रण तथा काव्य शास्त्र की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है-

"इला न देणी आपणी, हलरियों हुलराय
पूत सिखावै पालने, मरण बढ़ाई मांय"।

माता अपने बालक को पालने में झुलाती हुई कहती है, "ओ मेरे प्यारे पुत्र, अपनी धरती को शत्रु के हाथ न जाने देना, चाहे प्राण क्यों न चली जाएं। मृत्यु तो मनुष्य का बड़प्पन है।" सूर्यमल्ल मिश्रण की अन्य कृतियाँ धातु रूपावली, बलवद विलास (बलवन्त विलास), राम रंजजाट, छंद मयूख, सतीरासो है। इनके अलावा उन्होंने कुछ फुटकर छन्दों की भी रचना की है। उनकी उत्कृष्ट कृति 'वीर सतसई' के संपादकों ने उसकी भूमिका में कवि पर 1857 के संग्राम का प्रभाव स्वीकारते हुए लिखा-"जिस समय सतसई का निर्माण हुआ, उस समय देश में 1857 ई. के विद्रोह की ज्वाला भड़क रही थी। सारा देश विदेशी सत्ता का तख्ता पलटने के लिय व्यग्र हो उठा था। गदरकालीन परिस्थितियों का कवि पर बड़ा स्फूर्तिदायक प्रभाव पड़ा था। 1857 की क्रांति में बड़े सामंतों ने अंग्रेजों का साथ दिया था और छोटे सामंतों ने जनता का साथ दिया। देशी पलटनों के विद्रोही सैनिकों ने इन सामंतों को साथ लेकर अंग्रेजों से युद्ध किया। 'आउआ' के युद्ध में यह साफ दिखाई दिया।" इसका वर्णन इस गीत में किया गया है-

"वणीया वाली गोचर माँय, कालो गो दड़िया गो,
राजा जी रै भेजो फिरंगी लड़ियों ओ, काली टोपी रो।
हे ओ, काली टोपी रो, फिरंगी फैलाव किधो ओ, काली टोपी रो।"

"आउआ की धरती पर फिरंगी आ धमका है। उसको बाहर खदेड़ने के लिए गाँव की गोचर में काले सिपाही डटे हुए हैं। फिरंगी का पक्ष लेकर उसके साथ हमारा राजा भी चढ़ आया है। गोरी देह वाला यह फिरंगी निरंतर फैलाव करता जा रहा हैं।"

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण, 11 अक्टूबर 1868 को इस लोक से विदा ले लिए। उनके नाम पर राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी द्वारा द्वारा राजस्थानी भाषा का सर्वोच्च पुरस्कार "सूर्यमल्ल मिश्रण शिखर पुरस्कार" प्रत्येक वर्ष उत्कृष्ट साहित्यकार को प्रदान किया जाता है।

****

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, जयपुर

सियाराम शरण गुप्त

परिचयः किसी वटवृक्ष के नीचे पनपने और परिपक्व होकर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ने के कुछेक ही उदाहरण विश्व साहित्य के इतिहास में मिलते हैं। सियारामशरण जी उनमें से एक हैं। बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार सियारामशरण गुप्त जी का जन्म भाद्रपद पूर्णिमा सम्वत् 1952 विक्रमी तद्नुसार 4 सितम्बर 1895 ई. को सेठ रामचरण कनकने के परिवार में मैथिलीशरण गुप्त के अनुज के रुप में चिरगांव, झाँसी में हुआ था। प्राइमरी शिक्षा पूर्ण कर घर में ही गुजराती, अंग्रेजी और उर्दू भाषा सीखीं।

राष्ट्रीय चेतनाः चिरगाँव (झाँसी) में बाल्यावस्था बीतने के कारण बुन्देलखण्ड की वीरता और प्रकृति सुषमा के प्रति उनका प्रेम स्वभावगत था। घर के वैष्णव संस्कारों और गांधीवाद से गुप्त जी का व्यक्तित्व विकसित हुआ। विचार की दृष्टि से भी सियारामशरण जी ज्येष्ठ बन्धु के सदृश गांधीवाद की परदुःखकातरता, राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम, विश्व शांति, हृदय परिवर्तनवाद, सत्य और अहिंसा से आजीवन प्रभावित रहे। उनके काव्य वस्तुतः गांधीवादी निष्ठा के साक्षात्कार पद्यबद्ध हैं। उनकी "बापू" नामक कविता दृष्टव्य है-

चरखा खादी लाए बापू
हैं आजादी लाए बापू
कभी न हिम्मत हारे बापू
आँखों के थे तारे बापू।

हिन्दी साहित्य में उन्हें एक कवि के रुप में विशेष ख्याति प्राप्त हुई। एक मूर्धन्य कथाकार के रूप में भी उन्होंने कथा साहित्य में अपना स्थान बनाया। सन् 1910 में इनकी प्रथम कविता 'इन्दु' प्रकाशित हुई। 1914 में उन्होंने अपनी पहली रचना "मौर्य विजय" लिखी। सन् 1940 ई. में चिरगांव में ही नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत किया। वे सन्त विनोबा भावे के सम्पर्क में भी आए। "एक फूल की चाह" उनकी एक लंबी कविता है जिसमें राष्ट्रीयता एक दलित रोग ग्रस्त बच्ची के देवी पर चढ़े हुए फूल की कामना से प्रकट होती है-

भीतर जो डर रहा छिपाये,
हाय! वही बाहर आया।
एक दिवस सुखिया के तनु को
ताप-तप्त मैंने पाया।

ज्वर से विह्वल हो बोली वह,
क्या जानूँ किस डर से डर
मुझको देवी के प्रसाद का
एक फूल ही दो लाकर।

सामाजिक समन्वय और एकता से ही प्रबल शत्रु से लड़ा जा सकता था, इसलिए गुप्त जी ने गांधीवादी विचारधारा पर चलते हुए सामाजिक कुरीतियों से छुटकारे तथा राष्ट्रीय एकता पर विशेष बल दिया।

गुप्त जी के मौर्य विजय (1914 ई.), अनाथ (1917), दूर्वादल (1915-24), विषाद (1925), आर्द्रा (1927), आत्मोत्सर्ग (1931), मृण्मयी (1936), बापू (1937), उन्मुक्त (1940), दैनिकी (1942), नकुल (1946), नोआखाली (1946), गीतासंवाद (1948) आदि काव्यों में मौर्य विजय और नकुल आख्यानात्मक हैं। मानव प्रेम के कारण कवि का निजी दु:ख, सामाजिक दु:ख के साथ एकाकार होता हुआ वर्णित हुआ है। अपने हृदय की सचाई के कारण गुप्त जी द्वारा वर्णित जनता की दरिद्रता, कुरीतियों के विरुद्ध आक्रोश, विश्व शांति जैसे विषयों पर उनकी रचनाएँ किसी भी प्रगतिवादी कवि को पाठ पढ़ा सकती हैं। हिंदी में शुद्ध सात्विक भावोद्‌गारों के लिए गुप्त जी की रचनाएँ स्मरणीय है। वे हिंदी की गांधीवादी राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

काव्य रूपों की दृष्टि से उन्मुक्त नृत्य नाट्य के अतिरिक्त उन्होंने पुण्य पर्व नाटक (1932), झूठा सच निबंध संग्रह (1937), गोद, आकांक्षा और नारी उपन्यास तथा लघुकथाओं (मानुषी) की भी रचना की थी। उनके गद्य साहित्य में भी उनका मानव प्रेम ही व्यक्त हुआ है। कथा साहित्य की शिल्प विधि में नवीनता न होने पर भी नारी और दलित वर्ग के प्रति उनका दयाभाव देखते ही बनता है। जाति वर्ण, दल वर्ग से परे शुद्ध मानवतावाद ही उनका कथ्य है। वस्तुत: अनेक काव्य भी पद्यबद्ध कथाएँ ही हैं और गद्य और पद्य में एक ही उक्त मंतव्य व्यक्त हुआ है। गुप्त जी के पद्य में नाटकीयता तथा कौशल का अभाव होने पर भी संतों जैसी निश्छलता और संकुलता का प्रयोग उनके साहित्य को आधुनिक साहित्य के तुमुल कोलाहल में शांत, स्थिर, सात्विक घृतपीद का गौरव देता है जो हृदय की पशुता के अंधकार को दूर करने के लिए अपनी ज्योति में आत्ममग्न एवं निष्कण्ट भाव से स्थित है।

गुप्त जी की अन्य रचनाओं में कविता संग्रह-अनुरुपा तथा अमृत पुत्र; काव्यग्रन्थ-जय हिन्द, पाथेय; उपन्यास-अन्तिम आकांक्षा तथा नारी और गोद; पद्यानुवाद-ईषोपनिषद, धम्मपद और भगवत गीता आदि प्रमुख हैं।

सियारामशरण गुप्त जी को सन् 1941 में नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी द्वारा 'सुधाकर पदक' प्रदान किया गया। उन्हें दीर्घकालीन साहित्य सेवाओं के लिए सन् 1962 में 'सरस्वती हीरक जयन्ती' के अवसर पर भी सम्मानित किया गया। वे लम्बी बीमारी के बाद 29 मार्च 1963 ई. को परलोक सिधार गए।

****

कुलवेन्द्र कुमार सिंह
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, आगरा

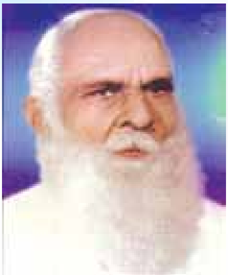

पं. मुकुटधर पाण्डेय

यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य सत्य है कि **"साहित्य समाज का दर्पण होता है।"** किसी भी देश व समाज के साहित्यकारों द्वारा उनकी रचनाओं में सदैव अपने देश व समाज की वास्तविकता को प्रतिबिंब किया जाता है, जिससे उस देश व समाज के निवासी अपने देश में घट रही घटनाओं से अवगत हो सकें। उनके प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ दे सकें। इतिहास साक्षी है कि राष्ट्रभक्त साहित्यकारों ने अपने साहित्य से सदैव अपने देश व समाज की **"राष्ट्रीय चेतना"** को जागृत एवं सशक्त किया है एवं देश व समाज को बदल दे या सत्ता को जड़ से उखाड़ दे ऐसी क्रांति के मार्ग को प्रशस्त किया है।

30 सितम्बर सन् 1895 को **छत्तीसगढ** के एक छोटे से गांव **बालपुर** में जन्में **पं. मुकुटधर पाण्डेय** अपने आठ भाईयों में सबसे छोटे थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। इनके पिता पं.चिंतामणी पाण्डेय संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और भाईयों में पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय जैसे हिन्दी के विख्यात साहित्यकार थे। इनके संबंध में एक लेख में प्रो.अश्विनी केशरवानी जी कहते हैं-**"पुरूषोत्तम प्रसाद, पद्मलोचन, चंद्रशेखर, लोचनप्रसाद, विद्याधर, वंशीधर, मुरलीधर और मुकुटधर तथा बहनों में चंदनकुमारी, यज्ञकुमारी, सूर्यकुमारी और आनंद कुमारी थी। सुसंस्कृत, धार्मिक और परम्परावादी घर में वे सबसे छोटे थे। अतः माता-पिता के अलावा सभी भाई-बहनों का स्नेहानुराग उन्हें स्वाभाविक रूप से मिला। पिता चिंतामणी और पितामह सालिगराम पांडेय जहां साहित्यिक अभिरूचि वाले थे वहीं माता देवहुति देवी धर्म और ममता की प्रतिमूर्ति थी। धार्मिक अनुष्ठान उनके जीवन का एक अंग था। अपने अग्रजों के स्नेह सानिध्य में 12 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने लिखना शुरू किया। तब कौन जानता था कि यही मुकुट छायावाद का ताज बनेगा...?"**

सन् 1909 में 14 वर्ष की उम्र में उनकी पहली कविता आगरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका **'स्वदेश बांधव'** में प्रकाशित हुई एवं सन् 1919 में उनकी पहली कविता संग्रह **'पूजा के फूल'** का प्रकाशन हुआ। अबाध गति से देश के सभी प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार लिखते हुए पं. मुकुटधर पाण्डेय नें हिन्दी पद्य के साथ साथ हिन्दी गद्य में भी अपना अहम योगदान दिया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेकों लेखों व कविताओं के साथ ही उनकी पुस्तक का रूप में प्रकाशित कृतियां इस प्रकार हैं-

'पूजा के फूल (1916), शैलबाला (1916), लच्छमा (अनुदित उपन्यास, 1917), परिश्रम (निबंध, 1917), हृदयदान (1918), मामा (1918), छायावाद और अन्य निबंध (1983), स्मृतिपुंज (1983), विश्वबोध (1984), छायावाद और श्रेष्ठ निबंध (1984), मेघदूत (छत्तीसगढ़ी अनुवाद, 1984) आदि प्रमुख है। हिन्दी जगत में योगदान के लिये

इन्हें विभिन्न अलंकरण एवं सम्मान प्रदान किये गये। भारत सरकार द्वारा भी इन्हें **'पद्म श्री'** का अंलंकरण प्रदान किया गया।

छायावाद को **"छायावाद"** नाम से सुशोभित करने वाले कविवर मुकुटधर पाण्डेय जी के काव्य में छायावादी पुट के साथ-साथ अपने देश के प्रति अगाध प्रेम और राष्ट्रीय चेतना को निम्नानुसार परिलक्षित किया जा सकता है:-

"जननी जन्म भूमि पर जिसने, तन, मन, अपना वारा है,
उसने दुःख दरिद्र हरने का अति पवित्र व्रत धारा है,
जिसने सतत लोक-सेवा का ग्रहण किया है बर वाना
सफल किया, बस उसी एक ने इस जग में आना।"

उक्त पंक्तियां श्री पाण्डेय जी की रचना प्रसिद्ध कविता **"जीवन साफल्य"** से उद्धृत है जिसमें हम उनके राष्ट्र प्रेम एवं मातृभूमि से अनुपम अनुराग को स्पष्ट देख सकते हैं। इस कविता के माध्यम से उन्होने संदेश दिया है कि मानव जीवन की सार्थकता अपने राष्ट्र के प्रति अपने जीवन को समर्पित करने में है। उपर्युक्त पंक्तियां देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना को जागरूक करने का प्रयत्न करती हैं। कविवर पाण्डेय जी की रचना **"गीत"** में उन्होंने भारत माता का अत्यंत मनोरम चित्रण करते हुए देश का गौरवगान किया है:-

"पूजा करो हर्ष से आज,
निज भारत माता की भाई
सिर पर मुकुट रत्न भंडारा,
शोभित हिम गिरि का छविसार
उर में गंगा-जमुना के हार,
कटि में विंध्याटवी सुहाई
पाशर्व में बहते शोभाधाम,
सिंधु नद ब्रह्म पुत्र अभिराम
चूमता पद को सिंधु ललाम,
लोल लहरों की छवि है छाई।

पाण्डेय जी ने उक्त कविता के माध्यम से अपने राष्ट्र की भौगोलिक संरचना के महत्व के साथ ही देश में व्याप्त विविधता में एकता के गौरवगाथा को सुंदर शब्दों में वर्णन करते हैं एवं इसके माध्यम से समस्त देश वासियों को भी आह्वान करते हैं कि हम सब मिल कर अपने प्रिय मातृभूमि का गुणगान करें और राष्ट्रीय भावना को और भी प्रज्ज्वलित करें। उन्होंने अपने देश की महानदी की प्राकृतिक सुषमा संपन्न तट और सहज ग्राम्य जीवन के महत्व को अपनी लेखनी के माध्यम से निम्न रंगों में संजोया है:-

"कितना सुन्दर और मनोहर, महानदी यह तेरा रूप।
कलकलमय निर्मल जलधारा, लहरों की है छटा अनूप।
तुझे देखकर शैशव की है, स्मृंतियां उर में उठती जाग।
लेता है किशोर काल का, अँगड़ाई अल्हड़ अनुराग।"

पंडित मुकुटधर जी कृति **"मुक्तक शतक"** में भी उन्होंने अतीत के गौरवगान के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की अनुपम छटा बिखेरी है एवं अपनी लेखनी के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना की लौ को और भी अधिक तेज करने का प्रयत्न किया है। एक उद्धरण देखें:-

"भीमार्जुन संताना बनो मत क्लीव
जग जाहिर थे गदा और गाण्डीव
अभय अहिंसा का युगपत संदेश
गीता गांधी का यह अनुपम देश।"

पाण्डेय जी देशवासियों में देशप्रेम को जागृत करने हेतु उन्हें अपने इतिहास की महान विभूतियों के पराक्रम से शक्ति पाने और सशक्त होने का संदेश देते हैं। पाण्डेय जी ने **"मुक्तक शतक"** में काव्य की सार्थकता जन-मानस को स्वतंत्रता हेतु प्रेरित करना माना है। इसकी चंद पंक्तियों में इसकी बानगी देखने को मिलती है:-

"स्व का तनन ही स्वतंत्रता का सार
वह स्वतंत्र जो करे आत्म-विस्तार
किसी प्रेरणा का मिलना सहयोग
कविता का तब आता दुर्लभ योग।"

पाण्डेय जी ने स्वतंत्रता के सार को व्यक्ति विशेष के आत्म संघर्ष का सार बताया एवं यह स्पष्ट किया है कि जो स्वतंत्र होता है, वही अपनी आपको वैचारिक रूप से विस्तृत करता है।

90 वर्ष की उम्र तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान देने वाले राष्ट्र प्रेमी श्री मुकुटधार पाण्डेय जी का निधन 6 नवम्बर 1995 में रायपुर में हुआ। अपने देश की भूमि में समाहित होने की इच्छा को स्वयं उन्होंने अपनी एक कविता में प्रकट किया है:-

हे महानदी तू अपनी ममतामयी गोद में,
मुझको अंतिम विश्राम देना,
तब मैं मृत्यु-पर्व का भरपूर सुख लूटूंगा

श्री पांडये जी के उपरोक्त काव्य में वर्णित जीवन परिचय एवं साहित्य साधना के विवेचन के पश्चात हम पाते है कि उनके कव्य में जहाँ एक और छायावाद की प्रवृत्तियों का कोमल समावेश है तो वहीं दूसरी तरफ जनमानस को राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत करने वाली राष्ट्रीय चेतना की तीव्र ज्वाला भी है। उनके काव्य में देश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप स्व से राष्ट्र तथा जनमानस तक विस्तृत जान पड़ता है। इस में दो राय नहीं है कि छत्तीसगढ़ की भूमि से प्रज्ज्वलित इस राष्ट्रीय चेतना की मशाल से पूरे देश भर में राष्ट्र प्रेम की ऊर्जा का प्रसार हुआ।

****

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सतना

मनोहर लाल उनियाल 'श्रीमन'

'श्रीमन' ऐसे यशस्वी कवि और स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं, जिनके मातृगांव पर अंग्रेजों ने ही नहीं, राजशाही ने भी सबसे ज्यादा जुल्म ढाया था। उनका जन्म 17 जुलाई 1919 को टिहरी गढ़वाल में पट्टी सकलाना के गांव उनियाल में हुआ था। वह छात्र जीवन से ही कविताएं लिखने लगे थे। उन्हें प्रथमतः सुमित्रानंदन पंत और डॉ. हरिवंश राय बच्चन से सृजन की प्रेरणा मिली। आचार्य गया प्रसाद शुक्ल सनेही और कृष्ण कुमार कौशिक के सान्निध्य में उनका नाम 'श्रीमन' पड़ा। पर्वत प्रदेश उत्तराखंड के कवि मनोहरलाल उनियाल "श्रीमन" आग और पराग के कवि थे, वे जैसा लिखते, वैसा दिखते थे। उनकी वाणी में आग्नेय स्वर और हृदय में करुणा का सागर हिलोरें लेता था। उन्नीस सौ साठ-सत्तर के दशक की पूरी पीढ़ी श्रीमन की ओजस्वी कविताओं से सुपरिचित और अभिभूत रही है।

कवि लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं कि राजशाही और सामाजिक विद्रूपों के खिलाफ लड़ते हुए श्रीमन ने जैसा प्रतिरोधी आह्वान किया था, वह जैसे आज भी हमारे मन में गूंजता रहता है विद्यासागर नौटियाल के शब्दों में, "श्रीमन जी ने अपनी कविता की धार उस क्रांति की ओर मोड़ दी थी, जिसकी चिंगारियां पूरी रियासत के अंदर फैलने लगीं। औपचारिक होकर रहना उनके स्वभाव के खिलाफ था। वे सही मायने में एक क्रांतिकारी जनकवि और जनसेवक थे। उन्हें अपनी मंजिल का हरदम ख्याल रहता था। वे एक स्वाभिमानी क्रांतिकारी थे, जिन्होंने अपनी कविता में शहीद सुमन के अलावा किसी को इस योग्य नहीं समझा कि उसे श्रद्धांजलि दी जा सके।"

जाने-माने कवि-कथाकार सूरज प्रकाश कहते हैं- मेरे लेखन की तो शुरुआत ही श्रीमन जी द्वारा 1972 में संपादित कविता संग्रह 'दहकते स्वर' में शामिल कविता से हुई थी। हाईस्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर वह सुमित्रानंदन पंत, बद्रीदत्त पांडेय और देवकीनंदन पांडेय की संगत में पहुंच गए। बाद में उनके गांव उनियाल में अग्रज चंद्रमणि और सुखदेव ने उनके स्वाध्याय और साहित्य साधना के लिए अलग से कुटिया बनवा दी थी। उस कुटिया की दीवार पर लिखा था-

'इस कुटिया का आवुल अतर,
रहने दो मत खोलो द्वार।
बाहर से ही सुन लो भीतर,
क्या होता है मधु गुंजार।'

स्वतंत्रता की प्राप्ति पर श्रीमन सामाजिक जीवन पर भी कविता की कलम चलाने लगे। फिर भी आजादी के अवशिष्ट उत्साह में वे नगेन्द्र सकलानी, श्रीदेव सुमन, भोलू आदि शहीदों पर भी श्रद्धांजलि अर्पित करते रहे हैं। देहरादून में वह छात्र जीवन में ही स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे। यहीं से उन्होंने हस्तलिखित 'उत्थान' पत्रिका निकाली। सन् 1939 में उन्होंने अपने गांव उनियाल में बालसभा का गठन और आसपास के गांवों में विस्तार किया। उन्होंने अंग्रेजों को ललकारते हुए लिखा–'निर्माण', सृजन के प्रहरों में अब देश हमारा जाग उठा। राहुल सांकृत्यायन ने कभी कहा था कि कवि जिस हिमवंत खंड की संतान है, जिसे उसने अपनी शिशु आंखों से अब तक देखा, उसने उन्हें बहुत आकृष्ट किया है। उसका सुंदर चित्रण उन्होंने अपनी 'तिलाड़ी का मैदान', 'शैल श्रेणियां', श्मेरा गांवश, शहिमवंत से हेमंतश आदि कविताओं में किया है। श्रीमन् की एक रचना में उल्लिखित आग का वर्णन कुछ इस प्रकार है–

रक्त रंजित पथ हमारा, हम पथिक हैं आग वाले।
आग का हम राग गाते, पाप की दुनिया जलाते,
लक्ष्य पर निज चल पड़े हैं, मृत्यु से कंधा मिलाते,
कौन-सा है भय हमे, जो पंथ से पीछे हटा ले।
आज सपना भंग होगा, झोलियों में रंग होगा,
लूट होगी आज, समझो विश्वव्यापी जंग होगा,
राजमहलों के खुलेंगे मुष्टिकों से आज ताले।

...

करुण क्रंदन अब न होगा, अनय नर्तन अब न होगा,
मुक्त मानव पर किसी का क्रूर बंधन अब न होगा,
पड़ चुके हैं, अब न आगे पड़ सकेंगे पेट लाले।
रक्त-रंजित पथ हमारा, हम पथिक हैं आग वाले।।

टिहरी की रियासत में छिड़े जन आंदोलन के उन दिनों में 'श्रीमन' के शब्दों से सचमुच मानो अनल की बारिश होती थी। उन्होंने तिलाड़ी के मैदान को जलियांवाला बाग की संज्ञा देते हुए लिखा–

अरे ओ जलियांवाले बाग, रियासत टिहरी के अभिमान।
रवांई के सोने के दास, तिलाड़ी के खूनी मैदान।
जगाई जब तूने विकराल, बगावत के प्राणों की ज्वाल,
उठा तब विप्लव का भूचाल, झुका आकाश, हिला पाताल,
मचा तब शोर, भयानक शोर, हिली सब ओर, हिले सब छोर,
तड़ातड़ गोली की आवाज, वनों में गूंजी भीषण गाज,

...

लुटी कुछ माताओं की गोद, लुटी कुछ बहनों की भी लाज,
पुंछा कुछ सतियों का सिंदूर, गया था कुछ का उजड़ सुहाग।
अरे ओ जलियांवाले बाग।
मगर थी फिर भी अपनी आन, मगर थी फिर भी अपनी शान,
निरंकुश सत्ता का स्वीकार, नहीं था उनको अत्याचार,
बुझा कब मेघों की बौछार सकी है धरती मां की आग।
अरे ओ जलियांवाले बाग।
शहीदों के उज्ज्वल बलिदान, बनेंगे तेरी पावन याद,
रहेगा जब तक तू आजाद, जलेंगे शत-शत क्रांति चिराग।
अरे ओ जलियांवाले बाग।

टिहरी सामंतसाही के विरुद्ध आग उगलने वाले क्रांतिकारी कवि मनोहर लाल उनियाल 'श्रीमन्' आजादी के समय और स्वतंत्रतोत्तर काल के महान कवि हुए। उनकी वीर रस की कविताएं सर्वोपरि हैं। उत्तराखंड में क्रांति के उस दौर को श्रीमन् ने अपने शब्दों से काव्य का रूप दिया। उनके काव्य में इंकलाब के स्वर अभिगुंजित होते रहे हैं। आजादी का अमृत महोत्सव मनाते हुए श्रीमन जी को याद कर हम गौरवान्वित हैं।

****

बलवीर सिंह
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, देहरादून

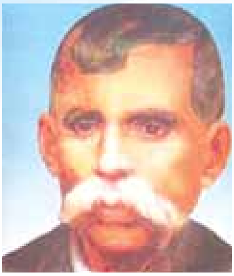

कविवर राधानाथ राय

कविवर राधानाथ राय (ओड़िया) (28 सितम्बर 1848-17 अप्रैल 1908) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध काल के कवि हैं। उन्हें ओड़िया साहित्य में "कविवर" की उपाधि से सम्मानित किया गया है। अपने प्रारंभिक जीवन में, उन्होंने ओड़िया और बांग्ला दोनों भाषाओं में रचना कीं। उनके काव्यों ने ओड़िया कविता में एक नयी परंपरा की सृष्टि की और बीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक के परवर्ती कवियों को प्रभावित किया। ओड़िया साहित्य में आधुनिकता का प्रारम्भ राधानाथ राय के अभ्युत्थान के साथ-साथ होता है। उनके नाम के आधार पर एक युग चल पड़ा, जिसे 'राधानाथ युग' कहा जाता है। उन्होंने उन्नीसवीं सदी में उड़िया साहित्य के लिए छंद और कविताओं से योगदान दिया है। मध्यकालीन ओड़िया साहित्य बंगाली साहित्य की तुलना में अधिक समृद्ध था। वह ओडिशा स्कूल एसोसिएशन के इंस्पेक्टर थे और फकीर मोहन सेनापति और मधुसूदन राव के साथ, उन्होंने पाठ्य पुस्तक लेखन को बढ़ावा देने का प्रयास किया।

राधानाथ राय की पहली प्रमुख कृति "कबिताबली" है, जो अठारह वर्ष की आयु में लिखी गई बंगाली में कविताओं का संग्रह है। यह उस समय के कोलकाता के अधिकांश प्रमुख समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में छपा था। उनकी अन्य बंगाली कविता "लेखबली" है। ओड़िया भाषा में केदार गौरी, नंदिकेश्वरी, चिल्का, महाजात्रा-जाजतिकेशरी, तुलसीस्तबका, उरबाशी, दरबारा, दशरथ बायोग, सावित्री चरित और महेंद्र गिरी जैसे प्रसिद्ध काव्य लिखें। इसके अतिरिक्त, उन्होंने पंद्रह से अधिक निबंध लिखें। उन्हें लैटिन साहित्य से उनके अनुवाद और रूपांतरों के लिए भी जाना जाता है। इनमें उषा, चंद्रभागा और पार्वती शामिल हैं।

उनके लेखन कीट्स, स्कॉट और वर्ड्सवर्थ जैसे कई अंग्रेजी साहित्यकारों से प्रेरित है। उन्होंने खाली छंद, ड्राइडन और अलेक्जेंडर पोप के लेखन से प्रेरित व्यंग्य, निरंकुशों, अत्याचारियों और उत्पीड़कों की निंदा, सामाजिक समस्याओं से सरोकार, पारंपरिक नैतिकता के खिलाफ विरोध की भावना, देवी-देवताओं की शक्ति में अविश्वास और देशभक्त भावनाओं, जो अंततः उसे अपने नियोक्ताओं से परेशानी में डाल दिया। उन्हें ओडिशा में प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय कवि के रूप में देखा जाता है।

राधानाथ राय एक अत्यंत नम्र व्यक्ति थे। वह बड़े विद्वान थे और कई भाषाओं के पंडित थे। अपनी साहित्यिक प्रतिभा तथा पांडित्य के लिए वह कभी भी अभिमान नहीं करते थे बल्कि उन्होंने आम जनता के एक दीन सेवक के रूप में मातृभूमि की

सेवा की थी। उनकी साहित्यिक रचनाओं के कारण ही उड़िया साहित्य को एक नया रूप मिला। प्रकृति-वर्णन में तो उन्हें महारथ हासिल थी। उनका एक मनोरम काव्य "विलिका" प्रकृति के वर्णन के कारण ही प्रसिद्ध हो गया है।

राधानाथ राय ने स्वाध्याय से अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। काव्य की प्रतिभा उनमें नैसर्गिक थी। वे प्रकृति के पुजारी थे और प्रकृति में उन्हें परमात्मा के सत्ता के दर्शन होते थे। इस दृष्टि से उनकी मनोरम काव्य कृति 'चिलिका' बहुत प्रसिद्ध हुई। उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक आधार पर 'केदारगौरी', 'चंद्रभागा', 'महायात्रा', 'ऊषा' आदि काव्य ग्रंथों की रचना की। उनकी रचनाओं से देश प्रेम और गरीबों के प्रति सहानभूति का परिचय मिलता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्कल के जिन तीन साहित्यिकारों ने उड़िया साहित्य को समृद्ध करने में हाथ बंटाया था, उनमें राधानाथ राय मुख्यत: एक थे। उनका काव्य अपनी रोचकता के कारण 50 वर्षों तक उड़िया साहित्य पर छाया रहा। उत्कलवासी उन्हें बड़े प्रेम से कविवर कहकर पुकारते हैं।

राधानाथ राय की ग्रंथावली: कविवर राधानाथ के समस्त काव्य एक ग्रंथावली के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। उड़िया साहित्य में यह ग्रंथावली एक अमूल्य रत्न समझा जाता है। 'कवि के लिए हुए दरबार काव्य' से उनके देशप्रेम और गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति का परिचय मिलता है। संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान होने के कारण राधानाथ ने कवि कालिदास की संस्कृत रचना "मेघदूत" का उड़िया भाषा में सफल अनुवाद किया था।

'नंदिकेश्वरी' काव्य में प्रेम को सबसे बलवान करार देते हुए कवि मत व्यक्त करते हैं कि:

'महाबली प्रेम अटइ महिर
प्रेम सिना करे अबला कु बीर
प्रेम दिए बुद्धि उद्योग साहस
प्रेम करिपारे अबश कु बश।
भीरु नाम जेणु बहोंति स्वभावे
बीर हुअंति से प्रेमर प्रभावे।'

इस धरती पर प्रेम सबसे बलवान होता है। वह अबला को बीरांगना बना देता है। युवाओं को बुद्धिमान, उद्योगी, साहसी बना देता हैं। प्रेम के प्रभाव से स्वभाव से भीरु व्यक्ति भी वीर बन जाता है।

'केदारगौरी' काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि प्रेमी एक-दूसरे के बिना अपने जीवन को व्यर्थ मानते हैं। अभिसारिका गौरी के संकेत स्थल में पहुँचने से पहले एक बाघ वहाँ आ जाता है। उससे बच कर गौरी एक गुफा में छुप जाती है। उसके

अनजाने में उसका अंगवस्त्र रास्ते में ही गिर पड़ता है। हिरन का शिकार करके आ रहा बाघ के मुँह से खून निकल रहा था। अंगवस्त्र को रास्ते में पाकर उसका टुकडा-टुकडा करने लगता है। बाघ के चले जाने के बाद केदार (प्रेमिक) वहां आ पहुँचता है। खून से सिक्त अंगवस्त्र तथा बाघ के पद-चिन्ह को देखकर सोचने लगता है कि गौरी को बाघ खा गया होगा। अपनी प्रेमिका की मौत से दु:खी होकर रोने लगता हैं और पश्चाताप करने लगता है:

'गौरी कु सम्बोधि कहे बीर कांदि
आहारे पराणेश्वरी !
तो निधन भागी मुहि सिना, जेणु
आसिलिनि बेग करि।
श्वपद शंकुल बनकु निशिरे
प्राणाधिकाकु पेषिलि
धिक ए प्राण कु ! छार प्राण नेइ
किम्पा भवने बसिलि।'

गौरी को सम्बोधित कर केदार रोते हुए बोलने लगते हैं- "री प्राणेश्वरी! तेरी मृत्यु के लिये मैं जिम्मेदार हूँ क्योकि मैं यहाँ जल्दी नहीं आ सका। जानवरों से भरे हुए जंगल को अपनी जान से प्यारी प्रिया को रात में क्यों बुलाया? मेरे जीवन को धिक्कार है। क्यों इस नगन्य जीवन को लेकर मैं घर पर बैठा रहा।"

'उषा' काव्य में भी वही हुआ है। उषा के न मिलने से उसका जीवन टिक पाना असम्भव है:

'उषा गत प्राण, उषा तार ध्यान, उषा ता गति
उषा न लभिले पारिब कि प्राणे तिले बरति?
किल हेब ए जीवन मोहर उषा-बिहुने
एभलि जीवन ठारु मृत्यु श्रेय सहस्र गुणे।'

नायिका उषा प्रेमिक जयंत का प्राण, ध्यान तथा गति है। उषा के बिना वह जिंदा नहीं रह सकता है। उसका जीवन उषा के बिना विफल बन जाएगा। इस प्रकार के जीवन से मृत्यु ही श्रेयष्कर है। नायक जयंत सोचते हैं कि उषा के बिना जीवन धारण करना बेकार है:

'मनु करिथिला निराशे प्रणय प्रसंग दुर
एबे अंकुरिला हृदये उदाम प्रेम-अंकुर।'

निराशा के कारण उषा के मन से प्रेम-प्रसंग दूर हो गये थे। जयंत को देखने के बाद उसके मन में प्रेम का अंकुर फुटने लगा।

राधानाथ राय के काव्य के प्रमुख सार इस प्रकार हैः

प्रेम दुनिया में सबसे बलवान है। प्रेम, प्रेमियों को साहसी बना देता है। प्रेमियों का जीवन एक-दूसरे पर अवलम्बित होता है। प्रेम का एकनिष्ठ-रूप राधानाथीय प्रणय चेतना की विशेषता है। एक-तरफा प्रेम किसी पक्ष के हित का साधन नहीं कर सकता है। प्रचलित मान्याताओं और परम्पराओं, रीति-रिवाजों के खिलाफ जाने के लिये प्रेमियों को प्रेम उकसाता है। अपने प्रेम पर इन प्रेमियों को बड़ा अभिमान होता है। मानव समाज का हिस्सा है। समाज तथा परिवार से दूर भाग रहे प्रेमियों को कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से परोक्ष-संदेश दिया है। वे उन प्रेमियों पर व्यंग्य-विद्रुप कसे हैं जो सुधरने का नाम नहीं लेते हैं और अपने समाज से दूर भागते चले जाते हैं।

कविवर राधानाथ राय का लगभग 50 वर्ष की आयु में निधन हो गया। वे आज जीवित नहीं हैं लेकिन घर-घर में उनकी रचनाएं पढ़ी जाती हैं।

****

संदर्भ

1. नंदिकेश्वरी-राधानाथ ग्रथावली. बालू बजार, कटक: विद्या प्रकाशन, 2015, पृ.-71

2. केदारगौरी-राधानाथ ग्रथावली. बालू बजार, कटक: विद्या प्रकाशन, 2015, पृ.-39, 40, 41

5. उषा-राधानाथ ग्रथावली. बालू बजार, कटक: विद्या प्रकाशन, 2015, पृ.-99-100, 103

राजकुमार दास

प्रबंधक (राजभाषा)

इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, भुवनेश्वर

काजी नजरुल इस्लाम

'विद्रोही कवि' के नाम से मशहूर काजी नजरुल इस्लाम को भारत और बांग्लादेश में बेहद सम्मान के साथ याद किया जाता है। काजी नजरुल इस्लाम का जन्म 24 मई 1899 को पश्चिम बंगाल के आसनसोल के पास चुरुलिया गांव के एक मुस्लिम तालुकदार घराने में हुआ था। घर का माहौल पूरी तरह मजहबी था। उनके पिता काजी फकीर अहमद इमाम थे और एक मस्जिद की देखभाल करते थे। नजरुल बचपन में काफी खोए-खोए रहते थे। इसके चलते रिश्तेदार इन्हें 'दुक्खू मियां' पुकारने लगे। नजरुल की शुरुआती तालीम मस्जिद द्वारा संचालित मदरसे में हुई। जहां उन्होंने कुरान, हदीस और इस्लामी फलसफे को पढ़ा। महज 10 वर्ष की आयु में ही उनके पिता की मौत हो गई। परिवार को सहयोग करने के लिए नजरूल पिता की जगह बतौर 'केयरटेकर' मस्जिद में काम करने लगे। अजान देने का काम भी उनके जिम्मे था। अपनी तालीम भी इस दौरान उन्होंने जारी रखी।

1917 में नजरूल ने ब्रिटिश आर्मी जॉइन कर ली। नजरूल ने 1920 में ब्रिटिश भारतीय सेना छोड़ दी और 49वीं बंगाल रेजिमेंट को भंग कर दिया गया। ब्रिटिश भारतीय सेना में सेवा देने के बाद, नजरूल ने खुद को कलकत्ता में एक पत्रकार के रूप में स्थापित किया। इस दौरान उन्होंने ब्रिटिश राज की आलोचना की और अपनी काव्य रचनाओं जैसे बिद्रोही ('द रिबेल') और "भांगर गान" ('द सॉन्ग ऑफ डिस्ट्रक्शन'), के माध्यम से क्रांति का आह्वान किया। राजनीतिक और सामाजिक न्याय के लिए नजरूल की सक्रियता ने उन्हें "बिद्रोही कोबी" (विद्रोही कवि) की उपाधि दी। "विद्रोही" की कुछ पंक्तियाँ (अनुदित):

मैं अनिर्वचनीय दुःख रहा हूँ,
मैं कुंवारी की कांप पहला स्पर्श कर रहा हूँ
मैं अपने पहले चोरी चुंबन के धड़कते कोमलता हूँ।
मैं आच्छादित प्रियतम की क्षणभंगुर झलक हूँ,
मैं उसकी निरंतर गुप्त निगाहें हूँ ...
मैं पृथ्वी की गोद में जलता हुआ ज्वालामुखी हूँ,
मैं जंगल की जंगल की आग हूँ,
मैं नर्क का क्रोध का भयानक समुद्र हूँ!

मैं बिजली के पंखों पर खुशी और गहराई के साथ सवारी करता हूँ!
मैं चारों ओर दुख और भय बिखेरता हूँ,
मैं इस दुनिया में भूकंप लाता हूँ! "(8वाँ छंद)"
मैं शाश्वत विद्रोही हूँ,
मैं इस दुनिया से परे अपना सिर उठाता हूँ,
ऊँचा, कभी सीधा और अकेला!

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी राष्ट्रवादी सक्रियता के कारण उन्हें औपनिवेशिक ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा बार-बार कैद किया गया। जेल में रहते हुए, नजरूल ने "राजबंदी की जनबन्दी" (एक राजनीतिक कैदी का बयान) लिखा। बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के दौरान उनके लेखन ने पूर्वी पाकिस्तान के बंगालियों को बहुत प्रेरित किया। नजरूल के लेखन ने स्वतंत्रता, मानवता, प्रेम और क्रांति जैसे विषयों की खोज की। नजरूल ने 12 अगस्त 1922 को एक द्वि-साप्ताहिक पत्रिका, धूमकेतु ('धूमकेतु') शुरू की जो ब्रिटिश साम्राज्य की आलोचनात्मक थी। "विद्रोही कवि" का उपनाम अर्जित करते हुए नजरूल ने ब्रिटिश राज अधिकारियों के संदेह को जगाया। पुलिस ने सितंबर 1922 में धुमकेतु के कार्यालय पर तब छापा मारा, जब उसने एक राजनीतिक कविता "अनंदमयी मन" प्रकाशित की। नजरूल को 23 जनवरी 1923 को गिरफ्तार किया गया और उन पर देशद्रोह का आरोप लगाया गया। अदालत में उन्होंने एक लंबी बहस पेश कीं, जो उन्होंने कहा था उसका एक अंश प्रस्तुत है:

"मुझ पर देशद्रोह का आरोप लगाया गया है ... मेरे लिए याचना करने के लिए, सभी राजाओं के राजा, सभी न्यायाधीशों के न्यायाधीश, शाश्वत सत्य जीवित भगवान ... मैं एक कवि हूं; मुझे भगवान ने अव्यक्त को व्यक्त करने के लिए, अप्रकाशित को चित्रित करने के लिए भेजा है। कवि की वाणी से सुनाई देने वाला ईश्वर है... मैं ईश्वर का यंत्र हूं। यंत्र अटूट नहीं है, लेकिन भगवान को तोड़ने वाला कौन है?"

14 अप्रैल 1923 को उन्हें अलीपुर जेल से हुगली की जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। उन्होंने ब्रिटिश जेल अधीक्षक द्वारा दुर्व्यवहार का विरोध करते हुए 40 दिनों का उपवास किया, जो महीने से अधिक समय बाद तोड़ दिया गया और अंततः दिसंबर 1923 में उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया। नजरूल ने कारावास की अवधि के दौरान कई कविताओं और गीतों की रचना की। 1920 के दशक में, ब्रिटिश भारत सरकार ने उनके कई लेखन पर प्रतिबंध लगाया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1923 में अपना नाटक "बसंत" नजरूल को समर्पित किया। नजरूल ने टैगोर को धन्यवाद देने के लिए "आज सृष्टि शुखर उल्लाशे" कविता लिखी। अगस्त 1924 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "बिशेर बंशी" ('द फ्लूट ऑफ पॉइजन'), को ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था।

"बिशेर बंशी" ने ब्रिटिश राज के खिलाफ भारत में विद्रोह का आह्वान किया।

नजरुल ब्रिटिश भारत में खिलाफत आंदोलन के आलोचक थे, जिसकी उन्होंने "खोखले धार्मिक कट्टरवाद" के रूप में निंदा की। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी तरह से राजनीतिक स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी आलोचना की। नजरूल लोगों को ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदोलन करने के लिए प्रोत्साहित करने में सक्रिय हो गए और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बंगाल राज्य इकाई में शामिल हो गए। मुजफ्फर अहमद के साथ, नजरूल ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता और मजदूर वर्ग की सेवा के लिए प्रतिबद्ध एक सामाजवादी राजनीतिक दल, श्रमिक प्रजा स्वराज दल (श्रमिकों और किसानों की पार्टी) को संगठित करने में भी मदद की।

1921 में कोमिला की अपनी यात्रा के दौरान, नजरूल एक युवा बंगाली हिंदू महिला, प्रमिला देवी से मिले, जिनसे उन्हें प्यार हो गया और उन्होंने 25 अप्रैल 1924 को शादी कर ली। ब्रह्म समाज ने एक मुस्लिम से शादी करने के लिए ब्रह्म समाज की सदस्य प्रमिला की आलोचना की। मुस्लिम धर्मगुरुओं ने नजरूल की हिंदू महिला से शादी के लिए आलोचना की। उनके लेखन के लिए उनकी आलोचना भी की गई थी। विवाद के बावजूद, नजरूल की लोकप्रियता और "विद्रोही कवि" के रूप में प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हुई। 1930 में, उनकी पुस्तक "प्रलयशिखम" पर प्रतिबंध लगा दिया गया और उन्हें ब्रिटिश भारतीय औपनिवेशिक सरकार द्वारा देशद्रोह के आरोपों का सामना करना पड़ा।

नजरूल ने "आधुनिक विश्व साहित्य" शीर्षक से निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने साहित्य की विभिन्न शैलियों और विषयों का विश्लेषण किया। 1928 और 1935 के बीच, उन्होंने 800 गीतों वाले 10 खंड प्रकाशित किए, जो 600 से अधिक शास्त्रीय रागों पर आधारित थे। कीर्तन के बाद लगभग 100 लोकगीत थे और कुछ 30 देशभक्ति गीत थे। 1941 में उनके कोलकाता लौटने के समय से लेकर बीमार पड़ने तक, नजरूल ने 2600 से अधिक गीतों की रचना की, जिनमें से कई खो गए हैं। बाउल, झुमुर, संथाली लोकगीत, झंपान या सपेरों के लोक गीतों, भटियाली और भओइया पर आधारित उनके गीतों में एक ओर लोक-गीतों की धुन और दूसरी ओर काव्यात्मक सौंदर्य के साथ एक परिष्कृत गीत शामिल है। नज़रूल ने बच्चों के लिए कविताएँ भी लिखी है।

8 अगस्त 1941 को रवींद्रनाथ टैगोर की मृत्यु के बारे में सुनकर, हैरान नजरुल ने टैगोर की याद में दो कविताओं की रचना की। दो कविताओं में से एक, "रबीहारा" (रबी की हानि, या रबी के बिना), ऑल इंडिया रेडियो पर प्रसारित की गई थी।

आजादी के बाद का दिन उनके लिए तकलीफो भरा रहा। तबियत खराब होने कारण उन्होंने अपने जीवन के अंतिम बीस वर्ष बीमारियों से जूझते हुए काटे। सन 1962 ई. में ही उनकी पत्नी का देहांत हो गया। सन 1972 ई. में आजाद बांग्लादेश ने उन्हें

अपना 'राष्ट्रकवि' घोषित किया। उन्हें विभिन्न सरकारों एवं संस्थानों द्वारा प्राप्त सम्मानों का विवरण निम्नवत है-

* मानद डी. लिट से सम्मानित किया गया।
* सन 1974 और 1976 में क्रमश: ढाका विश्वविद्यालय एवं बांग्लादेश के राष्ट्रपति न्यायमूर्ति अबू सादात मुहम्मद सईम द्वारा एकुशी पदक से सम्मानित किया गया।
* उन्हें 1945 में जगततारिणी स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया था, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा बंगाली साहित्य में काम करने के लिए सर्वोच्च सम्मान है।
* सन 1960 में भारत के तीसरे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्म भूषण से सम्मानित किया गया।
* बांग्लादेश सरकार ने भारत सरकार की इजाजत से उन्हें ढाका में बसने के लिए ले गई। ढाका जाने के 4 वर्षों के उपरांत उनकी मौत हो गई। ढाका यूनिवर्सिटी के कैम्पस में उन्हें दफन किया गया। मस्जिद के साए में ही उनका सफर शुरू हुआ था और वहीं पे खत्म हो गया।

कलमकारों का सफर कभी खत्म नहीं होता। उनका लिखा उनके शरीर के मिट्टी होने के बाद भी बना रहता है और उसी में रचे-बसे वे बने रहते हैं।

****

चेतना शर्मा

प्रबंधक (राजभाषा)

इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, आसनसोल

नर्मदाशंकर 'नर्मद'

(1833-1886)

नर्मदाशंकर 'नर्मद' (1833-1886) गुजराती साहित्य के कवि, विद्वान एवं महान वक्ता थे। वे नर्मद नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने ही 1880 के दशक में सबसे पहले हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का विचार रखा था।

प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीयता होती है। उस राष्ट्रीयता का अपना इतिहास होता है। गुजराती राष्ट्रीय चेतना की कविता में राष्ट्रीय अस्मिता, समाज-सुधार तथा राष्ट्र के विकास के लिए उद्योगों के विकास के रूप में दिखाई पड़ती है। उनकी प्रसिद्ध रचना "हुन्नरखान की चढ़ाई" में उन्होंने लोगों को अपना आलस्य त्याग कर युद्ध के रूपक के द्वारा उद्योग की दिशा में जाने की प्रेरणा दी। हृदय में हिम्मत, हाथ में हुनर होगी तभी देश की दरिद्रता टलेगी।

गुजराती साहित्य के आधुनिक युग का समारंभ कवि नर्मदाशंकर 'नर्मद' से होता है जो कि एक युगप्रवर्तक साहित्यकार थे। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के आरंभिक अंश को भारतेंदु युग की संज्ञा दी जाती है, उसी प्रकार गुजराती में नवीन चेतना के प्रथम कालखंड को नर्मद युग कहा जाता है। हरिशचन्द्र की तरह ही उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने गुजराती साहित्य को गद्य, पद्य सभी दिशाओं में समृद्धि प्रदान की, लेकिन काव्य के क्षेत्र में उनका स्थान विशेष है। लगभग सभी प्रचलित विषयों पर उन्होंने काव्य रचना की। महाकाव्य और महाछंदों के स्वप्नदर्शी कवि नर्मद का व्यक्तित्व गुजराती साहित्य में अद्वितीय है। गुजराती के प्रख्यात साहित्यकार मुंशी ने उन्हें 'अर्वाचीनों में आद्य' कहा है।

गुजराती राष्ट्रीय अस्मिता के संदर्भ में नर्मद का महत्वपूर्ण स्थान है। वे भारतेंदु के समकालीन थे। सूरत के एक नागर परिवार में 1833 में नर्मद का जन्म हुआ था। उन्होंने बंबई के ऐल्फिन्स्टन कॉलेज में शिक्षा ग्रहण की। सूरत और मुंबई के सामाजिक एवं सांस्कृतिक हवामान के परिवर्तनों का अनुभव करते हुए नर्मद बड़े हुए। विद्यार्थी काल से ही वे समाज को बदलने का स्वप्न देखते थे। नर्मद स्वयं कविता भी लिखते थे लेकिन उनका मानना था कि गद्य लिखना कविता की अपेक्षा अधिक कठिन है। नर्मद ने "मारी हकीकत" शीर्षक से आत्मकथा लिखी है। वे अपनी कविता, व्याख्यान, निबंध, पत्रकारिता आदि माध्यमों का प्रयोग अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए करते थे। नर्मद ने सामाजिक सरोकारों, राष्ट्रप्रेम व देशभक्ति पर अपने विचारों की निर्भिक अभिव्यक्ति की। उनका मानना था कि एकता के लिए, देशभक्ति के लिए दूसरों के

सुख का भी ध्यान देना पड़ता है।

उनके बाद उनका अनुसरण करने वाले कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवजागरण की मशाल प्रज्ज्वलित रखी। गुजराती साहित्य के इतिहास में नर्मद का एक विशिष्ट स्थान बना रहा। उनमें राजशक्ति तथा राष्ट्रभक्ति दोनों दिखाई पड़ती हैं। अंग्रेजों के प्रति उनके मन में विद्रोह है।

नर्मद ने गुजराती अस्मिता का गौरवगान किया।

"जय जय गरवी गुजरात" आज गुजरात का राज्यगीत है।

"जय जय गरवी गुजरात
जय जय गरवी गुजरात
तेरी ऊँची सुंदर जात
जय जय गरवी गुजरात।"

प्रस्तुत कविता में उन्होंने कहा है कि गुजरात केवल गुजरातियों के लिए नहीं हैं, बल्कि सभी धर्म, जाति, भाषा-भाषी जो गुजरात में रहते हैं। गुजरात से प्रेम करते है, उन सभी का गुजरात है, भाषा को लेकर तथा गुजरात में रहने वालो को लेकर नर्मद के विचार आधुनिक एवं प्रगतिशील है। राष्ट्रीयता का यह उनका अपना विचार था।

****

चंदन प्रकाश मेंढ़े
वरि. प्रबंधक (राभा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये!" इस अमर 'विप्लव गीत' के रचनाकार पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म 8 दिसंबर, 1897 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर राज्य के शाजापुर परगने के भयाना गांव में एक अत्यंत विपन्न वैष्णव ब्राह्मण परिवार में हुआ। बालकृष्ण शर्मा अपने अध्ययनकाल में ही युगीन साहित्यिक वातावरण और राष्ट्रीय आंदोलन की हलचलों में पर्याप्त दिलचस्पी लेने लगे थे और उन सबका उनके युवामन पर प्रभाव भी दर्ज हो रहा था। इसी दौरान वे माखनलाल चतुर्वेदी और मैथिलीशरण गुप्त के संपर्क में आए। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में विधिवत भाग लिया।

उनका तन-मन भारतमाता को स्वतंत्र कराने की उमंग से ऐसे सराबोर था कि किसी अखबार में दिसंबर, 1916 में लखनऊ में कांग्रेस का महाधिवेशन होने की खबर पढ़ी तो जैसे-तैसे कुछ पैसे जुटाये और कंधे पर कंबल व हाथ में लाठी लेकर नंगे पैर ही उसमें शामिल होने चल पड़े। महाधिवेशन में उन्हें अपने चहेते नायकों लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गणेश शंकर विद्यार्थी के अलावा माखनलाल चतुर्वेदी व मैथिलीशरण गुप्त जैसी विभूतियों से परिचय व उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ। बाद में राजनीति, इतिहास, दर्शन, धर्म, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्ययन में रत होने के साथ वे 'प्रताप' के संपादन में भी विद्यार्थी जी का हाथ बंटाने लगे। उनकी मेहनत रंग लाई और थोड़े ही दिनों में उन्होंने राजनीतिक व साहित्यिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया और कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। उनकी 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ' पंक्ति तो लोगों का कंठहार बन गयी। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया तो उसमें शामिल होने के लिए उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया।

संयुक्त प्रांत के सत्याग्रहियों के पहले ही जत्थे में उनका नाम था, जिसके पुरस्कार स्वरूप गोरी सरकार ने 1921 में उन्हें डेढ़ वर्ष की सजा दी। यह सजा उन्होंने अदल-बदल कर कई जेलों में काटीं। आगे चलकर छह बार सुनायी गयी और सजाओं में उन्हें घोर यातनाओं के बीच अपने जीवन के नौ साल जेलों में बिताने पड़े। इनमें ज्यादातर सजाओं का कारण उनके वे लेख अथवा भाषण थे, जो उन्होंने गोरे हुक्मरानों के विरोध में लिखे या दिए।

लंबे जेल जीवन में ही वे आचार्य जे.बी.कृपलानी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन और जवाहरलाल नेहरू जैसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बड़े नेताओं के संपर्क में आये। 'नवीन' की ज्यादातर कृतियां और कविताएं जेलों में ही रची गयीं क्योंकि जेल से बाहर

आकर राजनीतिक हलचलों व 'प्रताप' के संपादन से जुड़े कामों में व्यस्त हो जाते थे। 1921 से 1923 तक उन्होंने राष्ट्रीय विचारों पर आधारित 'प्रभा' नामक एक पत्रिका का भी संपादन किया, जबकि कानपुर के सांप्रदायिक उपद्रवों में विद्यार्थी जी की बलि के कई साल बाद तक 'प्रताप' के प्रधान संपादक बने रहे।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का स्थान अविस्मरणीय है। उनकी कविता में स्वच्छन्दतावादी धारा के प्रतिनिधि स्वर के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना, गांधी दर्शन और संवेदनाओं की झंकृतियां समान ऊर्जा और उठान के साथ सुनी जा सकती हैं-

सरद जुन्हाई अब कहां-कहां बसंत उछाह
जीवन में अब बीच रह्यो चिर निदाघ कौ दाह।
हम बिषपायी जनम के सहैं अबोल-कुबोल
मानत नैंकु न अनख हम जानत अपनो मोल।

'नवीन' जी अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर जीवनभर पत्रकारिता और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े रहे-

इस धरती पर लाना है
हमें खींचकर स्वर्ग, कहीं यदि उसका और ठिकाना है।

राष्ट्रीय योद्धा के रूप में नवीन जी का व्यक्तित्व विशिष्ट पहचान रखता है। वे स्वतंत्रता आंदोलन में भी हिस्सा लेने लगे। नवीन जी की जेल यात्राओं का अनवरत सिलसिला देश की आजादी तक निरंतर चलता रहा। इनके महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ कुमकुम, रश्मिरेखा, अपलक, क्वासि, उर्मिला, विनोबा स्तवन, प्राणार्पण तथा हम विषपायी जन्म के हैं।

शिमला-समझौते में निराशा का अवतरण, मुसलमान भाइयों की खिदमत में, तुम्हारे उपवास की चिन्ता, 'एक ही थैली के चट्टे-बट्टे' आदि शीर्षकों से जो असंख्य अग्रलेख और निबंध, जेल से बाहर के अपने जीवन में नवीन ने लिखे, वे 'प्रताप' और 'प्रभा' में प्रकाशित होकर सतत् चर्चाओं के केन्द्र में रहे। उन्होंने अपनी पत्रकारिता संबंधी भाषाओं का परिचय दिया और प्रभा के झण्डा अंक के द्वारा हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रकारिता में एक गौरवपूर्ण पृष्ठ भी जोड़ा-

भरतखण्ड के तुम, हे जन-गण
चमक रहे हैं तब शोणित में इस भारतमाता के रज-कण।

बालकृष्ण शर्मा के काव्य जीवन की सबसे प्रसिद्ध कृति **"हम विषपायी जनम के"** है। इसमें भी विप्लव-गायन सबसे प्रसिद्ध है-

गल-गल हिय का उपल बह चला
सकल विधान उलटने को यह क्रान्ति आ गई विकराल।

बालकृष्ण शर्मा एक सच्चे कवि की तरह पूरे समाज की चिन्ता करते हैं। उनकी कविता का एक हिस्सा मनोवैज्ञानिक है-

अपनी और परायों की सब चिन्ताओं का भार लिए
चला जा रहा है यह मानव मन में एक बुखार लिये,

वे मजदूरों, किसानों का भी आह्वान करते हैं-

उठो, उठो ओ नंगों भूखों, ओ मजदूर किसान उठो।
आज मुक्ति के अरमानों ने मिलकर यों ललकारा है।
लो अब सोने वालों जागो, गूंज रहा नक्कारा है।

नवीन जी की कविता में राष्ट्रीयता और स्वच्छन्दता दोनों ही प्रवृत्तियां मिलती हैं।

आ पहुंचा है जिस ठौर मनुष्य, उस ठौर आज है सर्वनाश।
यदि वह अपने हिय को मथकर, कर ले न आज अपना विकास॥

कवि कहते हैं कि कि उसकी वाणी के कण-कण में जोश का स्वर भरा हुआ है। उसके शरीर का एक-एक रोम परिवर्तन के स्वर दे रहा है। विचारों के परिवर्तन से ही महानाश होगा और उसके बाद ही समाज का नवनिर्माण संभव होगा।

****

बलबीर सिंह
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, देहरादून

मोहम्मद हुसैन आजाद

(1830-1910)

मोहम्मद हुसैन आजाद का जन्म 05 सितंबर, 1830 को दिल्ली में हुआ था। जब वे 4 चार वर्ष के थे, उनकी माता का देहान्त हो गया था, तब उनकी बुआ ने उनका लालन-पालन किया। उनकी बुआ का भी जल्द ही देहावसान हो गया, जिससे इनके मन पर गहरा आघात लगा। मोहम्मद हुसैन आजाद के पिता मौलवी मोहम्मद बाकर उत्तर भारत के प्रथम उर्दू अखबार "देहली उर्दू अखबार" के सम्पादक थे, साथ ही उर्दू के प्रथम शहीद पत्रकार भी थे।

मोहम्मद हुसैन 'आजाद' स्नातक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने पिता के समाचार पत्र में प्रकाशन के कार्य में सहायता करते थे। वे अपने इस समाचार पत्र के माध्यम से अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह का समर्थन करते थे, जिसके कारण इनके पिता को गिरफ्तार किया गया एवं मार दिया गया। तत्पश्चात् ब्रिटिश अधिकारियों ने आजाद को और इनके परिवार को, बूढ़ी महिलाओं एवं बच्चों सहित, उनके घर और दिल्ली से जबरदस्ती निकाल दिया। इसके बाद वे छुपते-छुपाते कुछ दिन लखनऊ में रहे एवं इसके बाद लाहौर चले गए। जहां उन्होंने जनरल पोस्ट ऑफिस में नौकरी कीं, तत्पश्चात् डायरेक्टर पब्लिक इंस्ट्रक्टर की नौकरी कीं। उसके बाद जब "अंजूमन पंजाब" की स्थापना हुई, तब वहां वे सेकेट्री के पद पर नियुक्त हुए। वहां उनकी प्रतिभा को निखारने का उन्हें मौका मिला। इसके पश्चात् वे गवर्मेन्ट कॉलेज, लाहौर में अरबी के अस्थायी प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए, एवं बाद में उसी पद पर स्थायी हो गए। स्थायी नौकरी के पश्चात् उन्होंने मध्य एशिया एवं अन्य स्थानों पर यात्राएं कीं, जिससे उनकी लेखनी को विस्तार मिला और उन्होंने कई रचनाएं लिखीं।

मोहम्मद हुसैन 'आजाद' ने उर्दू लेखनी को एक नए अंदाज में लिखा। उनकी प्रसिद्ध रचना "आबे हयात" है। इसके अलावा उन्होंने 'सुखदांने फारस', 'कसमें हिन्द', 'दरबारे अकबरी', 'निगारिस्ताने', 'फारस', 'ईरान सैर' तथा 'उर्दू की किताबें' लिखीं। आजाद शायर के साथ-साथ निबन्धकार, आलोचक और शोधकर्ता भी थे। उन्होंने उर्दू भाषा की उत्पत्ति, विकास, इतिहास एवं भाषा की हकीकत पर शोध आलेख लिखें। उन्होंने अपनी गजल 'हुब्ब-ए-वतन' में राष्ट्रीयता को प्रमुखता से उल्लेखित किया है-

ऐ आफताब-ए-हुब्ब-ए-वतन तू किधर है आज
तू है किधर कि कुछ नहीं आता नजर है आज
तुझ बिन जहाँ है आँखों में अंधेर हो रहा

और इंतिजाम-ए-दिल है जबर जेर हो रहा
ठंडे हैं क्यूँ दिलों में तिरे जोश हो गए
क्यूँ सब तिरे चराग हैं खामोश हो गए
हुब्ब-ए-वतन की जिंस का है कहत-साल क्यूँ
हैराँ हूँ आज-कल है पड़ा उस का काल क्यूँ
कुछ हो गया जमाना का उल्टा चलन यहाँ
हुब्ब-ए-वतन के बदले है बुगज-उल-वतन यहाँ
बिन तेरे मुल्क-ए-हिन्द के घर बे-चराग हैं
जलते एवज चरागों के सीनों में दाग हैं
कब तक शब-ए-सियाह में आलम तबाह हो
ऐ आफ्ताब इधर भी करम की निगाह हो
आलम से ता कि तीरा-दिली दूर हो तमाम
और हिन्द तेरे नूर से माश्मूर हो मुदाम
उल्फत से गर्म सब के दिल-ए-सर्द हों बहम
और जो कि हम-वतन हों वो हमदर्द हों बहम
ता हो वतन में अपने जर-ओ-माल का वफूर
और मुम्लिकत में दौलत-ओ-इकबाल का वफूर
सब अपने हाकिमों के लिए जाँ-निसार हूँ
और गर्दन-ए-हरीफ पे खंजर की धार हों
इल्म-ओ-हुनर से खल्क को रौनक दिया करें
और अंजुमन में बैठ के जलसे किया करें
लबरेजाँ जोश-ए-हुब्ब-ए-वतन सब के जाम हों
सरशार-ए-जौक-ओ-शौक दिल-ए-ख़ास-ओ-आम हों।

मोहम्मद हुसैन आजाद जी उर्दू को लेखनी के नए आयाम देकर और नज्म की नई नस्ल विकसित कर 22 जनवरी, 1910 को इस संसार से विदा हो गए। उनकी मजार दातागंज के पास है। उन्होंने अपनी जिन्दगी का सफर अंग्रेजों के विरोध से शुरू किया था। उन्हें इस कारण अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा। समय चक्र के साथ उनकी विचारधारा परिवर्तित होने पर अंग्रेजों ने उन्हें माफ कर दिया और "शम्सुल उलमा" के खिताब से उन्हें नवाजा।

****

निशा चोरेटिया
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मेरठ

विजय सिंह 'पथिक'

भारत के एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, कवि, लेखक विजय सिंह पथिक का जन्म 27 फरवरी, 1882 को हुआ। उन्हें 'पथिक' उपनाम से भी जाना जाता है। उनका जन्म बुलन्दशहर जिले के ग्राम गुठावली कलाँ के एक गुर्जर परिवार में हुआ था। उनके दादा, इन्द्र सिंह ने 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। पथिक जी के पिता हमीर सिंह गुर्जर को भी क्रान्ति में भाग लेने के आरोप में ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार किया था। इन पर अपनी क्रान्तिकारी व देशभक्ति से परिपूर्ण पारिवारिक पृष्ठभूमि का बहुत गहरा असर पड़ा। युवावस्था में ही उनका सम्पर्क रास बिहारी बोस और सचीन्द्र नाथ सान्याल जैसे क्रान्तिकारियों से हो गया था।

महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन से बहुत पहले पथिक जी ने बिजौलिया किसान आंदोलन के नाम से किसानों में स्वतंत्रता के प्रति अलख जगाने का काम किया था। 1912 में ब्रिटिश सरकार ने भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली लाने का निर्णय किया। इस अवसर पर भारत के गवर्नर जनरल, लार्ड हाडिंग ने दिल्ली प्रवेश करने के लिए एक शानदार जुलूस का आयोजन किया। उस समय अन्य क्रान्तिकारियों ने जुलूस पर बम फेंक कर लार्ड हार्डिग को मारने की कोशिश की। इसमें वायसराय साफ बच गया। रास बिहारी बोस, जोरावर सिंह, प्रताप सिंह, पथिक व अन्य सभी संबंधित क्रान्तिकारी अंग्रेजों के हाथ नहीं आये और वे फरार हो गए।

1915 में रास बिहारी बोस के नेतृत्व में लाहौर में क्रान्तिकारियों ने गदर आन्दोलन किया था। योजना यह थी कि एक तरफ तो भारतीय ब्रिटिश सेना को विद्रोह के लिए उकसाया जाए और दूसरी तरफ देशी राजाओं की सेनाओं का विद्रोह में सहयोग प्राप्त किया जाए। राजस्थान में इस क्रान्ति को संचालित करने का दायित्व विजय सिंह पथिक को सौंपा गया। उस समय पथिक फिरोजपुर षडयंत्र केस में फरार थे, इन्होंने दो हजार युवकों का दल तैयार किया और तीस हजार से अधिक बन्दूकें एकत्र की। दुर्भाग्य से अंग्रेजी सरकार पर क्रान्तिकारियों की देशव्यापी योजना का भेद खुल गया। देश भर में क्रान्तिकारियों को समय से पूर्व पकड़ लिया गया। पथिक और गोपाल सिंह ने गोला बारूद भूमिगत कर दिया और सैनिकों को बिखेर दिया गया। कुछ ही दिनों बाद अजमेर के अंग्रेज कमिश्नर ने पाँच सौ सैनिकों के साथ पथिक और गोपाल सिंह को खरवा के जंगलों से गिरफ्तार कर लिया और टाडगढ़ के किले में नजरबंद कर दिया। उन्हीं दिनों लाहौर षडयंत्र केस में पथिक का नाम उभरा और उन्हें लाहौर ले जाने के आदेश हुए। किसी तरह यह खबर पथिक को मिल गई और वो टाडगढ़ के किले से फरार हो गए। गिरफ्तारी से बचने के लिए पथिक ने अपना वेश राजस्थानी राजपूतों जैसा बना लिया और चित्तौडगढ़ क्षेत्र में रहने लगे। बिजौलिया से आये एक साधु सीताराम दास उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होनें पथिक जी को बिजौलिया आन्दोलन का नेतृत्व संभालने

को आमंत्रित किया। पथिक जी 1916 में बिजौलिया पहुँच गए और उन्होंने आन्दोलन की कमान अपने हाथों में संभाल लीं। विजय सिंह पथिक ने कानपुर से प्रकाशित गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा सम्पादित पत्र "प्रताप" के माध्यम से बिजौलिया के किसान आन्दोलन को समूचे देश में चर्चा का विषय बना दिया।

1920 में पथिक के प्रयत्नों से अजमेर में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना हुई। शीघ्र ही इस संस्था की शाखाएँ पूरे प्रदेश में खुल गई। इस संस्था ने राजस्थान में कई जन आन्दोलनों का संचालन किया। अजमेर से ही पथिक जी ने एक नया पत्र 'नवीन राजस्थान' प्रकाशित किया। 1920 में पथिक जी अपने साथियों के साथ नागपुर अधिवेशन में शामिल हुए और बिजौलिया के किसानों की दुर्दशा और देशी राजाओं की निरंकुशता को दर्शाती हुई एक प्रदर्शनी का आयोजन किया। गांधीजी, विजय सिंह पथिक के बिजौलिया आन्दोलन से प्रभावित हुए। गांधीजी का उनके बारे में कहना था-"और लोग सिर्फ बातें करते हैं, परंतु पथिक एक सिपाही की तरह काम करता है।"

पथिक जी क्रांतिकारी व सत्याग्रही होने के अलावा कवि, लेखक और पत्रकार भी थे। अजमेर से उन्होंने 'नव संदेश' और 'राजस्थान संदेश' के नाम से हिन्दी के अखबार भी निकाले। 'तरुण राजस्थान' नाम के एक हिन्दी साप्ताहिक में वे "राष्ट्रीय पथिक" के नाम से अपने विचार भी व्यक्त किया करते थे। पूरे राजस्थान में वे राष्ट्रीय पथिक के नाम से अधिक लोकप्रिय हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उनके विचारों, उनका प्रकाशन और क्रांतिकारी तरीकों को देखकर ही उन्हें राजपूताना व मध्य भारत की प्रांतीय कांग्रेस का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। उनकी कविता की यह पंक्तियां लोगों की जुबान पर चढ़ी थीं, जिसमें उन्होंने कहा था-

'यश वैभव सुख की चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन न रहे,
यदि इच्छा है तो यह है, जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे।'

उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 1. अजय मेरु (उपन्यास), 2. पथिक प्रमोद (कहानी संग्रह), 3. पथिक के जेल के पत्र, 4. पथिक की कविताओं का संग्रह हैं।

पथिक जी जीवनपर्यन्त नि:स्वार्थ भाव से देश की सेवा में जुटे रहे। भारत माता का यह महान सपूत 28 मई, 1954 में चिर निद्रा में सो गया। पथिक जी की देशभक्ति नि:स्वार्थ थी और जब उनका निधन हुआ, उनके पास सम्पत्ति के नाम पर कुछ नहीं था। पथिक जी का वर्णन राजस्थान की जागृति के अग्रदूत, महान क्रान्तिकारी एवं एक सहृदय कवि के रूप में किया गया है। पथिक जी के नेतृत्व में संचालित हुए बिजौलिया आन्दोलन को इतिहासकार देश का पहला किसान सत्याग्रह मानते हैं। भारत सरकार ने विजय सिंह 'पथिक' की स्मृति में डाक टिकट जारी किया।

****

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, जयपुर

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र

मिश्र जी का जन्म 12 सितम्बर, 1898 को राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में हुआ था। उनके पिता पं. नारायण प्रसाद मिश्र एवं माता श्रीमती जानकी देवी थीं। उन्होंने 1914 में स्टेट स्कूल से मैट्रिक, 1918 में हिस्लाप कॉलेज नागपुर से बी. ए., 1920 में एम. ए. मनोविज्ञान, 1921 में एल. एल. बी. तथा 1939 में शोध प्रबंध तुलसी दर्शन पर डी. लिट् की उपाधि प्राप्त की। हिंदी साहित्य जगत के जाज्वल्यमान नक्षत्र डॉ. मिश्र जी का कर्मक्षेत्र अत्यंत विशाल एवं गौरवशाली है। आरम्भ में रायपुर में वकालत करने के उपरांत वे 1923 से 1940 तक रायगढ़ रियासत में क्रमशः नायब दीवान, दीवान व एक वर्ष न्यायाधीश के पद पर रहे, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामप्यारी देवी सदैव उनके प्रशस्त कर्मक्षेत्र की अभिन्न सहयोगिनी रही।

डॉ. मिश्र भारत के ऐसे प्रथम शोधकर्ता थे, जिन्होंने अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी के बदले हिंदी में अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत कर डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की। वे नागपुर विद्यापीठ में हिंदी के मानसेवी विभागाध्यक्ष, रायपुर के एस.बी.आर. कॉलेज एवं दुर्गा आर्ट्स कॉलेज के प्रथम प्राचार्य, हैदराबाद एवं बड़ौदा विश्वविद्यालय के विजिटिंग प्रोफेसर, पुराने मध्यप्रदेश एवं महाकौशल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की हिंदी पाठ्यक्रम समिति के संयोजक भी रहे। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें भारत सेवक समाज की केन्द्रीय समिति में मनोनीत किया, उन्होंने शोध छात्रों के परीक्षक के रूप में अनेक विश्वविद्यालयों में अपनी अविस्मरणीय सेवाएं प्रदान की। मिश्र जी बिलासपुर में संभागीय सतर्कता अधिकारी एवं खैरागढ़ विश्वविद्यालय में उप कुलपति रहे। मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के तुलसी जयंती समारोह के भी अध्यक्ष रहे। वे राम कथा के मर्मज्ञ थे। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने साहित्य के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में भी उल्लेखनीय सेवाएँ दी थीं। वे **रायगढ़, खरसिया** तथा **राजनांदगांव** की **नगर पालिकाओं के अध्यक्ष** रहे तथा **रायपुर नगर पालिका के वरिष्ठ उपाध्यक्ष** रहे। अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना व प्रगति में मिश्र जी का अतुल्य योगदान रहा है।

जीव विज्ञान, कौशल किशोर, राम राज्य, साकेत संत, (भूमिका-श्री मैथिलीशरण गुप्त), तुलसी दर्शन, भारतीय संस्कृति, मानस में राम कथा, मानस माधुरी (भूमिका-प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद), जीवन संगीत, उदात्त संगीत आदि शताधिक कृतियों के साथ-साथ डॉ. मिश्र ने संपादन व अनुवाद के माध्यम से

भी साहित्य जगत को गौरवान्वित किया है। 4 सितम्बर, 1975 को राजनांदगांव में उनका देहावसान हुआ।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का दर्शनः- जीवन की नश्वरता और उसकी आकांक्षाओं को सहज शब्द देने वाले डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र आधुनिक युग के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार है। सरस्वती के सफल आराधक डॉ. मिश्र की कालजयी कृतियां खड़ी बोली हिन्दी की समृद्ध धरोहर हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि पं. बलदेव प्रसाद मिश्र हिन्दी की उन विभूतियों में हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रकाश अज्ञात रूप से विकीर्ण किया है। साहित्य के सभी अंगों पर सफलतापूर्वक उत्कृष्ट कृतियों की सृष्टि कर उन्होंने हिन्दी की सेवा की है।

डॉ. मिश्र की कृतियों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा से हिन्दी साहित्य के विविध अंगों के भण्डार की श्रीवृद्धि की है। गद्य और पद्य पर उनका असामान्य अधिकार था तथापि वे एक लब्धप्रतिष्ठित कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। डॉ. मिश्र मूलतः दार्शनिक थे, फिर भी उनका कवि व्यक्तित्व ही सर्वोपरि रहा है। यह अवश्य है कि उनकी कृतियों में उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की आभा सर्वत्र विद्यमान रही है। गद्य और पद्य दोनों में ही उनकी दार्शनिक एवं राष्ट्रीय चेतना दुरुह न होकर अत्यंत सरल रही है। जिसे प्रबुद्ध पाठकवर्ग से लेकर आमजन भी सहजता से हृदयंगम कर लेता है।

देवोनारायणःमातु पिता में स्वर्ग-संस्थितः
माता जानकी देवी कुल कल्याणकारिणी॥

(कोशल किशोर, भूमिका से)

डॉ. मिश्र देश प्रेमी साहित्यकार थे एवं खुज्जीखेरया (राजनांदगाँव) क्षेत्र से विधायक चुने गये। राजनीति के माध्यम से उन्होंने समाज सेवा ही की। **'राम राज्य'** महाकाव्य में लिखते हैं-

शासन से सम्बन्ध सभी का
शासन से ही जग उन्नति है।
लोक व्यवस्था संस्थापन का
शासन ही तो अंतिम गति है।

डॉ. मिश्र को संगठन के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व स्रलता प्राप्त हुई। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीन बार अध्यक्ष (प्रथम बार सागर, द्वितीय नागपुर व तृतीय चार नये मध्यप्रदेश के रायपुर अधिवेशन में): अखिल भारतीय प्राच्यमहासम्मेलन (नागपुर अधिवेशन) के हिन्दी विभागाध्यक्ष, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तुलसी जयंती समारोह के अध्यक्ष, गुजरात प्रदेशीय एवं बम्बई प्रदेशीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन एवं पदवीदान महोत्सव के एवं बंगीय हिन्दी परिषद् कलकत्ता के अनेक वर्षो तक अध्यक्ष,

समय-समय पर अनेक शैक्षणिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के उद्‌घाटनकर्ता, प्रधान अतिथि, अध्यक्ष आदि। आकाशवाणी की परामर्शदात्री समिति के सदस्य एवं बम्बई आकाशवाणी द्वारा प्रायोजित अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अध्यक्ष, भारती संगम के प्रदेश संयोजक आदि। प्रशासनिक क्षेत्र में भी आपने बहुप्रशंसित कार्य किये। एक कुशल प्रशासक के रूप में आप रायगढ़ नरेश के यहाँ लगातार सत्रह वर्षो तक नायब दीवान और दीवान रहे। यह आपके जीवन का सर्वश्रेष्ठ काल रहा है। इस अंचल में उच्च शिक्षा के विकास में भी आपका अमूल्य योगदान रहा है। एस.बी.आर. कॉलेज बिलासपुर (1944-47)। दुर्गा महाविद्यालय रायपुर (1948) तथा कल्याण महाविद्यालय भिलाई जैसी संस्थाओं की नीव रखी तथा प्राचार्य भी रहे। कमला देवी महिला महाविद्यालय राजनांदगांव के भी प्राचार्य रहे।

डॉ. मिश्र की संपूर्ण जीवनयात्रा के तीन पृथक-पृथक आयाम है। इन्हीं आयामों में हम डॉ. मिश्र के युगीन संदर्भ एवं जीवन दर्शन का सम्यक मूल्यांकन कर सकते हैं।

समाजसेवा के क्षेत्र से वे निष्काम समाजसेवी थे। अपने छात्र जीवन में ही उन्होंने बाल विनोदिनी समिति एवं 'मारवाडी सेवा समाज' की स्थापना की थी। डॉ. मिश्र ने इस संस्था के माध्यम से कई रचनात्मक कार्य किए। जनसेवा को जनार्दन सेवा मानने वाले डॉ. मिश्र को सन् 1952 से 1959 तक भारत सेवक समाज का प्रदेश संयोजक तथा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का सदस्य मनोनीत किया गया। डॉ. मिश्र ने भारत सेवक समाज के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण कार्य संपन्न कराये। पद, प्रतिष्ठा, धन, यश आदि से सदैव निस्पृह रहने वाले निष्काम समाज सेवी, साकेत संत डॉ. मिश्र की समाजसेवा अनुपम है। डॉ. मिश्र के राजनीतिक जीवन की शुरूआत सन् 1920 में हो गई थी जब उन्होंने ठाकुर प्यारेलाल सिंह के सहयोग से राजनांदगाँव में राष्ट्रीय माध्यमिक शाला की स्थापना की थी। डॉ. मिश्र की सक्रिय राजनीति से जुड़ा एक और प्रसंग सामने आता है। सन् 1948 में सरदार वल्लभ भाई पटेल के प्रयासों से राजनांदगांव स्टेट का विलीनीकरण हुआ। उसी समय राजनांदगाँव को जिला केन्द्र घोषित करने की माँग के लिए एक जिला निर्माण समिति का गठन डॉ. मिश्र की अध्यक्षता में हुआ था। डॉ. मिश्र रायगढ़ तथा खरसिया नगर पालिकाओं के अध्यक्ष, रायपुर नगर पालिका के ज्येष्ठ उपाध्यक्ष तथा राजनांदगाँव नगर पालिका के अध्यक्ष रहे। सन् 1972 में सम्पन्न आम चुनाव में रहे। भारत शासन ने आपको मैसूर राज्य में हिन्दी के विशिष्ट प्रोफेसर के रूप में भी नियुक्त किया। डॉ. मिश्र शोध-निर्देशक, विशेषज्ञ, परीक्षक के रूप में प्रयाग, लखनऊ, आगरा, दिल्ली, पंजाब, वाराणसी, पटना, कलकता, जबलपुर, सागर, नागपुर, हैदराबाद आदि विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रहे डॉक्टरेट की सर्वोच्च उपाधि डी.लिट्. तक के परीक्षक रहे।

डॉ. मिश्र के लिए साहित्य जीवन साधना रही है। वे साहित्य सृजन को ब्रहम साधना का ही एक रूप मानते थे। उनकी प्रमुख कृतियां दृष्टव्य हैं-काव्य ग्रंथ कौशल

किशोर, जीवन संगीत, साकेत संत, हमारी राष्ट्रीयता, रामराज्य उदात संगीत, गांधी गाया। समीक्षात्मक मंथ साहित्य लहरी, तुलसी दर्शन, जीव विज्ञान, भारतीय संस्कृति, मानस में रामकथा, मानस माधुरी, मानस रामायण, तुलसी की रामकथा। नाटक-शंकर दिग्विजय, असत्य संकल्प, वासना वैभव, समाज सेवक, मृणालिनी परिचय। संपादित पाठ्यपुस्तकें काव्य कलाप, सुमन, साहित्य संचय, भारतीय संस्कृति को जी का योगदान, संक्षिप्त अयोध्याकाण्ड, उत्तम निबंध, तुलसी शब्द सागर अनुवाद मादक प्याला, गीता सार, हृदय बोध, उमर खय्याम की रुबाईयाँ, ईश्वर निष्ठा, ज्योतिष प्रवेशिका अप्रकाशित कृतियों की संख्या सत्रह तथा अधूरी कृतियों की संख्या पाँच है। डॉ. मिश्र ने साकेत संत की भांति साहित्य की अहर्निश सेवा की तथापि उनके अवदानों का सम्यक् मूल्यांकन आज पर्यंत नहीं हो पाया है। भविष्य यह अवश्य स्वीकार करेगा कि डॉ. मिश्र बीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे।

****

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सतना

महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामन पोतदार

महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामन पोतदार महान् साहित्यकार एवं समाजसेवी थे। हिन्दी को महाराष्ट्र की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बनाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। इस कार्य के लिए उन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर सेवा करने का दृढ़ निर्णय लिया। उन्हें महाराष्ट्र का "साहित्यिक भीष्म" कहा जाता है। भारत की ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने 1946 में पोतदार जी को 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से सम्मानित किया था। उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन् 1967 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था। उनके व्यापक ज्ञान के कारण, उन्हें कभी-कभी महाराष्ट्र के डॉ. जॉनसन या एक जीवित विश्वकोश कहा जाता था। मराठी इतिहास के प्रकांड विद्वान पोतदार जी अपने आपमें एक संस्था थे। उन्होंने 'भारतीय इतिहास संशोधक मंडल' की स्थापना की, जोकि आज एक महत्वपूर्ण स्थापना मानी जाती है।

महामहोपाध्याय श्री दत्तो वामन पोतदार जी का जन्म 5 अगस्त, 1890 को महाराष्ट्र के रायगढ़ जिले के बीरवाड़ी गांव में करहड़े ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पोतदार जी ने संस्कृत में इस हद तक महारत हासिल कर ली थी कि वे उसमें धाराप्रवाह बोल सकते थे। वह फारसी में भी कुशल थे और ऐतिहासिक शोध करते समय यह मूल्यवान साबित हुआ। 1961 से 1964 के दौरान वे पुणे विश्वविद्यालय के कुलपति रहे।

1910 में सरदार मेहेंदळे, विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े और पोतदार ने इतिहास शोधक मंडल की स्थापना की। पोतदार ने मंडल के विकास में अपने जीवन के माध्यम से भावुक रूचि बनाएं रखी। उन्होंने विशेष रूप से मराठा साम्राज्य और मराठी साहित्य से संबंधित ऐतिहासिक दस्तावेजों को इक्कठा करते हुए पूरे भारत की यात्रा की। उन्होंने समय-समय पर पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, भाषण दिए और व्याख्यान श्रृंखलाओं का आयोजन किया एवं दूसरों को ऐतिहासिक पत्र पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। 1965 में महाराष्ट्र सरकार ने शिवाजी की जीवनी लिखने के लिए पोतदार जी को नियुक्त किया, लेकिन इससे पहले कि वे काम पूरा कर पाते उनकी मृत्यु 6 अक्टूबर 1979 को पुणे में हो गई।

पोतदार जी विभिन्न संगठनों यथा भारत इतिहास शोधक मंडल, पुणे; नूतन मराठी विद्यालय; पुणे विश्वविद्यालय; बॉम्बे विश्वविद्यालय; डेक्कन जिमखाना; पुणे मराठी ग्रंथालय; शिक्षण प्रसार मंडल; पुणे निगम; भंडारकर संस्थान; महाराष्ट्र साहित्य परिषद; तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ; छत्रपति ए मेयर संभाजी स्मारक मंडल; नरवीर तानाजी

स्मारक मंडल; संयुक्त महाराष्ट्र परिषद; पेशवे दफ्तर समिति; वक्रुत्तोत्तेजक सभा; वेद शास्त्रोत्तेजक सभा; एसएनडीटी कॉलेज; महाराष्ट्रीय कलोपासक, पुणे आदि से निकटता से जुड़े थे।

पोतदार जी द्वारा लिखे गए लेख यथा IX भागों में वसंतिक उपदेश (मराठी)-1917 से 1929; अपले पुणे (मराठी)-1921; मराठी गद्यचा इंग्राजी अवतार (मराठी)-1922; थोरले माधवराव (मराठी)-1928; बारहवीं (मराठी) के छात्रों के लिए बोधप्रद पुस्तक-1935; मराठी इतिहास व इतिहास संशोधन (मराठी)-1935; महाराष्ट्र साहित्य परिषद इतिहास (मराठी)-1943; जयपुर दर्शन (मराठी)-1948; सुमन सप्तक (मराठी)-1950; महाराष्ट्र देशच्य इतिहाससचे संभाव्य वर्णन (मराठी)-1951; समाज शिक्षण माला (मराठी)-1952; श्रोत हो! (मराठी)-1959; भारताची भाष समास्य (मराठी)-1960; मैं यूरोप कैसे पहूँचूं? (मराठी)-1960; आलेख (मराठी)-1961; महाराष्ट्र के अंदर (अंग्रेजी)-1964; लोकमान्य तिलकंचे संगति (मराठी)-1975 आदि है। उक्त के अलावा, महान् साहित्यकार पोतदार जी के नाम 600 से अधिक ऐतिहासिक लेख (मराठी और अंग्रेजी) हैं।

पोतदार जी द्वारा किए गए संपादकीय कार्य यथा देवदास क्रत संत मलिका-1913; मराठे वा इंग्रज-1922; डॉ जॉनसन यांच चरित्र-1924; साहित्य सोपान-1931; एनएमवीएसमार्क ग्रंथ-1933; शिवदीन केसरी क्रुत ज्ञान प्रदीप-1934; वक्रुत्व: कृष्णशास्त्री चिपलूनकर-1936; मजा प्रवास-विष्णुभट्ट गोडसे-1966; अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के पेशवे दरबर्शी फारसी पत्र व्यवाहरि; वड यांच्य अठवानी: पार्वतीबाई परांजपे-1971 है।

संक्षेप में, **महान् साहित्यकार दत्तो वामन पोतदार** द्वारा मराठी भाषा में सैंकड़ों लेख, किताबें लिखीं गई, जिन्हें मान्यता प्राप्त है। उन्होंने पुणे विश्वविद्यालय के कुलपति के नाते भी बड़ी जिम्मेदारी निभाई, पर उनकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि "राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा" है। पूरे महाराष्ट्र में अनेक शिक्षण संस्थाएं उन्होंने ही स्थापित कीं। पुणे शहर में हमें पुस्तकालय तथा वाचनालयों का जो जाल फैला दिखाई देता है, इन सभी का श्रेय महान् साहित्यकार पोतदार जी को ही जाता है। पोतदार जी की महाराष्ट्र के राष्ट्रभाषा-प्रचार कार्य में बड़ी सहायता रही। वे उत्तम वक्ता और कुशल संगठनकर्ता थे। वे मराठी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी थे।

****

विमला मीना
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मुंबई (पश्चिम)

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

स्कूल-कॉलेज या फिर देशभक्ति के कार्यक्रमों में **"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं, वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं"** गीत बड़े ही उत्साह और उल्लास के साथ गाया जाता है। इन पंक्तियों के लेखक गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हैं। द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों की सूची तैयार करें, तो गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', का नाम अग्रिम पंक्ति में आता है। उन्होंने अलग-अलग उपनामों से अलग-अलग रस की कविताओं की रचना की। 'सनेही' उपनाम से कोमल भावनाओं की कविताएं, 'त्रिशूल' उपनाम से राष्ट्रीय कविताएं तथा 'तरंगी' और 'अलमस्त' उपनाम से हास्य-व्यंग्य की कविताएं लिखीं। हालांकि, देशभक्ति और जन-जागरण वाली कविताएं अधिक चर्चित रही है। पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म संवत 1940 में उन्नाव जिले के हड़हा गांव में हुआ था। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने भी बचपन में ही उर्दू और फारसी का अध्ययन किया था। लखनऊ में उनकी प्रतिभा का और भी विकास हुआ। यहां वे ब्रजभाषा, खड़ीबोली और उर्दू के कवियों के संपर्क में आए। उनकी संगत में, सनेही जी ने रचनाकर्म शुरू कर दिया। वे तीनों भाषाओं में काव्यरचना करते थे, परन्तु वे मुखतः ब्रजभाषा के ही कवि थे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर सनेही जी ने 1921 में स्कूल से त्यागपत्र दे दिया और पूरी तरह से साहित्य सृजन में रम गए। वे कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन कार्य से भी जुड़े थे। उनकी पहली कविता 'रसिक मित्र' में प्रकाशित हुई। इसके बाद उनकी रचनाएं 'रसिक रहस्य', 'साहित्य सरोवर' और 'रसिक मित्र' जैसी पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होने लगी। सन् 1913 में गणेश शंकर विद्यार्थी के आग्रह पर साप्ताहिक 'प्रताप' में भी वे कविताएं लिखने लगे। 'प्रताप' में छपी उनकी 'कृषक क्रंदन' शीर्षक रचना ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। सन् 1914 से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कहने से प्रयाग से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में भी वे लिखने लगे। द्विवेदी जी ने उन्हें खड़ीबोली में काव्यरचना के लिए प्रेरित किया। खड़ीबोली में उन्होंने खूब लेखन किया, लेकिन ब्रजभाषा में वे आजीवन लिखते रहें। राष्ट्र प्रेम की उनकी रचनाएं नौजवानों में जोश पैदा करती थीं। उनकी रचनाओं का असर इस कदर था कि अंग्रेजी हुकूमत 'त्रिशूल' नाम के कवि की खोज में लग गए। उनकी एक रचना 'स्वदेश' तो आज भी जन-जन के कण्ठ पर है। अधिकांश लोगों को इस रचना का एक ही छंद याद है 'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।' यह पूरी रचना इस प्रकार है-

वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।
जो जीवित जोश जगा न सका,
उस जीवन में कुछ सार नहीं।
जो चल न सका संसार-संग,
उसका होता संसार नहीं।।
जिसने साहस को छोड़ दिया,
वह पहुंच सकेगा पार नहीं।
जिससे न जाति-उद्धार हुआ,
होगा उसका उद्धार नहीं।।
जिसकी मिट्टी में उगे बढ़े,
पाया जिसमें दाना-पानी।
है माता-पिता बंधु जिसमें,
हम हैं जिसके राजा-रानी।।
जिसने कि खजाने खोले हैं,
नवरत्न दिए हैं लासानी।
जिस पर ज्ञानी भी मरते हैं,
जिस पर है दुनिया दीवानी।।
उस पर है नहीं पसीजा जो,
क्या है वह भू का भार नहीं।
निश्चित है निस्संशय निश्चित,
है जान एक दिन जाने को।
है काल-दीप जलता हरदम,
जल जाना है परवानों को।
है लज्जा की यह बात शत्रुक्
आये आंखें दिखलाने को।
धिक्कार मर्दुमी को ऐसी,
लानत मर्दाने बाने को।।
सब कुछ है अपने हाथों में,
क्या तोप नहीं तलवार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने गोरखपुर से निकलने वाले मासिक पत्र 'कवि' का लगातार 10 वर्षो तक संपादन किया। इसके बाद उन्होंने 1928 में अपना निजी प्रेस खोलकर काव्य संबंधी मासिक पत्र 'सुकवि' का प्रकाशन आरंभ किया। यह पत्रिका 22 वर्षों तक प्रकाशित हुई।

सनेही जी की रचनाएं आजादी के मतवालों में जोश भरने का काम करती थीं-

बीतीं दासता में पड़े सदियां, न मुक्ति मिली
पीर मन की ये मन ही मन पिराती है
देवकी-सी भारत मही है हो रही अधीर
बार-बार वीर ब्रजचन्द को बुलाती है
चालीस करोड़ पुत्र करते हैं पाहि-पाहि
त्राहि-त्राहि-त्राहि ध्वनि गगन गुंजाती है
जाने कौन पाप है पुरातन उदय हुआ
परतन्त्रता की गांठ खुलने न पाती है।

उनकी प्रमुख रचनाओं में प्रेम पचीसी (1905) , गप्पाष्टक, कुसुमांजलि (1915), कृषक-क्रन्दन (1916), त्रिशूल तरंग (1919), राष्ट्रीय मंत्र (1921) शामिल हैं.

उनके द्वारा सम्पादित पुस्तिकाओं में संजीवनी (1921), राष्ट्रीय वीणा (1922); कलामे-त्रिशूल (1930), करुणा कादंबिनी (1958) शामिल हैं। हालांकि इनमें से अधिकांश पत्र-पत्रिकाएं अब उपलब्ध नहीं हैं। पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का निधन 20 मई, 1972 को कानपुर के एक अस्पताल में हुआ था। किसानों की दुर्दशा का उन्होंने बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है-

मानापमान का नहीं ध्यान, बकते हैं उनको बदजुबान,
कारिन्दे कलि के कूचवान, दौड़ाते, देते दुख महान,
चुप रहते, सहते हैं किसान।
नजराने देते पेट काट, कारिन्दे लेते लहू चाट,
दरबार बीच कह चुके लाट, पर ठोंक-ठोंक अपना लिलाट,
रोते दुखड़ा अब भी किसान....
कुछ मांग ले गए भांड़, भांट कुछ शहना लहना हो निपाट,
कुछ ज़िलेदार ने लिया डाट, हैं बन्द दयानिधि के कपाट,
किसके आगे रोएं किसान।
है निपट निरक्षर बाल-भाव, चुप रहने का है बड़ा चाव.....
इनकी सुध लेगा कौन हाय, ये खुद भी तो हैं मौन हाय,
हों कहां राधिकारौन हाय? क्यों बन्द किए हैं श्रोन हाय?
गोपाल! गुड़ गए हैं किसान।
उद्धार भरत-भू का विचार, जो फैलाते हैं सद्विचार,
उनसे मेरी इतनी पुकार, पहिले कृषकों को करें पार,
अब बीच धार में हैं किसान।

****

भूपेश बारोट
प्रबंधक(राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

अतुल प्रसाद सेन

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का काल समाज की पीड़ा, कड़वाहट, दंभ, आत्मसम्मान, गर्व, गौरव तथा सबसे अधिक शहीदों के बलिदान को समेटे हुए हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के इस महान कार्य में देश के सभी भाषाओं के साहित्यकारों एवं लेखकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से देश के प्रत्येक वर्ग क्रांतिकारी हो या आम जनता-सभी में देश प्रेम और राष्ट्रीय प्रेम की चेतना को जागृत किया। बंगाल और बंगला साहित्य इससे अछूता नहीं है। इसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को निरंतर गतिशील बनाए रखा। बंकिम चन्द्र चटोपाध्याय द्वारा रचित "आनंदमठ" के गीत "वंदे मातरम्" हो या रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित देश का राष्ट्र गान "जन गण मन अधिनायक जय है" एवं "आमार सोनार बांग्ला" या फिर अतुल प्रसाद सेन द्वारा लिखे गीत "उठो गो भारत लक्ष्मी" सभी देश प्रेम की भावना से भरी पड़ी है।

अतुल प्रसाद सेन वकील होने के साथ-साथ बांग्ला भाषा के प्रसिद्ध कवि और संगीतकार भी थे। उनकी गणना देश के उच्च कोटि के कवियों एवं गीतकारों में की जाती थी। वे 'अवध वीकली नोट्स' और बांग्ला मासिक 'उत्तरा' के संपादक रहे थे। उनके द्वारा रचित राष्ट्रप्रेम और भक्ति परक गीतों को बांग्ला संगीत के क्षेत्र में सम्मानीय स्थान प्राप्त है।

अतुल प्रसाद सेन का जन्म 28 अक्टूबर, 1871 को पूर्वी बंगाल के नारायणगंज सब डिवीजन में हुआ था। उनकी गीतों ने स्वतन्त्रता-पूर्व के दिनों में कई युवा दिलों को प्रेरित किया। उन्होंने अवध प्रांत को अपनी गतिविधि के क्षेत्र के रूप में चुना और लखनऊ चले गए।

बंगाल के बाहर बंगाली साहित्यकारों का पहला सम्मेलन 1922 में (प्रबसी बंग-साहित्य सम्मेलन) बनारस में अतुल प्रसाद सेन, राधा जैसे प्रतिष्ठित 'बंगाल के बाहर रहने वाले बंगालियों' (प्रवासी) के संरक्षण में आयोजित किया गया था। अतुल प्रसाद ने बंगाली प्रवासी के बीच बंगाली संस्कृति को जीवित रखने के लिए संगठन की बंगाली पत्रिका 'उत्तरा' की शुरुआत और संपादन किया। उन्होंने इसके कानपुर और गोरखपुर सम्मेलनों की अध्यक्षता की। वह इलाहाबाद लॉ जर्नल और अवध वीकली नोट्स के संपादक भी थे।

अतुल प्रसाद ने 1905 और 1921 के बीच राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाई। अतुल प्रसाद राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रति सहानुभूति रखते थे। उन्होंने लखनऊ नगर निगम के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया।

अतुल प्रसाद को बंगाली संगीत में ठुमरी शैली की शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने बंगाली में गजलों की शुरुआत के भी बीड़ा उठाया। उर्दू और फारसी गजल के उस्तादों के साथ अतुल प्रसाद के परिचितों ने उन्हें बंगाली संगीत में लाने के लिए इस विशेष शैली का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया।

अतुल प्रसाद ने 212 कविताएँ लिखीं और कुछ को छोड़कर अधिकांश कविताओं को गीत के रूप में इस्तेमाल किया। अतुल प्रसाद ने विभिन्न देशभक्ति गीत बनाकर औपनिवेशिक भारत में राष्ट्रवाद को जगाने में मदद कीं। 1890 में इंग्लैंड की अपनी पहली यात्रा के दौरान, अतुल प्रसाद इटली से गुजरे और वेनिस में गोंडोला रोवर्स गीत की धुन से प्रेरित होकर, उन्होंने अपना देशभक्ति गीत "भारत लक्ष्मी" की रचना कीं–

भारत की कृपा की देवी,
हे विश्व आदरणीय उठो!
सभी संकटों और दुखों को समाप्त कर,
और उसकी लज्जा दूर करो उदास!

1905–11 के दौरान बंगाल के विभाजन के खिलाफ आंदोलन ने देशभक्ति के गीतों के निर्माण को प्रेरित किया जिसने स्वदेशी आंदोलन की विचारधाराओं के प्रचार में मदद की। अतुल सेन जी ने राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी कई कविताओं एवं गीतों की रचना कीं जिसमें देश के युवा पीढ़ी के अंदर देश भक्ति की भावना को जागृत, पुष्पित एवं पल्लवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यथा–

'धर्मी, सीधा
काम में उज्ज्वल,
सभी भय से रहित
सिर ऊंचा!'

इस गीत में अतुल प्रसाद द्वारा अनेकता और भारतीय बहुलवाद में एकता की विचारधारा की कल्पना और आग्रह किया गया था।

इसी तरह राष्ट्र निर्माण से ओत-प्रोत की कविताओं ने आजादी के दीवाने देशवासियों को काफी प्रभावित किया। उनके द्वारा लिखे गीत–

"अपने विश्वास में दृढ़ रहो, कर्म में साहसी बनो
अपना सिर सीधा रखें, डरें नहीं"

अतुल प्रसाद भारतीय पुनर्जागृति के प्रबल आस्तिक और निडर व्यक्तित्व थे। उन्होंने लिखा -

जप, जप, जप सब,
एक स्पष्ट आह्वान के साथ-
भारत फिर से वापसी करेगा
सबसे अच्छी जगह!..

उन्होंने भारत की स्वतंत्रता संघर्ष के साथ-साथ बांग्लादेश की मुक्ति संघर्ष के समय भी समान रूप से महत्वपूर्ण प्रेरणादायक भूमिका निभाई।

'हमारा गर्व हमारी आशा, हे आपकी हमारी बंगाली भाषा'

उन्होंने बंगाली में गजलों के निर्माण में भी अग्रणी भूमिका निभाई। उनके शास्त्रीय आधारित गीत भारतीय शास्त्रीय संगीत में उनके व्यापक प्रदर्शन और गहन विशेषज्ञता का प्रतिबिंब थे। उदाहरण, "मैं और क्या माँगूँ?"- राग भैरवी, "हे निर्दयी" - ठुमरी, "मैं घर नहीं जाऊंगा"- ठुमरी, "हे मेरे दोस्त, माला ले लो" - राग कलिंगदा, "फिर भी मैं आपको" - राग सिंधु।

अतुल प्रसाद सेन की राष्ट्रीय भावना से भरी कविताओं एवं गीतों ने उस समय के आजादी के दीवाने युवकों, क्रांतिकारियों आदि सभी को काफी प्रभावित किया एवं उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से भारत देश को आजाद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

****

श्याम कुमार दास
सहायक प्रबंधक(राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, मेदिनापुर

केसरी सिंह बारहठ

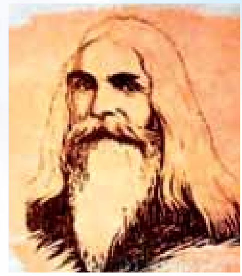

राजस्थान में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध क्रांति की अलख जगाने वालों में अग्रणी क्रांतिकारी और कवि केसरी सिंह बारहठ थे। उनका संपूर्ण परिवार का योगदान कभी नहीं भूलाया जा सकता है। उनके भाई जोरावर सिंह और पुत्र प्रताप सिंह बारहठ ने देश के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए थे।

केसरी सिंह बारहठ राजस्थान के क्रान्तिकारी और स्वतंत्रता सेनानी कवि थे। केसरी सिंह बारहठ का जन्म 21 नवम्बर 1872 को शाहपुरा रियासत के देवखेड़ा नामक गाँव में एक चारण समाज के परिवार में हुआ। इनके पुत्र प्रतापसिंह बारहठ ने भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महती भूमिका निभायी। केसरी सिंह ने संस्कृत एवं हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं बंगला, मराठी एवं गुजराती का भी पर्याप्त अध्ययन किया। ज्योतिष, गणित एवं खगोल शास्त्र में भी उनकी अच्छी पकड़ थी। वह चारण परिवार से थे इसलिए डिंगल-पिंगल भाषा में काव्य लेखन की कला विरासत में मिली थी। वह राजनीति में अपना गुरु इटली की क्रांति के जनक मैजिनी को मानते थे। वीर सावरकर द्वारा मैजिनी की जीवनी मराठी में लिखकर लोकमान्य तिलक को गुप्त रूप से भेजी गई थी जिसका केसरी सिंह ने हिंदी अनुवाद किया था।

केसरी सिंह बारहठ का मानना था की देश को आजादी केवल सशस्त्र क्रांति से प्राप्त हो सकती हैं। बारहट ने राजस्थान के क्षत्रियों और अन्य लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट करने, शिक्षित करने एवं उनमें जागृति लाने के लिए कार्य किया। सन् 1903 में उदयपुर रियासत के राजा फतेहसिंह को वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा बुलाई गयी बैठक में जाने से रोकने लिए उन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय देते हुए उसी समय महाराणा के नाम 'चेतावणी रा चूंगट्या' नामक तेरह सोरठों की रचना की। जिन्हें पढ़कर महाराणा अत्यधिक प्रभावित हुए और 'दिल्ली दरबार' में नहीं जाने का निश्चय किया।

"पग पग भम्या पहाड़, धरा छाड़ राख्यों धरम
महाराणा' र मेवाड़, हिरदे बसिया हिन्द रै!!

भयंकर मुसीबतों में दुख सहते हुए मेवाड़ के महाराणा नंगे पैर पहाड़ों में घूमे, घास की रोटियाँ खाई फिर भी उन्होंने हमेशा धर्म की रक्षा की। मातृभूमि के गौरव के लिए वे कभी कितनी ही बड़ी मुसीबत से विचलित नहीं हुए। उन्होंने हमेशा मातृभूमि के प्रति

अपने कर्तव्य का निर्वाह किया। वे कभी किसी के आगे नहीं झुके। इसलिए आज मेवाड़ के महाराणा हिन्दुस्तान के जन-जन के हृदय में बसे है।

"सिर झुकिया सरसाह, सिंहासणा जीण सामने !
रळणो पंगत राह, फाबै किम तोनै फता"

मेवाड़ सारे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा है। सभी ने आदर के साथ इसके सामने सिर झुकाया है। उसके दिए दान धर्म को अपनी पलकों पर धारण किया है। उसी मेवाड़ का महाराणा आज फिरंगियों के अकिंचन खिताब की याचना के लिए आज दिल्ली जाएगा? कैसे संभव होगा ये सब?

केसरी सिंह बारहट संस्कृत सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। वे हिंदी, डिंगल तथा पिंगल के उत्कृष्ट कवि थे। उन्होंने गद्य एवं पद्य में उल्लेखनीय साहित्य की रचना की। केसरी सिंह बारहट द्वारा सृजित अनेक पद देश की दुर्दशा का करूण चित्रण करते है। उनके द्वारा अपने परिवार को, स्वातंत्र्य समर के नेताओं तथा राजपूत संस्थाओं को लिखे पत्र हिंदी साहित्य एवं भारतीय साहित्य की अमूल्य थाती है। देशी राजाओं को अपनी प्रजा के सुख-दुख के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अपनाने की प्रेरणा देने के लिए केसरी सिंह द्वारा लिखी गई एक कविता इस प्रकार:

"समय पलटता जेज नह, उठे प्रजा झुंझलाए,
धर धुजण की बस चले, पल मे महल ढहाय।
रूस चीन जरमन तुरक आदि हुते पतसाह,
वे सिंघासण कित गया, सो चीजै नरनाह।
आछा कमा ऊधमों, धणीया निज धन रास।
नह तो नैडा आवणा, महल मंजूरा बास।"

ठाकुर केसरी सिंह का देश के शीर्ष क्रांतिकारियों-रासबिहारी बोस, मास्टर अमीरचन्द, लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा, अर्जुनलाल सेठी, राव गोपाल सिंह, खरवा आदि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे क्रांतिकारियों की सहायता करते थे, उन्हे हथियार और रसद उपलब्ध करवाते थे। ब्रिटिश सरकार की गुप्त रिपोर्टों में राजपूताना में विप्लव फैलाने के लिए केसरी सिंह व उनके अन्य साथियों को जिम्मेदार माना गया। सन् 1912 में राजपूताना में ब्रिटिश सी.आई.डी. द्वारा जिन व्यक्तियों की निगरानी रखी जानी थी उनमें केसरी सिंह का नाम राष्ट्रीय-अभिलेखागार की सूची में सबसे ऊपर था। दिल्ली-लाहौर षड्यन्त्र केस में केसरी सिंह पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया। जिस दिन केसरी सिंह को गिरफ्तार किया गया उसी दिन से उन्होंने अन्न-त्याग दिया। उन्हें भय था कि गुप्त बातें उगलवाने के लिए पुलिस कोई ऐसी चीज न खिला दे जिससे उनका

मस्तिष्क विकृत हो जाय। इस प्रण को उन्होंने पाँच वर्ष तक जेल-जीवन में निभाया। उन्हें कई-कई दिन, रात-रात भर सोने नहीं दिया जाता था। सरकार किसी प्रकार केसरी सिंह के विरुद्ध राजनीतिक उद्देश्य से की गयी हत्या का जुर्म साबित कर उन्हें फाँसी देना चाहती थी। अन्त में केसरी सिंह को 20 साल के आजीवन कारावास की कठोर सजा हुई और उन्हे बहुत क्रूर यातनाएं दी गयी थी। जेल से छूटने के बाद भी उन्होने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा और इसके लिए लिखते रहे।

उन्होंने राजस्थान के सभी वर्गो को क्रांतिकारी गतिविधियों से जोड़ने ही लिए 1910 में "वीर भारत सभा" की स्थापना की। राजस्थान में सशस्त्र क्रांति का संचालन किया तथा स्वतंत्रता की आग में अपने पूरे परिवार को झोंक दिया। श्री बारहट ने अपने सहोदर जोरावर सिंह, पुत्र प्रतापसिंह एवं जामाता ईश्वरदान आसिया को रासबिहारी बोस के पास क्रांति का व्यावहारिक अनुभव का प्रशिक्षण लेने भेज दिया था। संपूर्ण बारहट परिवार ने भारत की स्वतंत्रता हेतु अपना सर्वस्व बलिदान किया था। भारत में सशस्त्र क्रांति के प्रणेता श्री रासबिहारी बोस ने लिखा कि "भारत में एकमात्र ठाकुर केसरी सिंह ऐसे क्रांतिकारी है जिन्होंने भारत माता की दासता की श्रृंखलाएं काटने के लिए अपने समस्त परिवार को स्वतंत्रता के युद्ध में झोंक दिया।"

वर्ष 1920-21 में विजय सिंह पथिक के साथ मिलकर इन्होंने "राजस्थान केसरी" नामक साप्ताहिक पत्रिका निकालना आरम्भ किया। वर्धा में वे महात्मा गांधी के निकट सम्पर्क में आए। देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले राजस्थान के इस महान क्रान्तिकारी और कवि का निधन 14 अगस्त, 1941 को हुआ।

****

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, जयपुर

अरविंद घोष

अरविन्द घोष (15 अगस्त, 1872–5 दिसम्बर, 1950) की राष्ट्रीय चेतना साम्यवाद, जातीयतावाद, मानवतावाद एवं स्वाधीनता में निहित है। अरविन्द घोष या ऋषि अरविन्द मुख्यत: भाववादी चिंतनशील, राष्ट्र वैज्ञानिक, कवि, शिल्पशास्त्री, राजनेता एवं सिद्धयोगी गुरू थे। वे ब्रिटिश शासन से मुक्ति के संघर्ष में अन्यतम योगदान रखनेवाले बंगभाषी व्यक्तित्व थे। इस स्वाधीनता संघर्ष में जातीय मुक्ति हेतु भारतीय सशस्त्र आंदोलन में उनका अप्रतिम योगदान रहा है। परवर्ती समय में वे आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़े और मानव प्रगति एवं आध्यात्मिक जगत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ।

वे वैदिक दर्शन के साथ पाश्चात्य आधुनिक राष्ट्रचिंता एवं राष्ट्रदर्शन के सम्मिश्रण के साथ एक नयी दिशा की ओर इंगित करते हैं। इंग्लैण्ड में अपने छात्र–जीवन में वे गुप्त विप्लवी संस्था के साथ जुड़ गए। स्वदेश लौटने के उपरांत वे बड़ौदा में वैप्लविक चिंताधारा के प्रचार–प्रसार से तत्कालीन राजनीतिक आंदोलन में प्रवेश किए। इसके पश्चात कलकत्ता में आकर वे 'वंदे मातरम' पत्रिका का संपादन किए।

अरविन्द ने वेदान्त दर्शन को नये रूप से व्याख्यायित किया। अरविन्द के अनुसार अर्धचेतना एवं अतिचेतना मनुष्य की चेतना के रूप में विभिन्न स्तरों से गुजरते हुए विकास लाभ किया है।

वे कोरा अध्यात्म की चर्चा नहीं करते है अपितु अध्यात्म से परिमंडित एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना की बात करते हैं जो सबके जीवन को सुंदर, समृद्ध और संपन्न बनाने में सक्षम हो, जीवन का संचालक अध्यात्मिक प्रेरित शक्ति हो। उन्होंने विश्व रूपान्तर हेतु सर्वज्ञ एवं विश्वचेतना संपन्न दिव्य अतिमानव अवतरण की चर्चा कीं।

अरविन्द घोष की राष्ट्रीय चिंता समाजतांत्रिक चिंताधारा के माध्यम से साम्यवाद से प्रभावित है। उनकी युक्ति थी–प्रकृतिगत मनुष्य की सोच में स्वाधीनता, अपनी इच्छानुरूप जीवन का विकास एवं सृजनकर्म का अवकाश। मनुष्य असंतोष एवं विक्षोभ नैराज्यवाद भित्ति के आधार पर राष्ट्र उसके अंतर्मन में विद्यमान रहता है। उनके अनुसार मानविक विकास के परिपंथी प्रचलित व्यवस्था से मनुष्य का सत्य जब अवदमित होता है, तब उसका सामाजिक दबाव एवं जरूरत नैराज्यवाद के हिंसात्मक भाग को हटाकर आदर्श मानव अधिकार की प्रधानता देते हैं। इस नैराज्यवाद को वे एक नया नाम 'को–ऑपरेटिव कम्युनिज्म' के रूप में चिह्नित करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि मानव समाज का यथार्थ विकास एवं अग्रगति के लिए मानव प्रकृति में परिवर्तन काम्य है एवं परिवर्तन उनकी दृष्टि में आध्यात्मिक होना चाहिए। किसी को बिना दर्द पहुंचाए छोटा–बड़ा सभी के अन्तरात्मा को उद्वेलित किया जाए तो अतिमानस स्तर पर मनुष्य के विकास होने

पर आध्यात्मिक विवर्तनधारा तैयार होकर एक नूतन मानव समाज की सृष्टि होती है। वे अपने दार्शनिक बुनियाद को आध्यात्मिक कम्युनिज्म की संज्ञा से अभिहित करते है। सामाजिक विकास में पूंजीवाद या समाजतंत्र को श्रेष्ठ न मानकर अरविंद विकास की एक तृतीय राह की परिकल्पना करते हैं। अरविंद दर्शन मूलत: भाववादी दर्शन है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वे फांसीवाद विरोधी दल के समर्थक रहे हैं।

स्वराज एवं स्वाधीनता

स्वदेशी आंदोलन के समय भारत की राजनीति ने प्रचंड करवट ली। तत्कालीन भारतीय राजनीति के परिदृश्य में बंगभंग विरोध आंदोलन राष्ट्रयुक्त सुरेंद्रनाथ के नेतृत्व में स्वदेशी आंदोलन का तुफानी रूप बंगाल में चल रहा था। बंगाल की जनता अंग्रेजों के इस दमनकारी एवं रक्तरंजित गतिविधियों से त्रस्त थी। अरविन्द का राजनीतिक जीवन कलकत्ता आने पर 1906 ई. में शुरू हुआ। "वंदे मातरम" पत्रिका उन्होंने प्रकाशित कीं। उनके जोशिले, ज्वालामुखी जन्य लेख स्वाधीनता आंदोलन को एक नयी दिशा में आलोकित कर रही थी। अरविन्द की युगलबंदी भारत के विप्लवी क्रांतिकारियों के साथ होने लगी। अरविन्द देशात्मबोध जागरण भगवत सत्ता से अनुप्रेरित अनुभव करते हैं। इसी कारण मुरारीपुकुर के गुप्त समिति में प्रत्येक दिन गीतापाठ एवं चंडीपाठ होता था। परवर्ती समय में पवित्र गीता ग्रंथ लेकर हमारे देश के वीर सेनानी हंसते-मुस्कुराते हुए देश को आजाद कराने के मुहिम में फांसी पर चढ़ जाते थे। अंग्रेज राजशक्ति भारत में इस स्वाधीनता संग्राम एवं नवजागरण को शिथिल बनाने हेतु चरम दमनकारी नीति का आश्रय लेने लगी। अरविन्द मनीषी राजनारायण बसु ठाकुर के घर में नवयुवकों को संगठित करके गुप्त समिति का गठन किए। अरविन्द वंदे मातरम में लिखते हैं-"The bureaucracy has thrown the gauntlet, we take it up."

अरविंद 5 मई सन् 1908 के वैप्लविक षड़्यंत्र में लिप्त रहने एवं गैरकानूनी ढंग से बम बनाने के आरोप में गिरफ्तार हुए। फलस्वरूप एक वर्ष तक कारावास की सजा हुई। अरविंद एवं अन्य गुप्त क्रांतिकारियों के विरूद्ध 'अलीपुर बम कांड' के नाम से विख्यात मामला दायर हुआ। बम कांड से बरी होने पर अरविंद राजनीति से परित्याग कर धर्म-साधना के पथ पर अभिमुख हुए एवं पांडिचेरी के आश्रम में योगसाधना को प्रतिष्ठित किया और दार्शनिक सृजन कर्म को अपने जीवन कर्म में अवतरित किया। सच कहा जाए तो अरविंद घोष की जीवन यात्रा राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख होते हुए मानव के आभ्यंतरित विकास पर केंद्रित होती है और मानवतावाद को प्रतिष्ठित करती है और वे अरविंद घोष से ऋषि अरविंद हो जाते हैं।

****

दीपक कुमार साव
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, देवघर

माधवराव सप्रे

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में 19वीं सदी का अंतिम दशक एवं बीसवीं सदी का पहला दशक 'मील का पत्थर' साबित हुए। यह समय देश में राजनीतिक, साहित्यिक एवं पत्रकारीय सुदृढ़ता के दशक माने जाते हैं। यह वह दौर था जब भारत की सुप्त चेतना जाग्रत हो रही थी और जागरण का यह काम उस समय देशभक्त पत्रकार एवं क्रांतिकारी कर रहे थे। उसी दौर के एक राष्ट्रवादी पत्रकार एवं साहित्यकार **पं. माधवराव सप्रे** थे।

पं. माधवराव सप्रे का जन्म मध्य प्रदेश के दमोह जिले के पथरिया ग्राम में 19 जून, 1871 को हुआ था। शिक्षा उपरांत माधवराव सप्रे को तहसीलदार के रूप में सरकारी नौकरी मिली, लेकिन देशभक्ति ने उन्हें सरकारी नौकरी का गुलाम न रहने दिया। सन् 1900 में जब छत्तीसगढ़ में प्रिंटिंग प्रेस नहीं थी, तब माधवराज सप्रे ने बिलासपुर जिले के एक छोटे से गांव पेंड्रा से **'छत्तीसगढ़ मित्र'** नामक मासिक पत्रिका निकालीं। सप्रे जी ने लोकमान्य तिलक के 'मराठी केसरी' को हिंदी प्रदेश में 'हिंदी केसरी' के रूप में छापना प्रारंभ किया। उन्होंने प्रख्यात अखबार 'कर्मवीर' के प्रकाशन में भी महती भूमिका निभाई। वे तिलक के उपनिवेशवाद विरोधी और राष्ट्रवादी विचारों का हिंदी क्षेत्र में प्रचार करना चाहते थे।

माधवराव सप्रे जी की साहित्य साधना में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना- 'हिंदी केसरी' की लोकप्रियता जैसे-जैसे बढ़ रही थी, वैसे-वैसे अँग्रेजी सरकार का रोष भी बढ़ रहा था। आखिरकार 22 अगस्त, 1908 को देशसेवक प्रेस और 'हिंदी केसरी' के संपादकों के घरों की तलाशी ली गई और पत्रिका के दोनों संपादक कोल्हटकर और सप्रे गिरफ्तार कर लिए गए। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में राजद्रोह का यह पहला मुकदमा था।

पं. माधवराव सप्रे हिंदी के उन थोड़े से लेखकों में है, जिन्होंने हिंदी को समाज विज्ञान के विषयों और मुद्दों पर चिंतन और लेखन की भाषा बनाने का सफल प्रयत्न किया। पचपन वर्ष की आयु में 23 अप्रैल, 1926 को उनका देहांत हो गया। उनका पूरा जीवन मूल्यों के लिए संघर्ष और साधना का उदाहरण है। आर्थिक तंगी और आंतरिक द्वंद्व में रहते हुए भी उन्होंने जीवन के रचनाकर्म की लौ प्रज्जवलित रखीं। वे पत्रिकाओं के प्रकाशन, **स्वाधीनता की चेतना के प्रसार व समाज में नए विचारों और विविध समाजसेवी संस्थाओं के निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।** सप्रेजी ने भारत की **राष्ट्रीयता** का शंखनाद किया। हिंदी में अर्थशास्त्र विषय पर मौलिक लेखन करने वाले वे पहले विद्वान थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हिंदी विज्ञान कोश (1904-05) में अर्थशास्त्र की शब्दावली सप्रेजी ने गढ़ी। पं. सप्रे ने **अखबार 'छत्तीसगढ़ मित्र' के**

माध्यम से इस पिछड़े हुए अंचल में नवजागरण की ज्योति प्रज्ज्वलित की।

राष्ट्रीय जागरण के पुरोधा पत्रकार पं. माधवराव सप्रे ने एक सजग साहित्यकार एवं सक्रिय पत्रकार के रूप में भारत के उत्थान के लिए सभी विषयों पर विचार किया और पूरी प्रामाणिकता के साथ कलम चलाई। पं. माधवराव सप्रे उस परंपरा के **अग्रनायक** हैं, जिन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से **भारतीय राष्ट्रबोध** को प्रामाणिकता और प्राणवत्ता के साथ प्रतिपादित किया। तिलक के उपरांत **राष्ट्रीय पत्रकारिता** की मशाल उन्होंने ही थामे रखीं। माधवराव सप्रे जैसे विचारकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती भारतीय दृष्टि एवं भारतबोध की व्याख्यायित करने की थी। यह सिद्ध करने की थी कि सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र है।

पं. माधवराव सप्रे ने आजीवन न केवल उन बौद्धिक चुनौतियों का सटीक उत्तर दिया, अपितु भारतीय राष्ट्रबोध का एक सुविचारित और तथ्यपरक खाका भी तैयार करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने पत्रकारिता और साहित्य को माध्यम बनाया। उन्होंने अखबार निकाला, विचारोत्तेजक लेख लिखा और साहित्य सृजन किया। अपने प्रखर सम्पादकीय लेखों और वैचारिक निबंधों के द्वारा लोकजागरण और शिक्षण का कार्य किया। स्वदेशी आन्दोलन और हिंदी भाषा के प्रति उनका समर्पण और साधना अप्रतिम थी, जिसके कारण उन्हें भारतीय नव जागरण का पुरोधा पत्रकार कहा जाता है।

पं. माधवराव सप्रे जी ने "सरस्वती" पत्रिका के मार्च 1918 अंक में "भारत की एक-राष्ट्रीयता" शीर्षक से विचारोत्तेजक लेख लिखकर इन आक्षेपों का सप्रमाण खंडन किया तथा भारत की प्राचीन राष्ट्रियता का प्रतिपादन किया। उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी को **राष्ट्रीय भाषा** के रूप में विकसित करने में भी अपना योगदान दिया है। "छत्तीसगढ़ मित्र" मासिक के प्रवेशांक में उनका संकल्प था "छत्तीसगढ़ मित्र हिंदी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान देवें। आजकल बहुत-सा कूड़ा-करकट जमा हो रहा है, वह न होने पावे। इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा समूह समालोचना भी की जाए।"

पं. माधवराव सप्रे जी ने देशवासियों को स्वदेशी अपनाने के प्रति भी जागरूक किया। उन्होंने भारत के कृषकों पर अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे अमानवीय शोषण और अत्याचारों का विरोध किया एवं अपनी पत्रकारिता के द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज बुलंद कीं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि पं. सप्रे जी का पूरा जीवन राष्ट्र को समर्पित था तथा वह राष्ट्रीय चेतना के संवाहक थे।

****

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, सतना

सत्यनारायण कविरत्न

मानव सभ्यता के सर्वांगीर्ण विकास में साहित्य का अतुलनीय योगदान रहा है। आधुनिक काल में भारतीय साहित्य (गद्य, पद्य) कई प्रयोगो-अनुप्रयोगों से समृद्ध हुआ। आधुनिक काल से हिंदी साहित्य के इस युग में कई बदलाव हुए। भारत में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता संग्राम का उदय हुआ। आजादी की लड़ाई, लड़ी और जीती गयी। जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ। रेडियो, टी वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार बना। छापेखाने का आविष्कार हुआ। यातायात के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने। **इसी दौरान राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कवि पण्डित सत्यनारायण शर्मा 'कविरत्न' का जन्म सन 1880 ई. में उत्तर प्रदेश के ग्राम सराय अलीगढ़ में हुआ।** इनके पिता गोविन्दराम दुबे अलीगढ़ के कचरौली ग्राम के निवासी थे। सत्यनारायण जी के जन्म से पूर्व ही उनके पिता का निधन हो गया था। सत्यनारायण जी की माँ उन्हें लेकर आगरा के पास राममंदिर में बाबा रघुवरदास की शरण में रहने लगी और लड़कियों को पढ़ाने का काम करने लगी। सत्यनारायण जी जब सत्रह वर्ष के थे तो उनकी माँ का देहान्त हो गया। इसके बाद उनके संरक्षक रघुवरदास जी भी काल कवलित हो गए। अनमेल विवाह के कारण पत्नी के साथ भी इनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। इस तरह 'कविरत्न' जी का सारा जीवन कष्ट और करुणामय रहा।

'कविरत्न' जी की खासियत यह थी कि उन्होंने अंग्रेजी पढ़ने के बाद भी धोती, पगड़ी और मिरजई नहीं छोड़ी। खड़ी बोली का अच्छा ज्ञान होने के बावजूद वे हमेशा ब्रजभाषा में ही रचना करते रहे। देश की, मातृभूमि की वंदना, प्रशंसा और वेदना में उन्होंने दो दर्जन से अधिक कविताएँ लिखी हैं। 'हृदय तरंग' सत्यनारायण जी की कविताओं का संग्रह है। उन्होंने 'होरेशस', 'उत्तर रामचरितम' और 'मालती-माधव' का भी अनुवाद किया है। हिन्दी में उनकी रचनाएँ अब 'सत्यनारायण-ग्रंथावली' में उपलब्ध हैं। सत्यनारायण जी की कविताएं देश भक्ति से ओत-प्रोत हैं, इसकी झलक हम नीचे देख सकते हैं-

देश के कोमल हृदय कुमार,
सरल सहृदयता के अवतार।
तुम्हीं हो ऋषियों की संतान;
आर्य जन जीवन, धन अरु प्रान।

भारती गुण गौरव अभिमान,
कीजिए मातृभूमि उद्धार।
लीजिए ब्रह्मचर्य का नेम,
पालियै अखिल विश्व का प्रेम,
परस्पर होवें जिससे क्षेम,
कीजिए हिन्दी सत्य प्रचार।
देश के कोमल-हृदय कुमार।।।।

सत्यनारायण कविरत्न जी की रचनाएँ निम्नवत हैं-

* श्री गांधी-स्तव
* बस, अब नहिं जाति सही
* तिहारो को पावै प्रभु पार
* माधव, अब न अधिक तरसैए
* माधव, आप सदा के कोरे
* मोहन कबलौं मौन गहौगे
* भुवन-विदित यह जदपि

सत्यनारायण कविरत्न जी की अधिकांश कविताएं राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत हैं, जहाँ वे शोषण का प्रतिकार करने का समर्थन करते हैं। वहीं दूसरी ओर अन्यायपूर्ण व्यवहार का प्रतिकार बल से करने का संदेश देते हैं। वे कहते हैं कि यदि कोई हमारे साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करे तो नैतिकता का तकाजा युद्ध करना ही है न कि अनैतिकता को स्वीकार करना। इसी क्रम में हम 1905 में रचित उनकी 'चेतावनी' कविता की कुछ पंक्तियों को देख सकते हैं-

उठौ उठौ हो भारत सोइए ना, सोइए ना मुख जोइए ना।
बीति गई जो ताहि बिसारौ, व्यर्थ समय निज खोइए ना।

घाती घात लगैं चहु ओरन, झूठ और साँच समोइए ना।
सत्यनारायण बोझिल कामरि, जाकों और भिजोइए ना।

सत्यनारायण जी सन 1918 में रचित अपनी कविता 'मातृवंदना-1' में भारत मां की वंदना करते हुए कहते हैं कि-

सब मिलि पूजिय भारत-माई।
भुवि विश्रुत, सदवीर-प्रसूता, सरल सदय सुखदाई।।

प्रिय-स्वदेश व्यापार अर्ध-जल, सिंचन करहु बनाई।
जयहु मुदित मन सत्यमंत्र 'वन्दे मातरम' सुहाई।।

सत्यनारायण जी सन 1918 में ही रचित अपनी कविता 'मातृवंदना-2' में भारत मां की वंदना करते हुए देश की वीर विभुतियों को याद करते हैं और देश के नवयुवकों में राष्ट्रीयता का भाव भरते हुए उन्हें अपने पूर्वजों से सीख लेने की बात कहते हैं। उनके द्वारा रचित कविता 'मातृवंदना-2' का कुछ अंश नीचे इस प्रकार है-

जय जय भारतमातु मही।
द्रोण, भीम, भीषम की जननी, जग मधि पूज्य रही॥

स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम अम्ब विलम्ब न कीजे।
प्रिय स्वदेश-अभिमान, मात, सतज्ञान अभय जय दीजै॥

हिंदी साहित्य के बड़े नाम सत्यनारायण जी उर्दू, संस्कृत, मैथिली और अंग्रेजी भाषा के भी जानकार थे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि हिन्दी काव्य जगत पर छाये कुहासे को काटने वाली शक्तियों में सत्यनारायण जी की प्रवाहमयी, ओजस्विनी कविता का प्रमुख स्थान है। सन 1918 में स्वाधीनता भावना से ओतप्रोत कवि का देहांत हो गया।

****

मदन राय
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, स्टाफ कॉलेज, कलकत्ता

श्यामनारायण पाण्डेय

कवि श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म सन् 1907 में डुमरांव गांव, मऊ, उत्तर प्रदेश में हुआ था। गांव में ही अपनी प्रारंभिक शिक्षा के बाद उन्होंने काशी आकर संस्कृत का अध्ययन किया और यहीं रहते हुए काशी विद्यापीठ से हिंदी में साहित्याचार्य किया। श्यामनारायण पाण्डेय आधुनिक काव्य धारा के प्रमुख वीर कवियों में से एक हैं। वीर काव्य को इन्होंने अपनी कविताओं का मुख्य विषय बनाया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अपने काव्य का आधार बनाकर इन्होंने पाठकों पर गहरी छाप छोड़ी है। 'यामनारायण पाण्डेय ने चार उत्कृष्ट महाकाव्यों की रचना की थी, जिनमें से **'हल्दीघाटी (वर्ष 1937-39)'** और **'जौहर (वर्ष 1939-44)'** को अत्यधिक प्रसिद्धि मिली। 'हल्दीघाटी' में वीर राणा प्रताप के जीवन और 'जौहर' में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के आख्यान हैं। **श्यामनारायण पाण्डेय द्वारा रचित महाकाव्य 'हल्दीघाटी' के 12 वें सर्ग से चुनिंदा अंश...**

निर्बल बकरों से बाघ लड़े
भिड़ गये सिंह मृग-छौनों से।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी
पैदल बिछ गये बिछौनों से॥1॥
हय-रूण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे।
लड़ते-लड़ते अरि झुण्ड गिरे
भू पर हय विकल बितुण्ड गिरे॥3॥

श्यामनारायण पाण्डेय मूलतः वीर रस के कवि थे। इसी शैली में उनका लिखा गया खंडकाव्य **'जय हनुमान' भी बहुत चर्चित है। 'जय हनुमान' के चतुर्थ सर्ग से कुछ चुनिंदा अंश। इस अंश में अक्षय कुमार वध और मेघनाद से हनुमान जी के युद्ध का बेहतरीन वर्णन है।**

लंका की सेना तो कपि के
गर्जन स्वर से कांप गई
हनूमान के भीषण स्वर से
ही विनाश ही भांप गई
उस कंपित शंकित सेना पर
जब कपि नाहर की मार पड़ी
त्राहि-त्राहि शिव त्राहि-त्राहि
शिव की सब ओर पुकार पड़ी
पक्षिराज जैसे सर्पों के
झपट प्राण हर लेते हैं

वैसे ही निष्प्राण राक्षसों को
धर धर कर देते हैं
तनिक देर में निशाचरी

सेना का सत्यानाश हुआ
बहुत दिनों के बाद आज
लंका के मद का नास हुआ

श्यामनारायण पाण्डेय ने अपने काव्यों में खड़ी बोली का प्रयोग किया है। इनके काव्यों में वीर रस के साथ-साथ करुण रस भी मिलता है। पांडे जी ने काव्य में गीतात्मक शैली के साथ-साथ मुक्त छंद का प्रयोग किया है। भाषा में सरलता और सहजता इस स्तर पर है कि उनके संपूर्ण काव्य के पठन में चित्रात्मक शैली के गुण दिखाई पड़ते हैं। वे हिंदी साहित्य के महान कवियों में से एक हैं। इन्होंने इतिहास को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना की, जोकि हिंदी साहित्य में सराहनीय प्रयास रहा। द्विवेदी युग के इस रचनाकार को वीरग्रंथात्मक काव्य सृजन के लिए हिंदी साहित्य में अद्वितीय स्थान दिया जाता है।

अपने हर काव्य में वीरता का सजीव चित्रण करने वाले कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने **स्वतंत्रता आंदोलन** के दौरान भी अपने उपाख्यानों से लोगों में अप्रतिम जोश का संचार किया था। वे एक प्रस्तोता भी थे। यह उनकी वाणी का ही प्रभाव था कि उनको सुनने वाला श्रोता, किसी चलचित्र को देखता हुआ-सा मंत्रमुग्ध हो जाया करता था। कहा जाता है कि यदि देश के लिए गौरव भावना का बीजारोपण बालमन में यदि विकसित की जाए तो उसका प्रभाव अचूक होता है। यही कारण था कि प्रचंड ओज के कवि श्यामनारायण पाण्डेय जितने लोकप्रिय देश के लिए मर मिटने की भावना से लबरेज आजादी के मस्तानों के बीच में रहे, आगे चलकर वह उतने ही मान्य नन्हें-मुन्हें बच्चों के बीच भी हुए। श्यामनारायण पाण्डेय जी एक ओर तो राष्ट्र के प्रति अपने स्वधर्म का निर्वाह राष्ट्रीय भावनाओं को अपनी कविता का विषय बना कर रहे थे, तो वहीं दूसरी ओर वह राष्ट्रव्यापी स्वातंत्र्य चेतना को युवाओं की धड़कनों में अपनी कलम के द्वारा अनवरत उद्दीप्त कर रहे थे। स्वाभाविक था कि उर्वर प्रज्ञा भूमि के चलते कवि ने तत्युगीन समस्याओं को अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ ऐतिहासिक सांचे में रखकर समूचे युग के सामने एक दृष्टान्त रखा। इसके पीछे जो महान उद्देश्य कार्य कर रहा था वह यही था कि राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताओं की कोख में स्वातंत्र्य चेतना का विकास होता रहे और यही कारण था उनके हर काव्य, महाकाव्य में क्रांति कामना चरितार्थ हुई है।

राजस्थान की ऐतिहासिक रणभूमि **'हल्दीघाटी'** की मिट्टी जो कि हल्दी की तरह पीली थी, भीषण युद्ध के कारण रक्त निमज्जित होकर लाल हो गई। उसी को आधार बनाकर लिखा गया 'हल्दीघाटी' महाकाव्य उस समय के सर्वश्रेष्ठ सम्मान 'देव पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया था। महाराणा प्रताप के ऐतिहासिक त्याग, आत्म बलिदान, शौर्य, स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता एवं जातीय गौरव के उद्‌बोधन 'हल्दीघाटी'

ने उस दौर की आजादी के दीवाने युवाओं के बीच खासी लोकप्रियता अर्जित की। सन् 1939 का समय, वह समय था जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन अपनी परिपक्वता की ओर बढ़ रहा था। ऐसे समय में 'हल्दीघाटी' ने युवाओं के उबाल खाते रुधिर में एक पवित्र आहुति का कार्य किया और 'हल्दीघाटी' तत्कालीन विद्यार्थियों और स्वतंत्रता के पुजारियों का कंठमाल बन गई।

श्यामनारायण पाण्डेय जी की कृतियों की विशेष बात यह है कि यदि वह पौराणिक आख्यान को भी अपने काव्य का आधार बनाते हैं तो भी उसकी विषयवस्तु के चुनाव में वे ओज तथा वीर रस को ही प्रमुखता देते थे। वह वीरता जो उस युग की पहचान थी एवं ओजस्विता जो पराधीन भारत में भी स्वाभिमान और राष्ट्रगौरव के भाव से भारतीय जन-मन को ओत-प्रोत रखा करती थी। यहां 'तुमुल' और 'परशुराम' का उल्लेख समीचीन होगा। जब तुमुल के अंतर्गत दो पराक्रमी और विलक्षण व्यक्तित्व के धनी युवाओं लक्ष्मण और मेघनाद के बीच धर्मयुद्ध हुआ तो वस्तुत: उसके माध्यम से भारतीय संस्कृति और समाज के उद्दात्त प्रतिमानों को उपस्थापित किया गया है। वहीं परशुराम विष्णु के ही रौद्र अवतार स्वरूप धर्म संस्थापनार्थ की भावभूमि पर रचे-बसे एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अपनी प्रतिबद्धताओं के पालनार्थ कुछ भी कर सकते हैं।

श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य में भाव और अलंकारों का हम अद्भुत सम्मिश्रण पाते हैं। वह अपने समय में कवि सम्मेलनों के शीर्षस्थ कवि थे। उनके शौर्यपूर्ण काव्य को उन्हीं की ओजस्वी वाणी में सुनने की इच्छा लिए श्रोतागण मीलों-मील पैदल चलकर पहुंचा करते थे। कवि पाण्डेयजी के व्यक्तित्व का एक पक्ष यह भी था कि वे बहुत स्पष्ट वक्ता थे। कविधर्म के विशेष गुणों से अलंकृत होने के बावजूद चारणधर्मिता या चाटुकारिता को उन्होंने स्वयं से कोसों दूर रखा था।

लगभग दो दशकों से ऊपर वे हिंदी कवि-सम्मेलनों के मंच पर अत्यंत लोकप्रिय एवं समादृत रहे। उन्होंने आधुनिक युग में वीर काव्य की परंपरा को खड़ी बोली के रूप में प्रतिष्ठित किया। श्यामनारायण पाण्डेय जी का देहांत वर्ष 1991 में डुमरांव नामक ग्राम में हुआ था। हिन्दी साहित्य के वीर रस के ऐसे सुविख्यात कवि श्यामनारायण पाण्डेय जी को हिन्दी साहित्य जगत हमेशा याद रखेगा।

****

अमित मित्रा

वरिष्ठ प्रबंधक(राजभाषा)

इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, गुवाहाटी

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद

हिंदी के श्रेष्ठ कवि एवं नाटककार जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद का जन्म 19 नवम्बर 1907 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले के मुरार नगर में हुआ था। मिलिंद जी एक अच्छे कवि, नाटककार एवं उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक अच्छे अध्यापक, राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार भी थे। वे हिंदी, उर्दू, बांग्ला, मराठी, गुजराती, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता भी थे। सन् 1924 में उन्होंने काशी विश्वविद्यालय से साहित्य, इतिहास और राजनीति जैसे विषयों का अध्ययन किया। मिलिंद जी का साहित्यिक सफर राष्ट्रीय चेतना की भावना से भरा हुआ है। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के भावों को व्यक्त करने के लिए इतिहास के स्वर्णिम प्रसंगों को चुना, जो उनके लेखन शैली की एक विशेषता भी थी। उन्होंने शांति निकेतन तथा महिला आश्रम, वर्धा में अध्यापन कार्य भी किया। मिलिंद जी ने 6 नाटक लिखे जिनमें 'प्रतापप्रतिज्ञा' सबसे लोकप्रिय है। 2 खंड-काव्य, अनेक समीक्षा ग्रंथ तथा 8 काव्य-संग्रह प्रकाशित किए, जिनमें 'अंतिमा', 'पूर्णा', 'बलिपथ के गीत', 'नवयुग के गान' और 'मुक्ति के स्वर' मुख्य हैं।

राष्ट्रीय चेतना में मिलिंद जी की भूमिका

मिलिंद जी ने देश की आज़ादी से संबंधित आंदोलनों में अग्रणी रूप से नेतृत्व किया। उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। सन् 1920 के असहयोग आंदोलन में किशोरावस्था से अपने राजनैतिक सफर की शुरुआत करने वाले मिलिंद जी का जीवन संघर्षों से घिरा रहा परन्तु उनका आत्म-विश्वास कभी भी टस से मस न हुआ। मिलिंद जी युवाओं में जोश भरने के लिए लिखते हैं-

तुम नहीं डराये जा सकते शस्त्रों से, अत्याचारों से।
तुम नहीं सुलाये जा सकते थपकी से, प्यार-दुलारों से॥

कांग्रेस में कई वर्षों तक सक्रिय रूप से कार्यरत रहने से लेकर, सन् 1942 में स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेकर जेल जाने तक एवं ब्रिटिश सरकार की यातनाएं सहने के बावजूद स्वातंत्र्योत्तर भारत में समाजवाद के अग्रणी नेता के रूप में मिलिंद जी का जीवन-रथ काफी खींच-तान के बावजूद आगे बढ़ता गया। भारत को अंग्रेजी हुकूमत से निजात दिलाने एवं आजादी उपरान्त ऐसे भारत की कल्पना करना जहां सामाजवाद की नींव के साथ ऐसे देश का निर्माण करना जहां समाज का हर तबका अपने जीवन को प्रगति के पथ पर ले जा सके, मिलिंद जी ऐसे ही भारत के सपने को साकार करने में सक्षम रहे।

आजादी पूर्व ग्वालियर स्टेट कांग्रेस की कमान संभालने के साथ, मध्य भारत प्रांतीय स्टेट कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य भी रहे जहां उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर नेतृत्व किया। कभी आजादी के आन्दोलनों में तो कभी जन आन्दोलनों में उन्हें सलाखों के पीछे जाना पड़ा परन्तु उनका इरादा कभी भी परिवर्तित नहीं हुआ।

वे सैद्धांतिक रूप से इतने मजबूत थे कि वैचारिक मतभेद होने पर भी उन्होंने सन् 1948 में आचार्य नरेन्द्रदेव एवं डॉ राममनोहर लोहिया जैसे दिग्गज नेताओं के साथ कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। वे स्वतंत्रता सेनानी एवं एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से इतर एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिसने समयानुकूल अपने विचारों को नया मोड़ दिया। उन्होंने आजादी के बाद भारत को सामाजिक एवं आर्थिक आजादी दिलाने का संकल्प लिया। उनके लेखन में ऐसे विचार भली-भांति नजर आते हैं जैसे भूमि की अनुभूति में आप दलित समाज के प्रति सहानुभूति का आग्रह करते हैं, तो वहीं जय जनतंत्र में आप देश को प्रगति की राह पर आगे ले जाकर आर्थिक स्वावलम्बन का मंत्र देते हैं।

25 जून, 1986 को मिलिंद जी का मुरार नगर के अपने पुश्तैनी घर में देहांत हो गया। यह दिन साहित्य जगत एवं भारतीय राजनीति के लिए अवसाद का दिन था। ऐसा व्यक्तित्व जो भारत की आजादी एवं समता जैसे विषयों को अपने जीवन में पूर्ण रूप से उतार चुका था, अब नहीं रहा। आज बस इस बात की संतुष्टि है कि जो सपने आपने जीवन में देखे, सपने साकार हो चुके हैं। आज भारत आर्थिक एवं सामाजिक सुधार की ओर अग्रसर है।

आपकी जीवन यात्रा हमें और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रेरणा का स्रोत बनकर राष्ट्रवाद की जड़ों को और गहरा करेंगी।

****

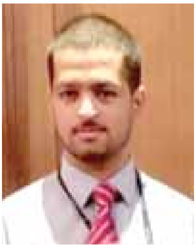

गौरव मिश्रा
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अं. का. डिब्रूगढ़

डॉ. राम कुमार वर्मा

साहित्य शब्द का विग्रह दो तरह से किया जा सकता है। सहित = स + हित= सहभाव, अर्थात हित का साथ होना ही साहित्य है। भाषा के माध्यम से अपने अन्तरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति कराने वाली कला साहित्य कहलाती है। "यत" प्रत्यय के योग से साहित्य शब्द की उत्पति हुई है। साहित्य शब्द का प्रयोग 7-8 वीं शताब्दी से मिलता है। साहित्य ही है जो मनुष्य के जीवन को निखारता है, मनुष्य के जीवन को खुशियों से भरता है। साहित्य ही मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी होती है। साहित्य के माध्यम से ही हमें प्राचीन काल की घटित घटनाएँ पढ़ने को मिलती हैं। एक साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से अपने समाज व देश की वास्तविकता को चित्रित करता है। जो वहाँ के लोगों को जागरूक करता है, जिससे वे अपने देश व समाज के भलाई के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इतिहास में ऐसे कई ज्वलंत उदाहरण है, जो यह प्रमाणित करते हैं कि हमारे देश के साहित्यकारों ने अपने साहित्य की शक्ति से लोगों को राष्ट्रीय एवं सामाजिक कल्याण के लिए जागृत किया। जहाँ तक बात अपने भारत देश की है, जब अपना देश परतंत्र था। भारत माता परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई थी, अपनी बेबसी पर आँसू बहा रही थी। ऐसे समय में देश के कवियों एवं साहित्यकारों ने देश की दुर्दशा का चित्रण किया और देशवासियों को सचेत एवं सजग होने के लिए सन्देश दिया, ताकि सभी देश की रक्षा के लिए तत्पर हो जाएँ और गुलामी के बेड़ियों को काट फेंके। ऐसे समय में मध्यप्रदेश के कवियों एवं साहित्यकारों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। डॉ राम कुमार वर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी, शरद जोशी, सेठ गोविन्द दास और ना जाने ऐसे कितने और नाम है, जिन्होंने अपने कलम की शक्तियों से लोगों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। डॉ. राम कुमार वर्मा का जन्म 15 सितम्बर 1905 को मध्यप्रदेश राज्य के सागर जिले के एक गाँव गोपालगंज में एक अत्यंत कुलीन एवं धर्मपरायण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लक्ष्मी प्रसाद वर्मा था जो एक उप-जिलाधिकारी थे व माता का नाम श्रीमती राजरानी देवी था।

डॉ. रामकुमार वर्मा की प्रारंभिक शिक्षा इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी ने अपने घर पर ही दी, जो उस समय हिंदी कवयित्रियों में विशेष स्थान रखती थी। बचपन में इन्हें कुमार के नाम से पुकारा जाता था। पठन-पाठन की प्रतिभा के साथ ही राम कुमार वर्मा शाला के अन्य कार्यों में भी सहयोग देते थे। रामकुमार वर्मा 1922 में दसवीं कक्षा में पहुँचे इसी समय प्रबल वेग से असहयोग की आंधी उठी और रामकुमार वर्मा राष्ट्र सेवा में हाथ बंटाने लगे तथा एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता के रूप में लोगों के सम्मुख आये। मात्र सोलह वर्ष की आयु में महात्मा गाँधी के राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन का उन

पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शैक्षणिक प्रांगण से बाहर निकलकर, खादी पीठ पर लादकर बेचीं और प्रभातफेरी में राष्ट्रीय चेतना से संपन्न स्वरचित गीत गाये और ओजस्वी भाषण दिए। उन्होंने 17 वर्ष की आयु में एक कविता प्रतियोगिता में 51 रुपये का पुरस्कार जीता। यहीं से उनकी साहित्यिक यात्रा आरम्भ हुई। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा जबलपुर के रौबर्टसन कॉलेज और प्रयाग के प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. हिंदी में किया। पूरे विश्वविद्यालय में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से "डॉक्टरेट" की उपाधि आलोचनात्मक इतिहास में प्राप्त की। भारत सरकार ने उन्हें उनके सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिए 1963 में 'पद्म भूषण' की उपाधि तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें 'साहित्य वाच्यस्पति' की उपाधि प्रदान की थी। "चित्ररेखा" काव्य-संग्रह पर इन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ "देव पुरस्कार" तथा कालिदास पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। जीवन की विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और संतुलन तथा निराशा और अवसाद के क्षणों में भी स्मित मुस्कान एवं गंभीरता के साथ विनम्रता उनके व्यक्तित्व के कुछ खास रंग हैं, जिन्होंने उनके कलात्मक स्वरुप को भी एक विशिष्ट सज्जा दी। हिंदी के बारे में डॉ. रामकुमार वर्मा के विचार निम्नवत है:-

"जिस देश के पास हिंदी जैसी मधुर भाषा है, वह देश अंग्रेजी के पीछे दीवाना क्यों है? स्वतंत्र देश के नागरिकों को अपनी भाषा पर गर्व करना चाहिए। हमारी भावभूमि भारतीय होनी चाहिए। हमें जूठन की ओर नहीं ताकना चाहिए।"

डॉ वर्मा को एकांकी सम्राट कहा जाता है। वे गर्व के साथ कहते थे-**"ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति का मेरुदंड नैतिक मूल्यों में आस्था और विश्वास का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।"** इनके काव्य में रहस्यवाद और छायावाद की झलक है। डॉ रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास प्रसिद्ध नाटकों में राष्ट्रनायकों के चरित्रों के सहारे प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को जीवंत करके दर्शकों तथा पाठकों के ह्रदय में राष्ट्र प्रेम की भावना जागृत करने का प्रयास किया। उनके नाटकों के नायक प्राय: अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देने को सदा तैयार रहते हैं।

डॉ रामकुमार वर्मा की कृतियाँ:- कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने साहित्य सृजन के लिए नए आयाम खोजे। कविता में वे साधक की भूमिका में आए। अपने जीवनानुभवों से नाटकों की विषय वस्तु तैयार की। चिंतन-मनन की तटस्थ अभिव्यक्ति ने उनके आलोचकीय व्यक्तित्व की मुद्राएँ तय कीं। इन सभी रूपों में उन्होंने हिंदी साहित्य को जो कृतियाँ सौंपी, उनमे से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

एकांकी संग्रह- पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, सप्तकिरण, रूपरंग, दीपदान, रजतरश्मि, ऋतुराज, रिमझिम, इन्द्रधनुष, कैलेंडर का आखिरी पन्ना

आदि। उनकी कृति **"बादल की मृत्यु"** नामक एकांकी हिंदी साहित्य का पहला एकांकी माना जाता है।

नाटक- विजय पर्व, कला और कृपाण, नाना फडनविस, सत्य का स्वप्न।

काव्य- चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, अंजलि, अभिशाप, चितौड़ की चिता, उत्तरायण, वीर हम्मीर आदि।

गद्यगीत संग्रह- हिमालय।

आलोचना एवं साहित्येतिहास-कबीर का रहस्यवाद, इतिहास के स्वर, साहित्य समालोचना, साहित्य शास्त्र, अनुशीलन, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास एवं हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।

संपादन- कबीर ग्राथावली।

डॉ. रामकुमार वर्मा की रचनाओं में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना- डॉ. वर्मा की साहित्यिक व्यक्तित्व को नाटककार और कवि के रूप में अधिक प्रमुखता मिली। सन 1930 में रचित "बादल की मृत्यु" उनका पहला एकांकी है, जो फैंटेसी के रूप में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। भारतीय आत्मा और पाश्चात्य तकनीक के समन्वय से उन्होंने भारतीय इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठों से नाटकों की विषय वस्तु को ग्रहण कर चरित्रों की ऐसी रूप रेखा प्रस्तुत की जो पाठकों में उच्च चारित्रिक संस्कार भर सके और सामयिक जीवन की समस्याओं को समाधान की दिशा दे सके। उनके नाटक भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय उद्‌बोधन के स्वर बखूबी समेटे हुए हैं। उनके द्वारा रचित दीपदान शीर्षक एकांकी में राजपूताने की वीरांगना पन्ना धाय के अभूतपूर्व बलिदान की भावना तथा स्वामिभक्ति को इस एकांकी के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। पन्नाधाय ने अपने कलेजे के टुकड़े, अपने पुत्र चन्दन का बलिदान करके अपने स्वामी महाराणा सांगा की धरोहर उदयसिंह की रक्षा कर के जो अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया उसी को दर्शाना डॉ वर्मा का उद्देश्य था। इस एकांकी के द्वारा उन्होंने कर्तव्यनिष्ठा, कर्तव्य परायणता तथा स्वामिभक्ति के माध्यम से यह सन्देश देते है की राष्ट्रप्रेम पुत्रप्रेम से बड़ा और महान है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपनी विचारधारा और दर्शन की अनुभूतियों से समग्र युग, जीवन और दर्शन को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की। एकांकी साहित्य के विकास और वृद्धि में जो उन्होंने योगदान दिया, इसके लिए वे हमेशा याद किए जाएंगे।

****

अजय कुमार सिंह
मुख्य प्रबंधक
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, चिन्सुरा

जय शंकर प्रसाद

महान लेखक, कवि, बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद का जन्म सन 1889 ईस्वी में वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। बचपन में ही पिता के निधन से पारिवारिक उत्तरदायित्व प्रसाद जी के कंधों पर आ गया, जिसके पश्चात मात्र आठवीं कक्षा तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्वाध्याय द्वारा इन्होंने संस्कृत, पाली, हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का विशद ज्ञान प्राप्त किया और छायावाद के प्रखर और बड़े कवि के तौर पर स्थापित हुए। यह एक युग धर्म रचनाकार थे, जो राष्ट्रीय नवजागरण में सांस्कृतिक चेतना के द्वारा राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। 1926 से 1929 ईस्वी तक जयशंकर प्रसाद के कई कृतित्व राष्ट्र भावना से परिपूर्ण थे। जयशंकर प्रसाद कवि, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार आदि रहे। उनके आने से ही हिंदी काव्य में खड़ी बोली के माधुर्य का विकास हुआ। काव्य रचना और नाटक में भी उन्होंने अपना कौशल दिखाया। सत्यम शिवम सुंदरम का जीता जागता रूप प्रसाद के काव्य में मिलता है, मानव सौंदर्य के साथ-साथ इन्होंने प्रकृति सौंदर्य का सजीव एवं मौलिक वर्णन किया। इन्होंने ब्रज भाषा एवं खड़ी बोली दोनों का प्रयोग करके संस्कृतनिष्ठ भाषा में भी आनंददायक साहित्य की रचना की। उनकी रचनाएं भारत के गौरवमय इतिहास व संस्कृति से अनुप्राणित है, कामायनी उनका सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य है, जिसमें आनन्दवाद की नई संकल्पना समरसता का संदेश निहित है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- **झरना, ऑसू, लहर, कामायनी, प्रेम पथिक (काव्य) स्कंदगुप्त चंद्रगुप्त, पुवस्वामिनी जनमेजय का नागयज्ञ राज्यश्री, अजातशत्रु, विशाख, एक घूँट, कामना, करुणालय, कल्याण ी परिणय, अग्निमित्र प्रायश्चित सज्जन (नाटक) छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इंद्रजाल(कहानी संग्रह) तथा कंकाल तितली इरावती (उपन्यास)।**

जयशंकर प्रसाद छायावादी कवि के रूप में राष्ट्रीय जागरण में बढ़ चढ़कर भाग लिया था। उनकी ख्याति मुख्य रूप से नाटककार तथा कवि के रूप में हुई है। उनके ऐतिहासिक नाटकों ने जनसामान्य को नवजागरण के लिए प्रेरित किया, जिसमें उन्होंने अतीत के गौरव को जन सामान्य के समक्ष रखा। उनके पूर्वज किस प्रकार के गौरवशाली थे, हमारा इतिहास कितना गौरवशाली था। **भारत की परतंत्रता को संदर्भित करते हुए, उन्होंने राष्ट्रीय जागरण में अहम भूमिका निभाई।** जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य आंदोलन के प्रथम और महत्वपूर्ण कवि हैं। काव्य धारा के रूप में छायावाद को एक निश्चित आकार देने में प्रसाद की विशिष्ट भूमिका रही है। प्रसाद छायावाद के कवि हैं, इसलिए स्वाभाविक है कि छायावाद की प्रवृत्तियां के परिचय से प्रसाद को अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

प्रसाद जी के काव्य की विकास यात्रा

* **'प्रेम पथिक' 1910 से 'कामायनी' तक है**

* **'कानन कुसुम'**, **'चित्रधारा'**, **'झरना'**, 'आंसू' और 'लहर' बीच **की कृतियां** है।
* 'झरना' 1910 की निम्नलिखित काव्य पंक्तियों से छायावाद का आरंभ मिलता है–

"बात कुछ छिपी हुई है गहरी।
मधुर है स्रोत है मधुर है लहरी॥"

सन 1916 से 1936 तक का समय छायावाद का रहा। हिंदी कविता में छायावाद और भारतीय राजनीति मंच पर 'महात्मा गांधी' का उदय लगभग साथ ही हुआ था। स्वाधीनता के संदर्भ में छायावाद और गांधी दोनों की ही परिकल्पनाएं उस दौर में लगभग एक समान ही थी। स्वाधीन चेतना सूक्ष्म कल्पना लाक्षणिकता नए प्रकार का सादृश्य विधान नया सौंदर्यबोध इन विशेषताओं को एक साथ प्रसाद की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना और नवीन भाव बोध के आधार पर ही समायोजित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि प्रसाद उस अर्थ में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना के कवि नहीं है। जिस अर्थ में 'माखनलाल चतुर्वेदी', 'बालकृष्ण शर्मा नवीन' और 'सुभद्रा कुमारी चौहान' है। प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना अधिक स्पष्ट रूप में उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। प्रसाद की अपनी पहचान के आधार पर छायावाद का राष्ट्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता है। अत: छायावादी काव्य में 'राष्ट्रीय जागरण', 'सांस्कृतिक जागरण' के रूप में आता है। इस सांस्कृतिक जागरण की अभिव्यक्ति प्रसाद की 'प्रथम प्रभात' 'अब जागो जीवन के प्रभात' 'बीती विभावरी जाग री'आदि कविताओं में है। इसकी अभिव्यक्ति हम 'पंत', 'निराला' और 'महादेवी वर्मा' की 'जाग तुझको दूर जाना' जैसी कविताएं इस दृष्टि से विचारणीय है। लहर में संकलित प्रसाद की कविता " अब जागो जीवन के प्रभात " पर विचार करें तो प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना स्वच्छंदतावाद की मूल चेतना से अभिन्न जान पड़ेगी–

"अब जागो जीवन के प्रभात
वसुधा पर ओस बने बिखरे।
हिमकन आंसू जो क्षोभ भरे
उषा बटोरती अरुण गात॥"

कवि जयशंकर प्रसाद उपर्युक्त पंक्ति के माध्यम से देशवासियों को जगाने की बात कर रहे हैं। वह देशवासियों को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने को प्रेरित कर रहे हैं। वह कह रहे हैं कि जिस प्रकार सूर्य रात के अंधकार को समाप्त करता है, उसी प्रकार तुम भी जागो और **पराधीनता** रूपी रात को समाप्त करो। छायावाद की भावभूमि को 'गांधीवाद' से जितनी प्रेरणा और स्फूर्ति मिली उससे कम 'रवींद्रनाथ' से नहीं मिली। छायावाद के पीछे राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की प्रेरणा भी काम कर रही थी। 'निराला' की कृति 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा', 'प्रसाद' की 'कामायनी' से परिचित होने के बाद उन्होंने अपनी धारणा बदल ली थी। इस दृष्टि से प्रसाद की विश्व मंगल की कल्पना करते देखे जाते हैं 'कामायनी' में मनु विराट के प्रति ऐसी जिज्ञासा प्रकट करते हैं–

"वह विराट था हमें घोलता
नया रंग भरने को आज
कौन? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कोतूहल का था राज॥"

कामायनी में राष्ट्रीय चेतना देखने का सवाल है, उसकी मूल संकल्पना किसी भी संकुचित राष्ट्रवाद के विरुद्ध है। विश्वमंगल इसका मूल्य प्रयोजन है। प्रसाद की स्वाधीन चेतना और विश्व दृष्टि का ही परिणाम है। कामायनी बीसवी शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक का राजनीतिक सांस्कृतिक समय 'कामायनी' में कहां किस रूप में है विचारणीय संदर्भ यह है। 'मुक्तिबोध' किसी प्रेरणा से कहते हैं- 'प्रसाद' का दर्शन एक 'उदार पूंजीवादी व्यक्तिवादी' दर्शन है जो वर्ग विषमता की निंदा भी करता है और वर्गातीत चेतना के आधार पर समाज के वास्तविक बिन्दुओं पर पर्दा डालना चाहता है या उनका काल्पनिक समाधान प्रदान करता है। प्रसाद का स्वदेश प्रेम स्वदेश के सौंदर्य के अछूते चित्रों के रूपों में व्यक्त हुआ है। संपूर्ण भारत उनके लिए सौंदर्य का भंडार है।

भारत के प्राकृतिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर प्रसाद जी ने भाव विभोर हो देश के सौंदर्य का चित्रण किया है-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।"

कवि के प्यारे देश में जब जब विदेशी शक्ति का आधिपत्य या आक्रमण हुआ, तब तब कवि की लेखनी दृढ़ होकर लोगों के जनमानस तक पूर्ण संग्राम में बलवीर बनकर शामिल होने के लिए पुकारती रही।

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।।"

प्रणय गीत में देशवासियों को शत्रु का डटकर सामना करने की प्रेरणा दी गई है। भारत के अमर वीरों तथा साहसी युवाओं का आह्वान किया गया है कि वह देश में घुस आए विदेशी शत्रुओं का वीरतापूर्वक सामना करें। कवि जयशंकर ने 'बीती विभावरी जाग री' के माध्यम से भी लोगों को जागृत करने के लिए प्रेरित किया है-

"बीती विभावरी जाग री
अंबर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी।।"

कवि इन पंक्तियों में भी जनमानस को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने को प्रेरित कर रहा है। कवि का कहना है कि अब गुलामी रूपी रात के छटने का समय आ गया है। अब आजादी रूपी उषा का फैलना है। अतः सभी देशवासी एक साथ मिलकर विदेशियों का सामना कर उन्हें अपने देश से भगा दें और सूर्य की तरह अपने मातृभूमि पर फैल जाए। कवि प्रकृति के माध्यम से तो कभी नायक-नायिका के माध्यम से कवि मानता है कि जब सभी लोग एकत्रित होकर इस लड़ाई को लड़ेंगे तभी आजादी हमें मिल पाएगी। प्रसाद जी ने राष्ट्रवाद के साथ मानव के भुजबल और मनोबल को सार्थकता और सर्वोच्चता प्रदान करती हुयी कई प्रोत्साहन कविता लिखी। उनका कहना था कि जब मानव चाहेगा तभी उसे तो उसके लिए कोई कार्य असंभव नहीं है-

"मानव जब जोर लगाता है।
पत्थर पानी हो जाता है।।"

छायावाद युग में लिखी कविताओं में नवजागरण के संकेत अधिक महत्वपूर्ण है। **'नवजागरण'** की इस भावना में एक नए मनुष्य की परिकल्पना दिखाई देती है। प्रसाद यदि छायावाद के मूल स्वानुभूति की विशिष्टता पर बल देते हैं, तो इसके पीछे भी स्वाधीन मनुष्य की कल्पना है। अब ऐतिहासिक दृष्टि से हम यह अंतर समझने कि भारतेंदु काल में राष्ट्रीयता की जो भावना स्पष्ट थी और मूर्ति थी। उसने द्विवेदी युग तक आते-आते स्वच्छंदतावाद के परिप्रेक्ष्य में एक नए राष्ट्रीय जागरण का रूप ले लिया और उसी के प्रभाव में छायावाद में एक नई मानव परिकल्पना सामने आई।

इस दृष्टि से राजनीतिक परिदृश्य में 'तिलक' की भूमिका पर विचार करें जब वह 'कांग्रेस' के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए प्राचीन दार्शनिक मान्यताओं का परीक्षण कर रहे थे और गीता का आधुनिक काव्य भाषा रच रहे थे, तो उसके पीछे यही भावना नवीन राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीय भावना थी। कर्म सिद्धांत की उनकी व्याख्या कामायनी में व्यक्त ज्ञान शिक्षा और क्रिया के पारस्परिक संबंध से तुलनीय है 1919 में तिलक का स्थान गांधी ने ले लिया तो स्वतंत्रता का एक नया संदेश जनता तक पहुंचा।

राष्ट्रीय भावना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति नए रूपों में दिखाई देने लगी, छायावाद युग के संदर्भ में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना के सांस्कृतिक पक्ष पर बल देना आवश्यक है। हम अपना ध्यान इस अंतर की ओर जरूर आकृष्ट करना चाहेंगे कि यह राष्ट्रीय चेतना सीमित अर्थ में राष्ट्रवाद नहीं है। प्रसाद शोषण उत्पीड़न के विरोध में थे बंधुओं से प्रबुद्ध थे विषमता रहित समाज की स्थापना चाहते थे भले ही समाधान उनका काल्पनिक हो आदर्शवादी हो। मिथकीय सीमाओं में भी कर्म चेतना संघर्ष चेतना एकता जैसे तत्व थे। जिनका महत्व राष्ट्रीय आंदोलन के लिए आवश्यक था। अत: जयशंकर प्रसाद आम जनमानस में नवीन राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाले छाया वादी युग के प्रमुख पथ प्रदर्शक कवि हैं। इस क्रम में प्रसाद जी का अपने देश भारत के प्रति प्रेम हेतु उनकी कविता **भारत महिमा** में दिखाई देता है, उन्होंने 'भारत महिमा' कविता में हमारे देश भारत के स्वर्णिम अतीत का मनोरमा चित्रण किया है। कवि की आकांक्षा है कि हमें सदैव अपने देश पर इसकी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना चाहिए. आवश्यकता पड़ने पर हमें देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए तत्पर रहना चाहिए-

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार
जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष

****

अभिषेक कुमार पटेल
मुख्य प्रबंधक
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, झांसी

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का जन्म 18 नवम्बर 1868 को असम के डिब्रूगढ़ जिले के आहतगुड़ी नगाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम दीनानाथ बेजबरुवा था। उनकी पत्नी का नाम प्रज्ञासुन्दरी देवी था, जो महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की भतीजी थी। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ असमिया साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि, लेखक, उपन्यासकार, नाटककार, संपादक और व्यंगकार थे। असमिया में शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण उन्होंने बंग्ला भाषा में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। बाद में उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता गए और वहीं से बी.ए. की परीक्षा पास की। असमिया भाषा के पथ प्रदर्शक कहे जाने वाले बेजबरुआ ने कविता, नाटक, गल्प, उपन्यास, निबंध, रम्यरचना, समालोचना, प्रहसन, जीवनी, आत्मजीवनी, बाल साहित्य, इतिहास इत्यादि लेखन के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके साहित्य में हास्यरस की रचनाओं की लोकप्रियता को देखते हुए इन्हें 'रसराज' की उपाधि से भी सुशोभित किया गया था। असमिया भाषा को उन्नत बनाने के उद्देश्य से बेजबरुआ जी ने अपने मित्रों-हेमचंद्र गोस्वामी और चन्द्रकुमार अग्रवाल के साथ मिलकर शेक्सपियर की "कॉमिडी ऑफ एरर्स" का अनुवाद "भ्रमरंग" के नाम से किया। आगे चलकर इन तीनों मित्रों ने मिलकर "असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा" की स्थापना की, जिसके प्रथम मंत्री बेजबरुवा जी बने।

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा के साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना को देखने के लिए अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है, यदि आप उनके साहित्य को पढ़े तो आपको स्वत: ही राष्ट्रीयता की भावना दिखाई पड़ जाएगी। साहित्य के विभिन्न पहलुओं में अपनी लेखनी चलाने वाले बेजबरुआ ने अपने नाटकों में भी राष्ट्रीयता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा वे उसमें सफल भी हुए। उनका मानना था कि नाटक दृश्य श्रव्य होते हैं तथा उनका प्रभाव किसी भी व्यक्ति पर सबसे अधिक पड़ता है। इसलिए नाटक में राष्ट्रीयता को प्रस्तुत कर लोगों में देशभक्ति को आसानी से जगाया जा सकता है। यही कारण है कि उन्होंने उपन्यास की तुलना में नाटकों की रचना अधिक की। उन्होंने असम के अहोम काल की पृष्ठभूमि में तीन ऐतिहासिक नाटक लिखे-कबेलिमार (सूर्यास्त), चक्रध्वज सिंह और जयमति कुँवरी। इन नाटकों के माध्यम से बेजबरुआ जी ने जनता में जो देशभक्ति की ज्वाला प्रज्जवलित की वह न केवल असम में अपितु

संपूर्ण उत्तर-पूर्व में उसकी गूँज सुनाई पड़ती है। उन्होंने सामाजिक विषयों के साथ-साथ साहित्यिक व्यंग्य और हास्य लेख भी लिखे।

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जी ने अपने काव्यों के माध्यम से भी देशभक्ति के भाव को प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामाजिक, आंचलिक एवं राष्ट्रीय विषयों को केन्द्रित करते हुए अपनी कविताओं की रचना की है। वैसे तो उन्होंने कई विषयों पर कविताएं लिखी है, परन्तु देशभक्ति से संबंधित कविताएं न केवल असम में अपितु संपूर्ण देश में प्रसिद्ध हुई हैं। उनकी देश भक्ति से संबंधित कविताएं इस प्रकार हैं- **आमार जन्मभूमि, मोर देश, विह, बिन बैरागी, असम गीत** इत्यादि। उन्होंने भक्ति तथा आध्यात्मिक गीत भी लिखे हैं, जैसे-महाप्राण यात्री, मोर जीवन अवशेष, प्रेम, शांति, आत्मबोध, मुख्य लक्ष्य, ईश्वर और भक्त इत्यादि। उनके द्वारा रचित गीत **"ओ मोर अपोनर देश"** (या ओ मोर अपोनर डेक्स) असम का राज्य गीत या राज्य गान है जिसे बेजबरुवा जी ने लिखा था। यह गीत कदमकली में भी शामिल है तथा यह अब तक का सबसे लोकप्रिय असमिया देशभक्ति गीत है।

बेजबरुआ जी ने असमिया भाषा की प्रगति एवं जन साधारण में जागरूकता लाने के उद्देश्य से सन 1889 ई. में 'जोनाकी' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका के कारण बहुतेरे लेखक असमिया भाषा में लेखन के प्रति प्रोत्साहित हुए। उन्होंने 20 वर्षों तक 'बांही' नामक साहित्यिक पत्रिका का भी संपादन किया। बेजबरुआ को असमिया की नई कहानी का जनक ही माना जाता है। कविता के क्षेत्र में उनकी देशभक्ति पूर्ण रचनाएं, भक्ति और आध्यात्मिक गीत, गाथा गीत तथा लोकगीत सभी उच्चकोटि के माने जाते हैं। इस प्रकार बेजबरुआ ने असमिया साहित्य के सभी अंगों को मजबूत किया है। उनकी सेवाओं के लिए उन्हें 'साहित्य रथी' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। उन्होंने असमिया भाषा को खूब बढ़ाया और उसे अन्य भारतीय भाषाओं की बराबरी में ले आए। गद्य हो या पद्य, दर्शन हो या व्यंग्य, सभी में हम उनकी लेखनी का चमत्कार देख सकते हैं। असमिया साहित्य का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसे उन्होंने समृद्ध न किया हो। असमिया भाषा और असम के पुनरुत्थान में उनका योगदान अमिट है।

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने सैकड़ों लेख और निबंध भी लिखे हैं। इन रचनाओं में उन्होंने उन लोगों पर करारा व्यंग्य किया है जो समाज के आदर्शों के अनुसार चलने को तैयार नहीं होते। उन लोगों को उन्होंने विशेष रूप से अपना शिकार बनाया जो किसी भी नई चीज को बिना सोचे समझे, महज नया होने के कारण अपना लेते हैं। ऐसे लोगों जिनमें विचार शक्ति नहीं होती परंतु समाज का नेता बनाना चाहते हैं, वे भी उनकी मार से नहीं बच सके हैं। उन लोगों को वह सहन नहीं करते थे, जो कहते कुछ और करते

कुछ हैं। वह दकियानूसी और पुरातनपंथी विचारों को भी नापसंद करते थे। यद्यपि उनका व्यंग्य बहुत तीखा होता था परंतु वह अपने पीछे कड़वाहट नहीं छोड़ता था। इसका कारण यह है कि बेजबरुवा किसी के विचारों से भले ही सहमत न हो परंतु वह किसी से नफरत नहीं करते थे। उनकी टक्कर का हास्य और व्यंग्य लेखक असमिया में कोई दूसरा नहीं हुआ। उनकी कई रचनाएं पढ़कर पाठक की हंसी रोके नहीं रुकती। जैसे नोमल, पाचनी, चिकरपति-निकरपति, कृपावर बरुवार, काकतर, तोपोला, ओभोतानी आदि।

असमिया साहित्य के इतिहास में बेजबरुआ का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से न केवल ललित, सामाजिक, लोक कल्याण एवं भक्तिपरक साहित्य की रचना की अपितु अपने साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुखता से उजागर किया। उनके साहित्य में तत्कालीन समाज को बड़ी बेबाकी से परिलक्षित किया गया है जो आज की पीढ़ी के लिए एक ऐतिहासिक सूचनात्मक रिपोर्ट की तरह कार्य करता है। उनकी आत्मकथा में उनके समय की सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्कारों और रीति-रिवाजों, मान्यताओं का भी विस्तृत वर्णन है। समग्र रूप में देखें तो उनका साहित्य असमिया समाज का जीवंत दस्तावेज है।

****

चन्दन कुमार शर्मा
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, चिन्सुरा

बालमुकुन्द गुप्त

(14 नवंबर, 1865 - 18 सितंबर, 1907)

बालमुकुन्द गुप्त का जन्म गुड़ियानी गाँव, जिला रेवाड़ी, हरियाणा में हुआ था। उन्होंने उर्दू और फारसी में प्रारंभिक शिक्षा के बाद 1886 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय से मिडिल परीक्षा प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में उत्तीर्ण की। वे विद्यार्थी जीवन से ही उर्दू पत्रों में लेख लिखने लगे। झज्झर (जिला रोहतक) के 'रिफाहे आम' अखबार और मथुरा के 'मथुरा समाचार' उर्दू मासिकाओं में पं. दीनदयाल शर्मा के सहयोगी रहने के बाद 1886 ई. में चुनार के उर्दू अखबार 'अखबारे चुनार' के दो वर्ष संपादक रहे। 1888-1889 ई. में लाहौर के उर्दू पत्र 'कोहिनूर' का संपादन किया। उर्दू के नामी लेखकों में आपकी गणना होने लगी।

1889 ई. में महामना मालवीय जी के अनुरोध पर कालाकाँकर (अवध) के हिंदी दैनिक 'हिंदोस्थान' के सहकारी संपादक हुए जहाँ तीन वर्ष रहे। यहाँ पं. प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क से हिंदी के पुराने साहित्य का अध्ययन किया और उन्हें अपना काव्यगुरू स्वीकार किया। सरकार के विरूद्ध लिखने पर वहाँ से हटा दिए गए। अपने घर गुड़ियानी में रहकर मुरादाबाद के 'भारत प्रताप' उर्दू मासिक का संपादन किया और कुछ हिंदी तथा बाँग्ला पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया। अंग्रेजी का इसी बीच अध्ययन करते रहे। 1893 ई. में 'हिंदी बंगवासी' के सहायक संपादक होकर कलकत्ता गए और छह वर्ष तक काम करके नीति संबंधी मतभेद के कारण इस्तीफा दे दिया। 1899 ई. में वे 'भारतमित्र' कलकत्ता के संपादक हुए।

18 सितम्बर, 1907 को दिल्ली में लाला लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला में गुप्तजी का देहान्त हुआ। उस समय वह बयालीस वर्ष के भी नहीं हुए थे। यह उनकी अकाल-मृत्यु थी। हिन्दी-सेवा में उन्होंने अपना शरीर गला डाला था। वह भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र के सच्चे उत्तराधिकारी थे। उनके गद्य पर कहीं रोग शोक की छाया नहीं है। उसमें दासता के बंधन को तोड़ते हुए अभ्युदयशील राष्ट्र का आत्मविश्वास है। उनके गद्य में भारतेन्दु युग की वह जिन्दादिली है जो विपत्तियों पर हँसना चाहती थी, जिसके नीचे छिपी हुई व्यथा बहुतों की आंखों से ओझल रहती है।

उस युग में, जब देवनागरी को सरकारी नौकरियों के उम्मीदवार पूछते न थे, जब अंग्रेजी सरकार सन्-सत्तावन से सबक सीखकर हिन्दी-भाषी जाति में हर तरह से विघटन के बीज बो रही थी, जब आधुनिक हिन्दी-साहित्य का आरम्भ हुए पच्चीस-तीस साल

ही हुए थे, बालमुकुन्द गुप्त ने संसार की भाषाओं में हिन्दी का स्थान निर्दिष्ट करते हुए लिखा था।

"अंग्रेज इस समय अंग्रेजी को संसार-व्यापी भाषा बना रहे हैं और सचमुच वह सारी पृथ्वी की भाषा बनती जाती है। वह बने, उसकी बराबरी करने का हमारा मकदूर नहीं है, पर तो भी यदि हिन्दी को भारतवासी सारे भारत की भाषा बना सकें तो अंग्रेजी के बाद दूसरा दर्जा पृथ्वी पर इसी भाषा का होगा।"

आज पृथ्वी पर अंग्रेजी का उतना प्रसार नहीं है, जितना पचास साल पहले था। लेकिन जितना है, उतना प्रसार बनाये रखने में अंग्रेजी-प्रेमी भारतवासियों का हाथ सबसे ज्यादा है। संसार की पाँच सबसे ज्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का स्थान है। उसे संसार की भाषाओं में अपना सम्मानप्रद स्थान अवश्य मिलेगा लेकिन तब जब भारत में पहले अंग्रेजी का प्रभुत्व समाप्त हो। इस प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए जो भी संघर्ष करते हैं, उनके लिए बालमुकुन्द गुप्त का जीवन और साहित्य बहुत बड़ी प्रेरणा है।

गुप्तजी ने हर्बर्ट स्पेन्सर के बारे में लिखा था-

"उसने कभी कोई उपाधि न ली, कभी राजा का दर्शन करने न गया, कभी धनी की सेवा न की और न किसी सभा का सभापति हुआ।"

इन शब्दों में उन्होंने स्वयं अपने जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर दिया है। उन्हें लोकगीतों से विशेष प्रेम था और उन्हीं की तर्ज पर उन्होंने तीखी राजनीतिक कविताएं लिखी थीं। कविता, इतिहास, आलोचना, व्याकरण, उन्होंने जो भी लिखा, उनकी निगाह हमेशा जनता पर रही।

गुप्तजी हिन्दी भाषा की प्रकृति को बहुत अच्छी तरह पहचानते थे। वह अनगढ़ भाषा के कट्टर शत्रु थे। 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी के विरुद्ध जो लेखमाला प्रकाशित की थी, उसका व्यंग्य और परिहास, तर्क में उनकी सूझबूझ, शब्द और व्याकरण की समस्याओं पर सरस वाक्य-रचना, सब कुछ अनूठा है। वाद-विवाद की कला के वह आचार्य हैं।

उनके वाक्यों में सहज बाँकपन रहता है। उपमान ढूंढने में उन्हें श्रम नहीं करना पड़ता। व्यंग्यपूर्ण गद्य में उनके उपमान विरोधी पक्ष को परम हास्यास्पद बना देते हैं।

"आपके हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ को पिघलाती है, फारिस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म करती है।"

"समुद्र, अंग्रेजी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकाएँ बैठने के लिए कुर्सी-मूढ़े। बिजली, कलें चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूती।"

अपने व्यंग्य-शरों से उन्होंने प्रतापी ब्रिटिश राज्य का आतंक छिन्न-भिन्न कर दिया। साम्राज्यवादियों के तर्कजाल की तमाम असंगतियाँ उन्होंने जनता के सामने प्रकट कर दीं। अपनी निर्भीकता से उन्होंने दूसरों में यह मनोबल उत्पन्न किया कि वे भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बोलें।

'भारतमित्र' में आपके प्रौढ़ संपादकीय जीवन का निखार हुआ। भाषा, साहित्य और राजनीति के सजग प्रहरी रहे। देशभक्ति की भावना इनमें सर्वोपरि थी। भाषा के प्रश्न पर सरस्वती पत्रिका के संपादक', पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी से इनकी नोंक-झोंक, लॉर्ड कर्जन की शासन नीति की व्यंग्यपूर्ण और चुटीली आलोचनायुक्त 'शिवशंभु के चिठ्ठे' और उर्दूवालों के हिंदी विरोध के प्रत्युत्तर में उर्दू बीबी के नाम चिठ्ठी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेखनशैली सरल, व्यंग्यपूर्ण, मुहावरेदार और हृदयग्राही होती थी। पैनी राजनीतिक सूझ और पत्रकार की निर्भीकता तथा तेजस्विता इनमें कूट कूटकर भरी थी।

पत्रकार होने के साथ ही वे एक सफल अनुवादक और कवि भी थे। अनूदित ग्रंथों में बाँग्ला उपन्यास मडेल भगिनी और हर्षकृत नाटिका रत्नावली उल्लेखनीय हैं। स्फुट कविता के रूप में आपकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ था। इनके अतिरिक्त आपके निबंधों और लेखों के संग्रह हैं।

****

भूपेश बारोट
प्रबंधक (राजभाषा)
कॉर्पोरेट कार्यालय

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

(21 फरवरी 1896 से 15 अक्तूबर 1961)

छायावाद के महाप्राण एवं विद्रोही कवि के नाम से विख्यात श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल के महिषादल रियासत (जिला मेदिनीपुर) में 21 फरवरी, सन् 1896 में हुआ था। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे। निराला जी ने दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने अपने सिद्धांत को त्यागकर समझौते का रास्ता कभी नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। निराला ने 1920 ई. के आसपास अपना लेखन कार्य आरंभ किया, उनकी प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' है। कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रचुर मात्रा में लेखनी की है। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं:

काव्यसंग्रह: अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत कुंज, सांध्य काकली, अपरा। **उपन्यास:** अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, काले कारनामे (अपूर्ण), चमेली (अपूर्ण), इन्दुलेखा, तकनीकी। **कहानी संग्रह:** लिली, सखी सुकुल की बीवी, चतुरी चमार, देवी निबन्ध। **आलोचना:** रवीन्द्र कविता कानन, प्रबंध पद्म, प्रबंध प्रतिमा, चाबुक, चयन। पुराण कथा: महाभारत, रामायण की अन्तर्कथाएँ, बालोपयोगी साहित्य, भक्त ध्रुव, भक्त प्रहलाद, भीष्म, महाराणा प्रताप। **अनुवाद:** रामचरितमानस (विनय-भाग), आनंद मठ (बांग्ला से गद्यानुवाद), विष वृक्ष, कृष्णकांत का वसीयतनामा, कपालकुंडला, दुर्गेश नन्दिनी, राज सिंह, राजरानी, देवी चौधरानी, युगलांगुलीय, चन्द्रशेखर, रजनी, श्रीरामकृष्णवचनामृत, परिव्राजक, भारत में विवेकानंद, राजयोग इत्यादि।

निराला जी का जीवन विभिन्न असमानताओं, असंगतियों एवं अभावों से परिपूर्ण था किंतु परिस्थितयों ने कवि को उद्बुद्ध एवं जागरूक बनाकर उसे अन्याय के प्रति संघर्ष की भरपूर शक्ति दी। यही शक्ति निराला में राष्ट्रीय चेतना के रूप में उभरकर सामने आई जिसने कवि को राष्ट्रीय गौरव की शाश्वत अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी प्रदान की। उन्होंने कविता के लिए लिखा है कि **"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।" मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है।"** बीसवीं सदी के सिद्धहस्त कवि और बहुमुखी प्रतिभा के धनी सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व उनके

नाम के अनुकूल ही है। उनकी रचनाओं में जैसी विविधता, व्यापकता और समग्रता देखने को मिलती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण स्वनामधन्य कवि श्री निराला को समग्रता के साथ मूल्यांकन के पटल पर उतार पाना कठिन ही नहीं, दुष्कर कार्य भी है। निराला के गद्य में जहाँ एक ओर समाज का यथातथ्य चित्रण है; वहीं दूसरी ओर मनोभाव, सामयिक प्रश्नाकुलताएँ और कथ्य की व्यापकता भी चित्रित होती है। इसी प्रकार निराला के काव्य में एक ओर छायावाद की प्रवृत्तियों के अनुरूप कल्पना, रहस्य-रोमांच और प्रकृति का सुंदर चित्रण है, तो दूसरी ओर समाज और राष्ट्र के प्रति एक समर्पित साहित्यिक का जीवन-दर्शन है। निराला की शक्ति यह है कि वे चमत्कार के भरोसे अकर्मण्य नहीं बैठ जाते और संघर्ष की वास्तविक चुनौती से आँखें नहीं चुराते।

सन् 1924 ई. में 'मतवाला' पत्रिका में प्रकाशित 'बादल राग' कविता में बादल को क्रांति का प्रतीक मानकर लघु मानव के दु:ख को अपने काव्य की विषय-वस्तु बनाया तथा उस क्षण को क्रांति में तब्दील किया। छायावादी कवियों में निराला का व्यक्तित्व सर्वाधिक क्रांतिकारी है परिणामस्वरूप वे क्रांति का स्वागत करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। बल्कि वे उसका आह्वान करते है उसे आमंत्रण देते हैं। उन्होंने बादल के माध्यम से विप्लव का आह्वान कर दीन-हीन शोषित जनता में क्रांति एवं राष्ट्रीयता की भावना का अद्‌भुत संचार किया-

"जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझको बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही है आधार है,
ऐ जीवन के पारावार!"

कहा जाता है कि छायावादी कवियों ने परतंत्र युग में आँखे खोली थीं। उस समय भारत में स्वाधीनतावादी आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। यूं कहें कि छायावाद का जन्म ही स्वाधीनता की चेतना से हुआ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आंदोलनों को कुचलने के लिए रॉलेट ऐक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, साइमन कमीशन, भगत सिंह को फाँसी जैसे वीभत्स कार्यों को अंजाम दिया। परिणामस्वरूप भारतीय जनता में अंग्रेज सरकार के प्रति आक्रोश एवं नफरत और बढ़ती गई। समाज का लगभग प्रत्येक वर्ग आजादी के लिए बेचैन हो उठा। यह बेचैनी छायावादी काव्य में भी सर्वत्र देखी जा सकती है। निराला जी ने भारतीय जनमानस में देश-प्रेम, राष्ट्रीयता, आत्म-गौरव, बलिदान एवं स्वाधीनता की भावना को जगाने का साहसी कार्य किया। निराला के काव्य में स्वाधीनता का स्वर अद्योपरांत सर्वत्र देखा जा जकता है। निराला ने अपने वर्तमान से आँखे मूँदकर अतीत के स्वर्णिम आलोक में ऊर्ध्वगमन नहीं किया। उनके ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रबंध काव्यों का भाव-बोध भी तदयुगीन समाज की यथार्थपरक भूमि पर आधारित है। वस्तुत: निराला ने परंपरागत काव्य प्रबंधों का

आधुनिक युग के आलोक में पुनरोद्धर किया। **'राम की शक्ति पूजा'** एवं 'तुलसीदास' नामक लम्बी कविताओं में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की अद्‌भुत झलक है। राम की शक्ति पूजा में राम-रावण का युद्ध प्रकारांतर में भारतीय जनमानस का ब्रिटिश सरकार के प्रति स्वाधीनता का युद्ध है। **'तुलसीदास'** में तुलसी का आत्म संघर्ष मात्र तुलसी का आत्म संघर्ष न रहकर सामान्य मनुष्य का आत्म संघर्ष बन जाता है। इस प्रकार इनके काव्य में अपने वर्तमान को बदलने की प्रबल आकांक्षा भी विद्यमान है। निराला जी ने भारतीय स्वतंत्रता का बोध देशवासियों को अतीत के पन्नों को पलटते हुए कराया।

निराला जी द्वारा **'जागो फिर एक बार'** कविता के माध्यम से देशवासियों में नवऊर्जा भरने का उत्तम प्रयास किया गया है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन का शंख फूंका है। भारतीय अतीत की गौरवशाली परंपरा का उन्हें जितना ज्ञान और बोध था उतना अन्य किसी कवि की रचनाओं में व्यक्त नहीं हुआ। इसमें भारतवासियों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं कि स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अन्य के विरुद्ध शेर की तरह अंग्रेजों का मुकाबला करो। आगे वे कहते हैं कि बलि के लिए शेरनी का बच्चा कोई नहीं छीन पाता क्योंकि वह अत्याचार नहीं सहती बल्कि वह अपने शत्रु पर आक्रमण करती है जबकि बकरे की माँ कायर होने के कारण अपने शिशु की रक्षा नहीं कर पाती परिणामस्वरूप उसके बच्चों की बलि दे दी जाती है। अतः निराला जी ने परतंत्रता से मुक्ति के लिए देशवासियों में अंग्रेजों से शेर की तरह मुकाबला करने को आह्वान किया है:

"सिंह की गोद से
छीनता रे शिशु कौन?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण? रे अजान!
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष।"

'राम की शक्ति पूजा', 'भारती वन्दना', 'बादलराग' इत्यादि निराला जी की राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की रचनाएँ हैं जिसमें निराला जी राष्ट्रहित के लिए मानवतावादी समाज की स्थापना को प्रमुख मानते हैं तथा भारतीय गौरव का बखान करते हुए भविष्य का निर्माण करने हेतु प्रेरित करते हैं-

''भारति, जय विजय करे / कनक-शस्य-कमल धरे।
लंका पदस्थ-शतदल / गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल / स्तव कर बहु अर्थ भरे।।

अपनी प्रार्थना 'वर दे, वीणा वादिनी वर दे' में वे अपने लिए प्रार्थना नहीं बल्कि भारत के लिए प्रार्थना करते हैं। वे इस प्रार्थना के माध्यम से नवीन स्वतंत्रता की बात करते हैं तथा यह आह्वान करते हैं कि सम्पूर्ण भारत में अमृत की लहर भर दो। कविता में इतनी नवीनता सिर्फ निराला जी ने प्रदान की है। कहते हैं निराला जी ने न सिर्फ कविता

बल्कि उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण आदि विधाओं को भी नया रूप दिया। मिर्जा राजा जय सिंह के नाम शिवाजी का पत्र राष्ट्रीय गौरव का अमूल्य दस्तावेज है। जिसमें परस्पर वैमनस्य और क्षुद्र स्वार्थ के लिए जय सिंह की भांति भारत को पराधीन बनाने वालों से सहयोग करने वाले लोगों की आँखें खोलने के लिए यह पत्र पर्याप्त भर नहीं स्वाधीन भारत के लिए दिशा संकेत है।

निराला जी साहित्यिक, दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में एक नवीन उन्मेष, नई उत्तेजना लेकर आते हैं। किसी भी स्थान पर उनके विचारों को देखकर उनकी क्रांतिकारिता का परिचय सहज ही प्राप्त होता है। समाज की जर्जर व्यवस्थाओं, राजनीतिक गुटबंदियों, धार्मिक रूढ़ियों पर इन्होंने कड़े प्रहार किए हैं। निराला न केवल साहित्यिक जीवन में अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी क्रांतिकारी रहे हैं। जिसके कारण उन्हें अपने ब्राह्मण समाज में अनेक उपेक्षाओं का सामना करना पड़ा लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी।

निराला 'राष्ट्रीय' कवि होने के साथ ही विश्व कवि भी माने जाते हैं। अपनी जन्मभूमि के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा तथा प्रेम-भाव है लेकिन उनकी 'राष्ट्रीयता' तथा राजनीतिक विचारधारा विशुद्ध सांस्कृतिक आधार पर है।

****

संदर्भ:

गूगल इंटरनेट

1. https://www.google.com/url?sa=t&source=web&rct=j&url=http://darasal.blogspot.com/2015/01/blog-post_65.html%3Fm%3D1&ved=2ahUKEwiriN_75sv5AhXv-DgGHc0qBI44ChAWegQIBBAB&usg=AOvVaw2ycpMtCpcrnJYTWsZ-A-Ru
2. https://www.pustak-bharati-canada.com/pbj_dwts/Articles%202021/Pradip%20Kumar,%20%E0%A4%86%E0%A4%A7%E0%A5%81%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%95%20%E0%A4%95%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A5%87%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A5%8D%E0%A4%AF%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82.htm
3. http://bundela-desa-ke.blogspot.com
4. http://abhivyakti.life

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
प्रबंधक (राजभाषा)
कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

श्रीधर पाठक

(11 जनवरी, 1860-13 सितंबर 1928)

श्रीधर पाठक का जन्म 11 जनवरी, 1860 को आगरा में हुआ था। आधुनिक युग के साहित्यकारों में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले पाठक जी को 'कविभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। ये हिंदी व संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। प्रकृति प्रेम से लेकर राष्ट्र प्रेम तक अपनी रचना कौशल का अद्‌भुत परिचय देने वाले 'श्रीधर पाठक' की रचना संसार ब्रजभाषा से लेकर खड़ी बोली तक व्याप्त है। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में भारतेंदु युग से राष्ट्र प्रेम की जो साहित्यिक भूमि तैयार हो रही थी, उसे द्विवेदी युग में काफी प्रसार मिला। इस युग में मैथलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध के साथ-साथ श्रीधर पाठक भी अपने युग की मूल चेतना-राष्ट्र भक्ति, जन जागरण, मातृभूमि प्रेम, स्वाधीनता के प्रति लगातार लेखन धर्म का पालन करते रहे और भारत के अतीत गौरव का गान करते रहे। इन्होंने समाज के समक्ष आजादी के प्रति न्यौछावर होने की पृष्ठभूमि को तैयार किया। इन्होंने राष्ट्र, मातृभूमि के प्रति जन सामान्य में उमंग और प्रेम जगाने के लिए हिंदी में ही नहीं बल्कि ब्रजभाषा में भी कविताएँ लिखीं। श्रीधर पाठक के काव्य में राष्ट्र से लेकर प्रकृति तक एकनिष्ठ प्रेम देखने को मिलता है। देशवासियों को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए वे लगातार लिखते हैं। वे अपनी मातृ प्रेम की वंदना करने से तनिक मात्र भी पीछे नहीं हटते और जन सामान्य का भी आह्वान करते हैं कि वे ज्ञान, विज्ञान, प्रेम रूपी अनवरत बहने वाली धारा से परिपूर्ण माँ भारती की वंदना करें। अपनी **बंदहुँ मातृ-भारत धरनि** कविता में वे लिखते हैं-

सकल-जग-सुख-श्रैनि, सुखमा-सुमति-संपति-सरनि
ज्ञान-धन, विज्ञान-धन-निधि, प्रेम-निर्झर-झरनि।

जब विदेशी आक्रंताओं से विक्षुब्ध भारत के जन-मन में त्रास, निराशा घर कर रही थी, तब अन्य कवियों के साथ-साथ श्रीधर पाठक ने भी देश प्रेम, देश की स्वर्णिम गाथाओं, देश की अद्वितीय सुंदरता, देश में व्याप्त करुणा व दया की भावना का बखूबी चित्रण किया। वे जन-मन में देश के कण-कण का गुणगान करते हुए कहते हैं कि भारत विश्व के सिर का ताज है। यह अपने गुणों के कारण जग में अनूठा है। इसकी शान हिमालय है, यह ऋषियों एवं मुनियों की तपोभूमि है। वे अपनी कविता में देश का गुणगान करते हुए कहते हैं-

प्यारा देश, जय देशेश,
अजय अशेष, सदय विशेष....
जय जय शुभ्र हिमाचल-श्रृंगा,
भानु-प्रताप-समत्कृत अंगा....

जग में कोटि-कोटि जुग जीवे,
रहै स्वतंत्र हमेशा।
जय जय प्यारा भारत-देश॥

समाज में व्याप्त असामाजिक तत्व जो जनता को गुमराह कर रहे थे और स्वतंत्रता के प्रति भ्रम का माहौल बना रहे थे। उन पर करारा प्रहार करते हुए जन-मानस में राष्ट्रीयता की भावना, आजादी का महत्व और स्वदेश को स्वर्ग बताते हुए वे निज स्वेदश कविता में लिखते हैं-

निज स्वदेश ही एक सर्व-पर ब्रह्म-लोक है।
निज स्वदेश विज्ञान-ज्ञान-आनंद-धाम है।
सो निज स्वदेश का, सर्व विधि, प्रियवर, आराधन करो।
अविरत-सेवा-सन्नद्ध हो सब विधि सुख-साधन करो॥

आगे स्मरणीय भाव में वे आजादी की महत्ता को व्याख्यायित करते हैं, वे बताते हैं कि किस तरह स्वतंत्र देश की तारीफ और पराधीन देश की निंदा की जाती है, परतंत्र देश किस तरह से अंधेरे में रहता है-

वंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों।
बांधवता में बँधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों।
निंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों।
सब प्रकार पर-तंत्र, पराई प्रभुता के अभिमानी हों॥

स्पष्ट है कि कवि ने केवल हिंदी में ही नहीं बल्कि ब्रजभाषा में भी राष्ट्र प्रेम और देश का गुणगान किया है। देश की आजादी का स्वप्न केवल पुरुषों ने ही नहीं अपितु स्त्रियों ने भी देखा था। स्त्रियों में देश के प्रति अद्वितीय प्रेम का अनुपम चित्रण कवि ने अपनी कविता में किया है। पत्नी अपने पति से देश पर न्योछावर होने की बात सुनकर कहती है कि वे देश के लिए खुद को कुर्बान करने से बिल्कुल भी पीछे न हटेगी। वे देश को अपने हृदय से लगाना चाहती है, भारत केवल मन में ही नहीं है, वह हृदय में, भी बसा है, जिसपर वह हर बार अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार है। इस संबंध में उनकी कुछ पंक्तियां निम्नलिखित हैं-

भारत पै सैयाँ मैं बलि-बलि जाऊँ
बलि-बलि जाऊँ हियरा लगाऊँ....
मन का, मँदिरवा का प्यारा बसैया
मैं बलि-बलि जाऊँ
भारत पै सैयाँ मैं बलि-बलि जाऊँ।

श्रीधर पाठक की संपूर्ण रचना संसार भारत-भूमि की वंदना से ओत-प्रोत है। उनमें राष्ट्रीयता की अद्वितीय ज्योत दिखाई पड़ती है। ब्रजभाषा और हिंदी में साथ-साथ रचना करने के कारण उनके पाठक वर्ग की संख्या बहुत बड़ी रही, जिन्हें वे अपनी कविताओं के माध्यम से एक सुर में बाँधते रहे।

****

राजा साव
सहायक प्रबंधक(राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, अमृतसर

प्रतापनारायण मिश्र

पंडित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म 24 सितंबर, 1856 में भारतेंदु युग में उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले में हुआ था। मिश्र जी अपने मूल नाम के अतिरिक्त स्वत: अपने कई उपनामों से रचना करते थे, जिसमें 'ईश्वरालम्बित' और 'प्रेमदास' अधिक प्रसिद्ध थे। जीवन और साहित्य का एक अभिन्न संबंध है। कोई भी साहित्यकार कितना भी तटस्थ क्यों न हो फिर भी साहित्य में उसके जीवन का कुछ न कुछ अंश आ ही जाता है। साहित्यकार का व्यक्तित्व तो उसके साहित्य में निहित होता है। प्रतापनारायण मिश्र का हिंदी पर तो अपूर्व अधिकार था ही, उर्दू भी वह अच्छी जानते थे। इसके अतिरिक्त फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी का भी इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। प्रांतीय भाषाओं में बांग्ला, मराठी एवं पंजाबी भी जानते थे। मिश्र जी सुधारवादी साहित्यकार थे, इन्होंने कुछ भी लिखा देश-हिताय लिखा। उनकी कला जीवन के लिए थी। वे कहते हैं-

"पढ़ि, कमाय कीन्हौ कहा हरे न देश कलेश।
जैसे वांता घर रहे तैसे रहे विदेश।।"

उन्होंने सर्वप्रथम स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया जिसकी झलक उनकी कविताओं में मिलती है। एक अंश आपके लिए प्रस्तुत है-

"सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहीं चुप लातै खाव।
राजा करै सो न्याव है पासा परै सो दाव।।"

उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। पहला-परमेश्वर के प्रेम में मग्न रहना और दूसरा-देश के लिए स्वयं को उत्सर्ग कर देना। इन्हीं दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मिश्र जी आजीवन लगे रहे। वह कहते हैं कि-**"अपना तो दृढ़ निश्चय यह है कि परमप्रिय प्रेमानंद में मग्न होना ही लाख जीवन मुक्ति के सुख से उत्तम है। .... रहा धर्म, सो देश भक्ति से बढ़के कोई धर्म नहीं हैं।"**

देशोन्नति के जितने भी कार्य हो सकते हैं, उन्होंने उन सभी कार्यों को करना अपना उद्देश्य बनाया। **'हिंदी, हिन्दू, हिंदूस्तान'** मिश्र जी का प्रिय नारा था। प्रताप नारायण मिश्र जी को केन्द्रित करते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध जी लिखते है-**"देश-ममता, जाति ममता और भाषाप्रेम उनकी रग-रग में भरा था।"**

तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक स्थिति का जो प्रभाव मिश्र जी पर पड़ा, वह उनकी कविताओं में स्पष्ट दिखाई देता है। वे ईश्वर से भारत के कल्याण की प्रार्थना भी करते हैं-

"निज करुणा रस बरसावौ प्रभु! अब भारत को अपनावौ।
देखि दुर्दशा आरज कुल की वेगि दया उर लाऔ।।"

अंग्रेजों द्वारा किया जा रहा शोषण दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था, जिससे खीझ कर वे लिखते हैं-

"अपनो काम आपने ही हाथन मल होई।
परदेशिन परथर्मिन ते आशा नाहीं कोई।।"

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों से काफी प्रभावित थे और उन्होंने उनके विचारों को प्रचारित भी किया। समाज सुधार की दृष्टि से उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे। एक सफल व्यंगकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी द्वारा रचित नाटक, कविता, निबंध इत्यादि निम्नलिखित है-

नाटकः गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' का अनुवाद)।

निबंध संग्रहः निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

कविताः प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, कानपुर महात्म्य, ब्रैड़ला स्वागत, दंगल खंड़, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

मिश्र जी के ऊपर तत्कालीन साहित्यिक स्थिति का गहरा प्रभाव था। हिंदी की वर्तमान स्थिति से वे बहुत चिंतित थे। उनका कहना था- **"हिंदी का पूर्ण प्रचार हुए बिना हिंदुओं का उद्धार असंभव हैं।"** देश की उन्नति के लिए वह हिंदी की उन्नति आवश्यक समझते थे। जनता को हिंदी का महत्व समझाते हुए वह कहते हैं-

"वहहु जो सांचहु निज कल्यान। तौ सब मिलि भारत संतान।।
जयौ निरंतर एज जबान। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।।
तबहिं सुधरिहै जनम निदान। तबहि मलो करिहैं भगवान।।
जब तहिहै निशि दिन यह ध्यां। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान"

प्रतापनारायण मिश्र जी की कविताओं में देशप्रेम के साथ-साथ अंग्रेजों के प्रति आक्रोश की लपटें भी दिखाई पड़ती हैं। वे अंग्रेजों द्वारा हो रहे शोषण के विषय में लिखते हैं-

"सवैसु लिए जात अंग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन आतं का करती है, कहुं टटकन गाजै तरती हैं।"

सरकार द्वारा जनता पर कई नये टैक्स लगाए गए। जिसका विरोध करते हुए मिश्र जी अपनी कविता में लिखते हैं-

"महंगी और टिक्स के मारे सगरी वस्तु अमोली है।
कौन भांति त्योहार मनैए कैसे कहिए होली है।।"

उन्होंने अपनी लेखनी से समसामयिक स्थिति का चित्रण बड़े ही स्पष्ट शब्दों में किया है। वह जनता को तत्कालीन स्थिति से अवगत कराना चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि जब भारतीय अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित होंगे और समग्र रूप से उस पर विचार करेंगे तो निश्चय ही उनमें राष्ट्रीयता की भावना जागेगी। उन्होंने देश की वास्तविक स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है-

"हाय जहां के धनहि सौ, धनी भये सब देश।
तहं दरिद्र छयो रहत सहत न बनत कलेश
चौथाई ते अधिक जन, भरि न सकैं निज पेट।
तेही पर पुत्र कलत्र की चिंता देत चपेट।।"

मिश्र जी ने साहित्य की सभी विधाओं को अपने कृतित्व से समृद्धशाली बनाया और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने मौलिक साहित्य तो लिखा ही, अनेक बांग्ला पुस्तकों का हिंदी अनुवाद भी किया। उन्होंने कई राजनीतिक निबंधों की रचना की जो राष्ट्रीय विचारधारा से संबंधित हैं, जैसे-देशोन्नति, समझदार की मौत है, भारत का सर्वोत्तम गुण, देशी कपड़ा, पंचायत, पुलिस की निंदा क्यों की जाती है। इनमें मिश्र जी ने शासकों की नीति के सजीव चित्र खींचे हैं। अंग्रेजों की अनैतिकता, पक्षपात, शोषण आदि का बड़ी निर्भीकता के साथ खंडन किया है। देशहित की बात कहने में वे जरा भी नहीं घबराते हैं। **"खरी बात शाहिदुल्ला कहैं सबके जी से उतरे रहैं"** ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था।

मिश्र जी के कविताओं में स्वतंत्र चेतना का भाव एवं स्वच्छंदता जिस प्रकार परिलक्षित होती है उसे अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में समझा जा सकता है- **"जितने पथ उन्होंने देश और जाति संबंधी लिखे हैं, उनमें उनके हृदय का जीवंत भाव बहुत ही जागृत मिलता है जो हृदयों में तीव्रता के साथ जीवन धाराएँ प्रवाहित करता है।"**

भारतेंदु युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। इसलिए इस युग के अधिकांश साहित्यकार देशभक्त थे। उनमें राष्ट्रीय चेतना की प्रधानता थी। डॉ. हरदेव बाहरी लिखते हैं- **"इन कवियों की आधुनिकता और स्वच्छन्द वृति का प्रदर्शन इनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और व्यापक भावनाओं की अभिव्यंजना से होता है। ये भारत की दरिद्रता और अंग्रेजों द्वारा किये गये आर्थिक शोषण पर बराबर दु:ख प्रकट करते रहे है, जनता से संगठित होने को कहते है और सरकार से शासन संबंधी सुधारों की मांग करते रहे हैं।"**

मिश्र जी का साहित्यिक प्रदेय बड़ा प्रभावशाली और प्रेरक है। मिश्र जी देश-हितैषी साहित्यकार थे। इसलिए उनके साहित्य में लोक-कल्याण और साहित्यिकता का सुंदर सामंजस्य दिखाई पड़ता है। मिश्र जी ने राष्ट्र की सेवा तन, मन और धन से की। उन्होंने अपनी कर्मठता और साहित्य-सेवा से जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार किया तथा हिंदी को गतिशीलता देकर उसे नयी दिशा की ओर मोड़ा। मिश्र जी द्वारा हिंदी नये साँचे में ढाली गयी और उसे शक्ति प्राप्त हुई। मिश्र जी जैसा दूसरा कोई प्राणवान साहित्यकार हिंदी में मिलना दुर्लभ है।

****

अभिजीत साव
सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, अंचल कार्यालय, इलाहाबाद

गरिमेल्ल सत्यनारायण

'माकोद्दी तेल्ल दोरतनम' हमें यह गोरों का राज नहीं चाहिए का गान करते हुए सत्याग्रहियों में जोश और उत्तेजना बढ़ाने वाले और 'दंडालु दंडालु भारत माता' 'प्रणाम प्रणाम भारत माता' कहते हुए लोगों में देश भक्ति को जागरूक करने वाले कवि गरिमेल्ल सत्यनारायण थे। स्वतंत्रता के कवियों में विशेष स्थान अर्जित कर चुके उनके सभी गीतों ने राष्ट्रीय वीरता के भाव से ओतप्रोत उस समय के पाठकों को उत्साहित किया।

गरिमेल्ल सत्यनारायण का जन्म 14 जुलाई 1893 को श्रीकाकुलम जिले के नरसन्ना पेटा तालुक के गोनपाडु गांव में हुआ था। उनकी माता सूरम्मा, पिता वेंकट नरसिंहम थे। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा प्रियाग्रहरम में और उसके बाद उच्च शिक्षा विजयनगरम, मछलीपट्टनम और राजामहेंद्रवरम में की। बीए पूरा करने के बाद, उन्होंने गंजम कलेक्टर कार्यालय में क्लर्क और विजयनगरम हाई स्कूल में शिक्षक के रूप में काम किया। उसके बाद जब दिसंबर 1920 में कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस महासभा में असहयोग आंदोलन प्रस्ताव पारित हुआ, देशप्रेम की भावना के साथ आंदोलन में शामिल होते हुए गरिमेल्ल ने माकोद्दी तेल्ल दोरतनम, (हमें यह गोरों का राज नहीं चाहिए) गीत लिखा। उन दिनों राजमंड्री में इस गाने की डुप्लीकेट प्रतियां बेड़ा (12 पैसे) की दर से बेची जाती थीं।

(माकोद्दी तेल्ल दोरतनम देवा)
(माकोद्दी तेल्ल दोरतनम)
(मा प्राणालपै पोंचि-मानालु हरियिंचि)
(माकोद्दी तेल्ल दोरतनम देवा)
(माकोद्दी तेल्ल दोरतनम)

हमें यह गोरों का राज नहीं चाहिए.. हे देव... हमें यह गोरों का राज नहीं चाहिए। हमारी जिंदगी दांव लगाने वाले और हमारी प्रतिष्ठा को लूटने वाले इन गोरों का राज हमें नहीं चाहिए।

(पन्नेंडु देशालु-पांडुचुन्ना गानि)
(पटेडु अन्नमे लोपमंडी)
(उप्पु! मुट्टु कुंटे दोषमण्डी)
(नोट मट्टिकोट्टि पोतादण्डी)

अर्थात्

सभी राज्यों में फसल पर्याप्त रूप से उग रही है। लेकिन भारतीय एक मुट्ठी अनाज के लिए संघर्ष कर रहे हैं। नमक को छूना भी दंडनीय है क्योंकि गोरे आदमी ने नमक पर भी टैक्स लगाया। उसने हर चीज पर कर लगाया और भारतीयों को भोजन से वंचित कर दिया।,

(प्रपंचमुन शांति-प्रेमा)
(दीपन्बुलु वेलिगिंचे नी देशमंता)
(गांधी टेनिगिंचे नी क्रोत्त वार्ता)
(स्वेच्छ मोलिपिंचे मन शक्ति चेता)
(बलमु दुर्बलमनु-भेदमिच्छटा लेदु)

अर्थात्

दुनिया में शांति और हमारे देश में प्यार का दिया जलाने वाले गांधी जी ने, हमारी शक्ति से नई स्वतंत्रता की घोषणा की, जहां ताकतवर और कमजोर में कोई फर्क नहीं हैं।

इस गीत में कुल 162 पंक्तियां शामिल थीं जो शायद उस समय का सबसे लंबा गीत था। स्थानीय पुलिस ने गाने को देशद्रोही और आपत्तिजनक करार दिया। उनका गीत 'माकोद्दी तल्लादोरातानामु' कई स्तरों पर क्रांतिकारी था। सबसे पहले, उन्होंने शासन के खिलाफ लोगों की गरीबी और लाचारी को दर्शाया और महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन के द्वारा सभी उम्र और वर्गों के लोगों को 'सत्याग्रही' बनने के लिए प्रेरित किया।

उस समय के एक ब्रिटिश कलेक्टर "ब्रेकन" ने इस गाने के बारे में सुना और उन्होंने गरिमेल्ल को बुलाया और उसे पूरा गाना गाने के लिए कहा। गरिमेल्ल न केवल कवि थे, वे उत्कृष्ट गायक भी थे। गरिमेल्ल का गीत सुनने वाले ब्रिटिश कलेक्टर ने कहा कि भले ही मैं तेलुगु नहीं बोलता, या समझ पाता फिर भी मैं इस गीत की महान शक्ति की कल्पना कर सकता हूं और यह कैसे आम लोगों को भी प्रेरित कर सकता है। उस गीत को लिखने के लिए गरिमेल्ल को एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन दिनों, कांग्रेस के स्वयंसेवक खद्दर के कपड़े पहनते थे गांधी टोपी लगाते, सड़कों पर गाते और मार्च करते थे।

अपनी सजा पूरी करने के बाद गरिमेल्ल को जेल से रिहा कर दिया गया और उन्होंने फिर से लोगों के बीच गाना शुरू कर दिया। उन्होंने लोगों को इतना प्रभावित किया कि यह देख सरकारी अधिकारी डर गए। उन्होंने फिर से गरिमेल्ल को गिरफ्तार कर लिया। काकीनाडा मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने उन्हें दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। उनके पिता की मृत्यु जनवरी 1923 में हुई थी। उस समय गरिमेल्ल जेल में थे। सरकारी अधिकारी ने कहा कि अगर आप माफी मांगेंगे तो वे

उनको रिहा करने के लिए मान जाएंगे लेकिन गरिमेल्ल बिना माफी मांगे जेल में ही रहे।

गरिमेल्ल की पुस्तक 'स्वराज्य गीतामुलु' 1921 में प्रकाशित हुई थी। 1923 में हरिजन गीत, 1926 में खंडकाव्यम, भक्ति गीता, बाला गीता आदि प्रकाशित हुए। गरिमेल्ल को कई बार जेल भी हुई। जेल में रहते हुए उन्होंने तमिल और कन्नड़ सीखी। उन्होंने तमिल से "थिरुक्कुरल", "नंदियार", कन्नड़ से "तल्लीकोटा" का तेलुगु में अनुवाद किया। उन्होंने कुछ खंड काव्य लिखे और 'माणिक्यम' नामक एक नाटक प्रकाशित किया। गरिमेल्ल ने कुछ रचनाएँ अंग्रेजी में भी लिखीं। उन्होंने अंग्रेजी से कुछ ग्रंथों का तेलुगु में अनुवाद किया। भोगराजू पट्टाभिसीतारमैया ने अंग्रेजी में लिखी किताब 'द इकोनॉमिक कॉन्क्वेस्ट ऑफ इंडिया' का तेलुगु में अनुवाद किया। अंग्रेजी कविता "हार्ट ऑफ द नेशन" का तेलुगु में अनुवाद किया। उन्होंने त्रिलिंग पत्रिका में 'दुंदुभी, विकारी' नाम से राजनीतिक लेख लिखे। 1937 में चीन-जापान पुस्तक लिखी। 1933 में गरिमेल्ल आजीविका के लिए मद्रास पहुँचे। वहां उन्होंने गृहलक्ष्मी पत्रिका के संपादक के रूप में नौकरी की। कुछ दिनों के बाद वे "आंध्रप्रभा" में शामिल हो गए। उन्होंने कुछ समय के लिए "आनंदवाणी" के संपादक के रूप में काम किया। उसके बाद उन्होंने कुछ समय के लिए स्वतंत्र पत्रकार के रूप में जीवन यापन किया।

दुर्भाग्य यह है कि हमारे इस स्वतंत्रता सेनानियों के दुखों को किसी ने नहीं पहचाना। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की और इसे प्राप्त करने में मदद करने वाले लोगों की विरासत को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ गए। जिस तरह से इन क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया, वह अक्सर अज्ञानी संतानों द्वारा अपरिचित छोड़ दिया जाता है।

यही एकमात्र कारण था कि उन्होंने अपना जीवन गरीबी में बिताया और 18 दिसंबर 1952 को गरिमेल्ल सत्यनारायण का निधन हो गया। उनकी मृत्यु को "अनवेप्टेड, अनऑनर्ड एंड अनसंग" के रूप में संदर्भित किया। देश के स्वतंत्रता संग्राम में उनके अविस्मरणीय योगदान के बावजूद आज गिने-चुने लोग ही उन्हें पहचानते हैं। उनके कुछ गीतों को हाल ही में खोजा गया है और एक सीडी जारी की गई जिसमें शास्त्रीय संगीत शैली में कोमांदूरी शेषाद्रि द्वारा उन्हें आवाज दी गई थी। गरिमेल्ल एक महान तेलुगु कवि और सत्याग्रही थे, इस कवि की विरासत समय के साथ गायब हो गई थी।

****

श्वेता गंगिरेड्डी
प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

देशभक्ति के नज़्मकार बृज नारायण चकबस्त

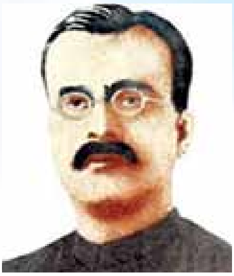

کہاں ہے ملک کا سرتاج، قوم کا سردار؟
پکارتے ہے مدد کے لئے داروں دیوار
وطن کی خاک سے پیدا ہے جوش کے آثار
جمیں ہلاتی ہے، اڑاتا ہے خون بن کے گوبار

कहाँ है मुल्क के सरताज, कौम के सरदार?
पुकारते हैं मदद के लिए दरों-दीवार
वतन की खाक से पैदा है जोश के आसार
जमीं हिलती है, उड़ता है खून बन के गुबार

हमारे देश के आधुनिक काल के इतिहास की सबसे बड़ी घटना आजादी है जिसे प्राप्त करने के लिए सन् 1857 में बिगुल बजा था और इसकी गूंज तब तक बनी रही जब तक भारत माता के कदमों से अंग्रेजी बेड़ियों को तोड़कर इसे स्वतंत्र न कर दिया गया। स्वतंत्रता आंदोलन का यह युग पीड़ा, आत्मसम्मान और शहीदों के लहू को समेटे हुए है। इस लहू के छींटे समाज के हर वर्ग पर पड़े और अंततः समस्त भारतवासी कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों के अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़े हुए और देश की आजादी के लिए मर-मिटने को तैयार हुए। आजादी की इस अलख को जगाने में जहां एक ओर जन प्रिय नेताओं और क्रांतिकारियों ने अपना सर्वस्व त्याग दिया, वहीं देश के कलमकारों ने उनकी आवाज को जन-जन तक पहुंचाने के लिए अपनी लेखनी को अभिमुख किया। देश की ऐसी कोई भाषा नहीं जिसमें आजादी के तराने न गाए गए हों। हमारे देश के ऐसे ही कलम के सिपाहियों के बीच उर्दू के नज़्मकार बृज नारायण चकबस्त अपनी देशभक्ति की नज़्मों के लिए याद किए जाते हैं। इनकी नज़्में रगों में बहते खून में आजादी के लिए अंगार भरती हैं-

फिदा वतन पे जो हो, आदमी दिलेर है वह
जो यह नहीं तो फकत हड्डियों का ढेर है वह
वतन की खाक से मर कर भी हमको उन्स बाकी है
मजा दामान-ए-मादर का है इस मिट्टी के दामन में
वो सौदा जिंदगी का है कि गम इंसान सहता है
नहीं तो है बहुत आसान इस जीने से मर जाने में

पंडित बृज नारायण चकबस्त का जन्म एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में सन् 1882 में फैजाबाद में हुआ। इनके पिता पंडित उदित नारायण चकबस्त डिप्टी कलेक्टर थे साथ ही वह कविताएँ भी लिखते थे। संभवतः पिता से ही उन्हें लेखन की प्रेरणा मिली हो। बृज जी के बचपन में ही पिता की मृत्यु हो गई। इसके बाद वे लखनऊ आ गए जहां वे कश्मीरी मोहल्ला में रहने लगे, वहाँ उन्होंने अच्छी शिक्षा प्राप्त की। उर्दू-फारसी की शिक्षा घर पर लेने के साथ-ही-साथ उनका दाखिला अंग्रेजी स्कूल में करवा दिया। उन्होंने 1905 ई. में केनिंग कॉलेज लखनऊ से बी.ए. पास किया और वहीं से वकालत की डिग्री भी प्राप्त की।

शायरी का शौक उन्हें बचपन से ही था। कहा जाता है कि उन्होंने पहली गजल उस वक्त कही जब उनकी उम्र मात्र नौ वर्ष की थी। उन्होंने उर्दू कविता की परंपरा के अनुसार कोई उस्ताद नहीं बनाया। यह उनके लिए अच्छा साबित हुआ क्योंकि उस्ताद उन्हें अपने ही ढर्रे पर चलाने की कोशिश करता और वे अपना निराला ढंग न अपना पाते। उस्ताद की कमी उन्होंने उर्दू के प्रमुख नए और पुराने शायरों के अध्ययन कर पूरी की जिनमें मीर, आतिश, ग़ालिब, अनीस, दबीर शामिल थे।

उर्दू में प्राय: शायर गजलों से ही कविता करना आरंभ करते हैं परंतु इन्होंने नज़्मों से अपना काव्य आरंभ किया और ऐसी नज़्में लिखीं जो उर्दू काव्यक्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनकी कविता में बौद्धिक कौशल अधिक है जो मनन करने योग्य है। इन्होंने अपने समय के नेताओं के जो मर्सिए लिखे हैं उन्हें, पढ़ने से पाठकों के हृदय में देशभक्ति जागृत होती है। पद्य के अलावा इन्होंने बहुत से आलोचनात्मक और राष्ट्रोन्नति संबंधी लेख भी लिखे हैं जो 'मुजामीने चकबस्त' में संगृहीत हैं। गंभीर, गद्य लिखने का इन्होंने नया मार्ग निकाला और देश की भिन्न-भिन्न जातियों में तथा व्यवहार का संबंध सुदृढ़ किया। 'सुबहे वतन' में इनकी कविताओं का संग्रह है। इन्होंने 'कमला' नामक एक नाटक भी लिखा है।

चकबस्त बार-बार कहते हैं कि "मैं शायर नहीं हूँ", यह केवल शिष्टता है। किन्तु इस शिष्टता के साथ ही अपने नए रंग का उल्लेख करने में उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। इसी कारण उनकी शायरी में एक हल्का व्यंग्य भी झलकता है। वे कहते हैं:

कद्रदां क्यों मुझे तकलीफे-सुखन देते हैं
मै सुखनवर नहीं, शायर नहीं, उस्ताद नहीं

1910 ई. में जबकि वे अपने "शरर'-चकबस्त" विवाद के कारण काफी ख्याति पा चुके थे। "खुमखान-ए-जावेद" के लेखक लाला श्रीराम को एक पत्र में उन्होंने लिखा:

"दोस्तों का दिल बहलाने को कभी-कभी शेर कह लेता हूँ। पुराने रंग की शायरी यानि गजलगोई से नाआशना हूँ। लेकिन इसके साथ मेरा यह अकीदा है कि महज ख्यालात को तोड़-मरोड़कर कर नज़्म कर देना शायरी नहीं है। मेरे ख्याल के मुताबिक ख्यालात की ताजगी के साथ जबान में शायराना लताफत और अल्फाज में तासीर का जौहर होना जरूरी है।"

अपने अल्फाज में इसी तासीर का जौहर उन्होंने बखूबी साबित किया जिसमें नौजवानों को देश के हालात से रू-ब-रू करने और उनमें देश प्रेम का भाव जगाने का प्रयास शामिल है। वह देश के हालात का वर्णन करते हुए कहते हैं:

बरसों से हो रहा है बरहम समाँ हमारा
दुनिया से मिट रहा है नाम-ओ-निशाँ हमारा
कुछ कम नहीं अजल से ख्वाब-ए-गिराँ हमारा
इक लाश-ए-बे-कफन है हिन्दोस्ताँ हमारा

चकबस्त में धार्मिक कट्टरता जरा भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने भगवान राम की कहानी को उर्दू भाषा में नज़्म के माध्यम से लोगों के सामने रखा। हिन्दुत्व को उर्दू

जबान में प्रस्तुत करने के पीछे उनका उद्देश्य सांप्रदायिक सद्भाव स्थापित करना था। बीसवीं शताब्दी में लोगों के बीच यह धारणा कायम करने की कोशिश की जा रही थी कि हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग संप्रदायों यथा हिंदुओं और मुसलमानों से ताल्लुक रखती है, चकबस्त इसी धारणा को तोड़ने के लिए अग्रसर हुए-

नश्तर थे ये राम के लिए हर्फ-ए-आरज़ू
दिल हिल गया सरकने लगा जिस्म से लहू

चकबस्त समाज सुधारक भी थे और सेवा कार्यों से सदा जुड़े रहते थे। कश्मीरी मोहल्ला में रहने के दौरान उनका परिचय शिव नारायण बहार से हुआ। बहार 'मुर्शाला-ए-कश्मीर' नामक पत्रिका का प्रकाशन करते थे जिसमें वे समाज में जागरूकता लाने के लिए प्रभावी आलेख लिखते थे। बहार की मृत्यु के बाद चकबस्त इस समाज सुधार आंदोलन के अग्रणी रहे। उन्होंने कश्मीरी यंग मेन्स एसोसिएशन नामक एक संगठन की स्थापना की जिसके जरिए वे नौजवानों में क्रांतिकारी विचारों को भरते थे। उन्होंने एक पुस्तकालय को भी स्थापित किया जिसमें उर्दू और फारसी की दुर्लभ किताबें और हस्तलिपियां थी। वे इन पुस्तकों के माध्यम से कश्मीरी पंडित समुदाय में नवीन चेतना जागृत कर उन्हें बेहतर नागरिक बनने के लिए प्रेरित करते थे। नौजवानों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं -

वतन के तेश का बुत बेनकाब निकला है
नए उफाक पे नया आफताब निकला है
दर्द-ए-दिल पास-ए-वफा जज्बा-ए-ईमान होना
आदमीयत है यही और यही इंसान होना

चकबस्त की मृत्यु मात्र 44 वर्ष की उम्र में एक रेल यात्रा के दौरान रायबरेली में हुई। चकबस्त की असामयिक मृत्यु उर्दू जगत और समाज के लिए बहुत बड़ी हानि थी। उनकी रचनाओं की संख्या कम है किंतु उसका प्रभाव उर्दू साहित्य पर अविस्मरणीय है। उनकी मृत्यु के बाद उनके मित्र एवं प्रशंसक ने उनकी विरासत को कायम रखने के लिए चकबस्त मेमोरियल ट्रस्ट की स्थापना की। यह ट्रस्ट सामाजिक कार्यों से जुड़ा हुआ है। उनके सम्मान में लखनऊ शहर के केसरबाग में चकबस्त रोड भी है।

****

इरफान आलम
वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै